अङ्क २५-२६] [१९२५ [illegible]

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

प्रथम मण्डल सू० ४२-६२।
प्रथम अष्टक अ० ३ वर्ग २३- अ० ५ वर्ग २
पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुलतान निवासी पं० शङ्करदत्त शास्त्री
की सहायता से शिवनाथ आहिताग्नि ने
सम्पादन किया।

लाहौर
पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में प्रिण्टर लाला
लालमन के अधिकार से छपा।

अंक २५-२६] [आश्विन-कार्तिक १९६५

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर
व्याख्यान से युक्त

जिसको पण्डितगणेशदत्त व्यास और मुलताननिवासी
पं०शङ्करदत्त शास्त्री की सहायता से शिवनाथ
आहिताग्नि ने सम्पादन किया

लाहौर
पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में प्रिंटर लाला
लालमन के अधिकार से छपा।

(१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)
पिछले २४ अंकों का मूल्य ५।)

ऋग्वेद अङ्क २३-२४ शुद्धयशुद्धिपत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
८४६	२	क्रीळं	क्रीळम्
„	„	मीळं	मीळम्
„	५	सम्बन्धिधनम्	सम्बन्धि
„	६	व्युष्ट	व्युष्ट
८४८	८	हस्तेषु	हस्तेषु
„	१४	हस्तेषु	हस्तेषु
८५०	१६	प्रवः	प्रवः
८५१	८	यशोनाम	यशोनाम
८५२	१६	मवतम्	मावतम्
„	„	सम्बन्धी	सम्बन्धि
„	„	सम्बन्धि	सम्बन्धी
८५३	४	वोऽभूत्	यशोऽभूत्
„	१८	देखा है	देखाजाता है
८५४	२	६।१।४	८।८।८
„	४	धूनय	धूनुथ
„	८	है गया	है गये
८५५	६	धनय	धूनय
८५६	५	मनष्य	मनुष्यः
८५७	८	यामेषु	यामेषु
„	११	कचसु	कसुः
„	१४	पसधस	पसृधम्
८६२	१८	सुच्युवो	सुच्यवो
८६४	८	प्रपुच्य	प्रपुच्य
८६५	१४	सम+	सम्+
८६६	७	द्वितियार्थे	द्वितीयार्थे
„	„	षष्टी	षष्ठी
८६७	४	मीळम	मीळम्
„	१६	पृष्ठ्	पृष्ठ्
८६८	१५	सारा	सारी
„	१८	मूम।	मूमम्।
८७०	१४	धारयय	धारयिष्यथ
८७१	७	„	„
८७२	५	द्विवः	द्विवः
„	१३	श्यन	श्यन्
„	२०	सूक्ता	सूक्ता
८७५	११	पूसतः	पूसतः

ऋ०मं० १ सू०४२ मं० १

पूषा देवता घोरपुत्रः कण्व ऋषिर्गायत्रीच्छन्दः८।८।८

संपूषन्नध्वनस्तिर व्यंहोविमुचो नपात्। सक्ष्वादेवप्रणस्पुरः ॥१॥

सम्	सम्+	–
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषादेव
अध्वनः	मार्गात्	रस्ते से
तिर	सम्+तिर,पारंकुरु (अन्तर्भावितण्यर्थ)	पार कर
वि	वि+तिर,अपनय (अन्तर्भावितण्यर्थः)	दूर कर
अंहः	पाप्मानम्	पाप को
विऽमुचः	विमुञ्चतिसृष्टिकालेस्वसकाशात सर्वाःप्रजाइति विमुक् तस्य प्रजापतेः(ऋ०१।२५।१)	प्रजापति का

नपात्	पुत्र	पुत्र
सश्च	प्र+सश्च प्रगच्छ (सश्चतिर्गतिकर्मा निघं० २।१४)	आगे चल
देव	हे देव	हे देव
प्र	+प्र	—
नः	अस्माकम्	हमारे
पुरः	अग्रे	आगे

संस्कृतार्थः।

हे पूषन् (अस्मान्) मार्गारपारं करु हे प्रजापतेः पुत्र पाप्मानमपनय, हे देव ! अस्माकमग्रेऽप्रेगच्छ॥१

भावार्थः।

हे पूषा देव हमको रस्ते से पार लंघाओ हे प्रजापति के पुत्र पाप को दूर करो हे देव हमारे आगे आगे चलो ॥ १ ॥

विनियोग—कठिन दूर के रस्ते में या भय के रस्ते में चलता हुआ इस सूक्त को जपे या इस से होम करे। (आ०गृ० सू० ३।७।१०)

* पूषा पृथिवी को अन्न से पोषण करने और अपनी किरणों से अंधेरे को दूर करने से सूर्य देवता का ही भावान्तर है (देखो बृह० देवता २। ६३, पुष्यन्क्षितिंपोषयति प्रभुदन् रश्मिभिस्तमः) यह पथिकों को मार्ग दिखाने वाले नष्ट धन को प्राप्त करानेवाले पशुओं के रक्षक और मनुष्य के परम हितकारी हैं। इस सूक्त को भय युक्त मार्ग में जपने से भय दूर हो जाता है।

पषादेवता गायत्रीच्छन्द ॥ ८।८।८।

योनःपूषन्नघोवृको दुःशेवआदि

देशति । अपस्मतंपथोजहि ॥२॥

यः	यः	जो
नः	अस्मान्	हम को
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषादेव
अघः	घातकः	मारने वाला
वृकः	स्तेनः (निघ०३।२४)	चोर
दुःऽशेवः	दुर्वृत्तः (वर्णव्यत्ययेनशाकारः)	दुराचारी
आऽदिदेशति	आज्ञापयति	आज्ञा करता है
अप	अप +	–
स्म	(परणः)	–

तम्	तम्	उसको
पथः	मार्गात्	रस्ते से
जहि	अप जहि अपाकुरु	हटाओ

संस्कृतार्थः ।

हे पूषन् यो घातकः स्तेनो दुर्वृत्तः (वा) अस्माना ज्ञापयति तं मार्गादपाकुरु ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे पूषा देव जो घातक (वा) चोर दुराचारी हमको आज्ञा करता है उसको रस्ते से हटाओ ॥ २ ॥.

पूषा देवता गायत्रीच्छन्दः ।८।८।८।

अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधि स्रुतेरज ॥३॥

अप	आ +	–
त्यम्	तम्	उसका

परिऽपन्थिनम्	मार्गप्रतिबन्धकम् (निघं०३।२४)	रस्ता रोकने वाले को
मुषीवाणम्	तस्करम् (निघं०३।२४)	डाकू को
हुरःऽचितम्	कौटिल्यस्य सञ्चेतारम् (हुर्छा-कौटिल्येचिञ् चयने)	कुटिलता इकट्ठ करने वाले को
दूरम्	दूरम्	दूर
अधि	अधि+	-
स्रुतेः	अधि+स्रुतेः मार्गात् (आ०को०)	मार्ग से
अज	अप+अज, अपनय	हटाओ

संस्कृतार्थः।

तंमार्गप्रतिबन्धकं कौटिल्यस्यसञ्चेतारं तस्करं मार्गाद्दूरमपनय ॥३॥

भावार्थः

रस्ता रोकने वाले कुटिलता को इकट्ठे करने वाले उस डाकू को (हमारे) रस्ते से दूर हटाओ ॥३॥

पूषा देवता गायत्रीच्छन्दः ।८।८।८।

त्वंतस्यद्वयाविनो ऽघशंसस्य

कस्यचित् । पदाभितिष्ठतपुषिम्।४।

त्वम्	त्वम्	तू
तस्य	तस्य	उसकी
द्वयाविनः	अनृतवादिनः (द्वय धिनिप्रत्यय)	झूठे की
अघऽशंसस्य	पाप प्रशंसकस्य	पाप की प्रशंसा करने वाले के
कस्य	कस्य+चित्	किसी के
चित्	+चित्	–
पदा	पादेन	पैर से
अभि	अभि+	–
तिष्ठ	अभि+तिष्ठ,मर्दय	कुचलो
तपुषिम	क्रोधम्(निघ०२।१३)	क्रोध को

संस्कृतार्थः ।

(हे पूषन्) त्वं तस्य कस्यचिदनृतवादिनः पाप प्रशंसकस्य क्रोधं पादेन मर्दय॥४॥

भाषार्थः ।

(हे पूषा देव) आप उस झूठे पापकी प्रशंसा करने वाले के क्रोधको पैरोंसे कुचलो चाहे वह कोई हो॥४

पूषा देवता गायत्रीच्छन्दः ।८।८।८।

आतत्ते॑दस्रमन्तुमः पूषन्नवो॑वृणी

महे । येन॑पितृनचो॑दयः ॥५॥

आ	आ+	-
तत्	तत्	उसको
ते	त्वदीयम्	आपकी
दस्र	हे उग्र (आ॰फो॰)	हे भयानक
मन्तऽमः	हे ज्ञानवन् (मन ज्ञाने-तुप्रत्य योमतुपच)	हे ज्ञानवान
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषादेव

अवः	रक्षणम्	रक्षा को
वृणीमहे	आ+वृणीमहे सर्वतःप्रार्थयामहे	सब ओर से प्रार्थना करते हैं
येन	येन	जिस से
पितृन्	पितृन्	पितरों को
अचोदयः	प्रेरितवानसि	आपने प्रेरण किया

संस्कृतार्थः ।

हे उग्र ! ज्ञानवन् पूषन् त्वदीय तद्रक्षणं सर्वतः प्रार्थयामहे येन (रक्षणेन त्वमस्मन्-) पितॄन्प्रेरित वानसि ॥ ५ ॥

भावार्थः ।

हे ज्ञानवाले भयानक पूषादेव (हम) आपकी उस रक्षाको सब ओर से प्रार्थना करते हैं जिस(रक्षा) से आपने हमारे बड़ों को प्रेरित किया था ॥५॥

ऋषियों की प्रार्थनाएं ऐसी हैं जो इस काल में भी हमारे लिए ऐसी ही उपयुक्त हैं जैसे पूर्वकाल में थीं इसीलिए ऋषि मंत्रों के द्रष्टा कहे गए हैं उन्होंने भूत और भविष्यत् सब अवस्थाओं को परमात्मा के प्रेरण से देख कर मंत्रों का उच्चारण किया है ॥

आर्य्य जाति की इस पतित अवस्था में यह प्रार्थना अत्यन्त उपयोगी है॥

पूषा देवता गायत्रीच्छन्दः ।८।८।८॥

अधानोविश्वसौभग हिरण्यवा-

शीमत्तम । धनानिसुषणाकृधि॥६॥

अध	अनन्तरम् (वर्ण-व्यत्यय)	फिर
नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
विश्वऽसौ-भग	हेकृत्स्नसौभाग्य युक्त	हे पूर्ण सौभाग्य से युक्त
हिरण्यवा-शीमत्ऽतम	हेअतिशयेन सुव-र्णायुधवन्	हे सब से अधिक सुवर्ण के शस्त्र-वाले
धनानि	धनानि	धनों को
सुऽसना	सुप्रापानि (वण-सम्भक्तौ-खल् प्रत्ययः)	सुख से प्राप्त होने वाले
कृधि	कुरु	करो

संस्कृतार्थः ।

हे कृत्स्नसौभाग्ययुक्त अतिशयेन सुवर्णायुधवन् (पूषन्) अनन्तरं धनान्यस्मभ्यं सुप्रापानि कुरु ॥६॥

भावार्थः ।

हे सम्पूर्ण सौभाग्य से युक्त, सब से अधिक सोने के शस्त्र वाले (पूषादेव) फिर हमारे लिये धनों को सुख से प्राप्त होने योग्य करो ॥६॥

पूषा देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८॥

अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥७॥

अति	अति +	–
नः	अस्मान्	हमको
सश्चतः	प्राप्नुवतः (षस्ज-गतौ)	पहुंचने वालों को
नय	अति+नय,	परे लेजाओ
सुऽगा	सुखेन-गन्तुंश-क्येन	सुख से गमन योग्य से
नः	अस्मान्	हमको

सुऽपथा	शोभन मार्गेण	सुन्दर मार्ग से
कृणु	कुरु-(कृञि करणे)	करो
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषा देव
इह	इह	यहां
क्रतुम्	बलम्	बलको
विदः	लभस्व	प्राप्त करो

सरलार्थः।

(बाधनाय) प्राप्नुवतः (शत्रून्) अतिक्रम्यास्मान्नय, अस्मान्सुखेनगन्तुशक्येन शोभन मार्गेण (गन्तॄन्) कुरु हेपूषन् इह (अस्मद्रक्षणाय) बलंलभस्व ॥७॥

भावार्थः।

(क्लेश देने के लिए) प्राप्त होते हुए (शत्रुओं के) पार हमको ले जाओ, हमको सुख से जाने योग्य सुन्दर मार्ग से (चलनेवाले) करो हे पूषादेव यहां पर (हमारी रक्षा के लिये) बल को प्राप्त करो॥७॥

देवता मनुष्य की स्तुति और पूजा से बल को प्राप्त करते हैं। और उस बल द्वारा उस के शत्रुओं का नाश और उस की रक्षा करते हैं।

पूषादेवता गायत्रीच्छन्दः ।८।८।८।

अभि सूयवसंनय ननवज्वारो

अध्वने । पूषन्निहक्रतुंविदः ।८।

अभि	अभि+	
सुऽयवसम्	सुशस्यम् (देशम्)	सुन्दर खेती वाले (देश) को
नय	अभि+नय	की ओर लेजाओ
न	न	नहीं
नवऽज्वारः	नूतनः सन्तापः (ज्वर रोगेऽयम्)	नवीन सन्ताप
अध्वने	मार्गाय	मार्ग के लिए
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषा देव
इह	इह	यहां पर
क्रतुम्	बलम्	बल को
विदः	लभस्व	प्राप्त करो

संस्कृतार्थः ।

अस्मान् सुशस्यम् (देशम्) प्रति नय मार्गाय नूतनःसन्तापो न भवतु हे पूषन्निह (अस्मद्रक्षणाय) बलं लभस्व ॥ ८ ॥

भावार्थः

हमें सुन्दर खेती से युक्त (देश) की ओर ले जाओ (हमें) मार्ग के लिये नवीन सन्ताप न हो हे पूषादेव यहां पर (हमारी रक्षा के लिए) बल को प्राप्त करो ॥ ८ ॥

वृत्ति के लिए दूसरे देश में जाने वाला इस मंत्रसे प्रार्थना कर सकता है। ऐसा करने से उस को मार्ग में जाने के लिये क्लेश नहीं होता और पूषा देव उसको ऐसे देश की ओर प्रेरण करते हैं, जो सुन्दर खेती से युक्त हो ॥

पूषा देवता गायत्रीच्छन्दः ॥८।८।८॥

शग्धिपूर्धिप्रयंसिच शिशीहिप्रा-

स्युदरम्। पूषन्निहक्रतुंविदः ।९।

शग्धि	शक्तोभव	समर्थ हो
पूर्धि	पूरय	भरो

प्र.	प्र+	–
यंसि	प्र+यंसि प्रयच्छ (यम्-लोडर्थे-लट्)	दो
च	च	और
शिशीहि	तीक्ष्णी कुरु (अर्थात्तेजस्विनः कुरु शो-तनूकरणे)	तेजस्वी बनाओ
प्रासि	पूरय (प्रा-पूरणे)	भरो
उदरम्	उदरम्	उदरको
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषा देव
इह	इह	यहां पर
क्रतुम्	बलम्	बल को
विदः	लभस्व	प्राप्त करो

संस्कृतार्थः।

शक्तोभव (अस्मान् धनादिभिः) पूरय (अभीष्टम्) च प्रयच्छ अस्मान् तेजस्विनः कुरु (अस्मदीयम्) उदरं पूरय हे पूषन्निह (बलम्) लभस्व ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

आप समर्थ हों (हम को धनादि से) पूर्ण करें और (अभीष्ट) दें हम को तेजस्वी बनावें (हमारे) उदर को भरें हे पूषादेव आप यहां पर बल को प्राप्त करें ॥ ९ ॥

पूषा देवता गायत्रीच्छन्दः।८।८।८॥

नपूषणंमेथामसि सूक्तैरभिगृ-
णीमसि। वसूनिदस्ममीमहे ।१०।

न	न	नहीं
पूषणम्	पूषणम्	पूषा को
१ मेथामसि	निन्दामः	निन्दा करते हैं
२ सुऽउक्तैः	सूक्तैः	सूक्तों से
अभि	अभि +	–
गृणीमसि	अभि+गृणीमसि गृ शब्देलटिरूपमिदार.	सर्वत्रस्तुति करते
वसूनि	धनानि	धनों को

दस्मम्	अद्भुतम्	अद्भुत से
ईमहे	याचामहे	मांगते हैं

संस्कृतार्थः ।

पूषणम् (देवम्) ननिन्दामः (किन्तु) सूक्तैरभिस्तुमः,तमद्भुतम् (देवम्) धनानि याचामहे ॥१०॥

भावार्थः ।

हम पूषादेव की निन्दा नहीं करते (किन्तु) सूक्तों से सर्वत्र स्तुति करते हैं हम अद्भुत (देव से) धन मांगते हैं ॥ १० ॥

(१) यदि हम किसी विपत्ति में ग्रस्त हैं तो उसके लिए हम पूषा देव को नहीं कोसते किन्तु सब अवस्थाओं में उनकी स्तुति ही करते हैं । विपत्ति का कारण हमारी असावधानी या किसी नियम को भङ्ग करना है पूषादेव तो सदा रक्षणा ही करते हैं और हमारी स्तुति के योग्य हैं ॥

(२) सूक्त का अर्थ सुन्दर वाणी है और हिन्दी में इसका पर्य्याय भजन है ॥

॥ इतिद्वाचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

ऋ० मं० १ सू० ४३ मं०१।

रुद्रो देवता घोरपुत्रःकण्वऋषिर्गायत्रीच्छन्दः॥८।८।८।

कद्रुद्राय॒प्रचेतसे मी॒ह्ळुष्टमायत-
व्यसे। वो॒चेम॒शन्तमं॑हृ॒दे॥१॥

कत्	किम्	कथा
रु॒द्राय	रुद्राय	रुद्र के लिये
प्रऽचेतसे	प्रकृष्ट ज्ञान युक्ताय	बडे बुद्धिमान के लिये
मी॒ह्ळुःऽ-तमाय	सेक्तृतमाय (मिह सेचने क्वसु तमप)	अत्यन्त बरसाने वाले के लिये
त॒व्यसे	अतिशयेन बलवते	महा बली के लिये
वो॒चेम	कथयाम	हम कहें
शम्ऽतमम्	अतिशयेन सुख-करम्	अत्यन्त सुख के करने वाले को
हृ॒दे	हृदयाय	हृदय के लिये

संस्कृतार्थः।

प्रकृष्टज्ञानयुक्ताय (अभीष्टानाम्) सेक्तृतमायाऽतिशयेन बलवते रुद्राय हृदयाय शन्तमं किम् (वचनम्) कथयाम॥ १॥

भाषार्थः।

हम बड़े बुद्धिमान् (अभीष्टों के) अत्यन्त बरसाने वाले महा बली रुद्रके लिये हृदय को अत्यन्त सुख देने वाले किस (वचन) को कहें॥१॥

विनियोग—सब रुद्र यज्ञों में इस सूक्त और ऋ० १।११४, २।३३, ७।४६ से चारों दिशाओं का उपस्थान किया जाता है (आ०गृ० सू०४।८।२३)

रुद्र परमात्मा की यह शक्ति है जिस का विकाश बिजली की गर्जन के रूप में होता है (देखो बृह० देवता० २।३४ "अरोदी वन्तरिक्षेयद् विद्युद्वृष्टिं ददन्नृणाम्") यह मनुष्यों के लिए वर्षा को और रोग के नाश करने वाली औषधियों को देने वाले हैं और भयंकर होनेपर भी अपने आर्य्य उपासकों के लिये अत्यन्त मृदु हैं।

रुद्रो देवता गायत्रीच्छन्दः ८।८।८॥

यथा॑ नो॒ अदि॑तिः॒ कर॒त् पश्वे॒ नृभ्यो॒ यथा॒ गवे॑। यथा॑ तो॒काय॑ रु॒द्रिय॑म्॥२॥

यथा	यथा	जिससे
नः	अस्माकम्	हमारे
अदितिः	अदितिः	अदिति
करत्	कुर्यात्	करे
पश्वे	पशवे (पशु-गुणमात्रेयण्)	पशु के लिये
नृऽभ्यः	पुरुषेभ्यः	पुरुषों के लिये
यथा	यथा	जिससे
गवे	गवे	गौ के लिये
यथा	यथा	जिस से
तोकाय	पुत्राय	पुत्र के लिये
रुद्रियम्	रुद्रसम्बन्धि (भेषजम्)	रुद्र वाले (भेषज) को

संस्कृतार्थः ।

यथाऽदितिरस्माकं पशवे पुरुषेभ्यः (च) यथा (अस्माकम्) गवे यथा (अस्माकम्) पुत्राय (च) रुद्रसम्बन्धि (भेषजम्) कुर्यात् ॥ २ ॥

भावार्थः ।

जिस से अदिति हमारे पशुओं के लिए (और) पुरुषों के लिए जिससे (हमारी) गौओं के लिए (और) जिस से (हमारे) पुत्रों के लिए रुद्र सम्बन्धि (भेषज को) करे ॥२॥

इस मंत्र को पिछले के साथ मिला कर पढने से अर्थ पूरा होता है।

यहां पर अदिति पुंल्लिङ्ग शब्द है और सब प्रकार से अदीन होकर अन्तरिक्ष को घेर कर ठहरने से देखो। बृह० देवत० २। ४६) रुद्र का ही नामान्तर है।

मित्रावरुणौ देवते गायत्रीच्छन्दः ८।८।८।

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः ॥३॥

यथा	यथा	जिस से
नः	अस्मान्	हमको
मित्रः	मित्रः	मित्र
वरुणः	वरुणः	वरुण

यथा	यथा	जिससे
रुद्रः	रुद्रः	रुद्र
चिकेतति	जानीयात् (कित-ज्ञानेलेटिरूपम्)	जाने
यथा	यथा	जिससे
विश्वे	सर्वे	सब
सजोषसः	समानप्रीतयः (जुषी-असुन्)	समान प्रीति वाले

संस्कृतार्थः ।

यथाऽस्मान् मित्रोवरुणो यथा (अस्मान्) रुद्रो-जानीयात् यथा (अस्मान्) समानप्रीतयस्सर्वेदेवाः (जानीयुः) ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

जिस से हम को मित्र (और) वरुण जिस से (हम को) रुद्र देवता जानें जिस से (हम को) समान प्रीति वाले सब देवता (जानें) ॥ ३ ॥

इस का अर्थ भी प्रथम मन्त्र के साथ मिलकर पूरा होता है "समान प्रीति वाले" अर्थात् सब देवता एक मन होकर हमें अपना जानें ॥

रुद्रो देवता गायत्रीच्छन्दः ।८।८।८।

गाथपतिंमेधपतिं रुद्रंजलाष

भेषजम् । तच्छंयोःसुम्नमीमहे।४।

गाथऽपतिम्	स्तुतिपालकम्	स्तुति के पालक को
मेधऽपतिम्	यज्ञपतिम्	यज्ञ के स्वामी को
रुद्रम्	रुद्रम्	रुद्र को
जलाषऽभेषजम्	सुखरूपौषधोपेतम्	सुख रूपौषधि से युक्त को
तत्	तत्	उस को
शम्ऽयोः	रोगशमनम् (द्विती यार्थेऽत्र) (नि०४११)	रोग शमन को
सुम्नम्	सुखम् (नि०३।६)	सुख को

ईमहे	याचामहे	हम मांगते हैं

संस्कृतार्थः ।

(वयम्) स्तुति पालकं यज्ञपतिं सुखरूपौषधोपेतं रुद्रं तद्रोगशमनं सुखम् (च) याचामहे ॥४॥

भावार्थः ।

(हम) स्तुति के पालक यज्ञ के स्वामी सुख रूप औषधि से युक्त रुद्र से उस रोगशान्ति (और) सुख को मांगते हैं ॥४॥

" उस रोग शान्ति को" जिस का हमने पहले भी अनुभव किया हुआ है ॥

रुद्रो देवता गायत्रीच्छन्दः ।८।८।८॥

यः शुक्रइवसूर्यो हिरण्यमिव-

रोचते । श्रेष्ठोदेवानांवसुः ॥५॥

यः	यः	जो
शुक्रःऽइव	शुक्र इव	शुक्रकी न्याईं
सूर्यः	सूर्यः (इव)	सूर्य (की न्याईं)

हिरण्यम् ऽइव	सुवर्णमिव	सुवर्ण की न्याईं
रोचते	दीप्यते	दीप्तिमान है
श्रेष्ठः	प्रशस्यतरः	श्रेष्ठ
देवानाम्	देवानाम् [मध्ये]	देवताओंके(बीचमें)
वसुः	धनवान् (भा० को०)	धनवान्

संस्कृतार्थः ।

यः शुक्रइव सूर्यः (इव) हिरण्यमिव दीप्यते देवानाम् (मध्ये) प्रशस्यतरो धनवान् (चाऽस्ति) ॥ ५ ॥

भावार्थः ।

जो शुक्र की न्याईं सूर्य (की न्याईं) सुवर्ण की न्याईं दीप्तिमान है (और) देवताओं के (बीचमें)श्रेष्ठ (और)धनवान् है ॥ ५ ॥

"शुक्र" शुक्र तारे से तात्पर्य हो सकता है। क्योंकि यह सब तारों में अधिक प्रकाशवाला है ॥

रुद्रो देवता गायत्रीच्छन्दः ।८।८।८।

शंनः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये ।

नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥६॥

शम्	सान्त्वनम्	शान्ति को
नः	अस्माकम्	हमारे
करति	कुर्य्यात् (डुकृञ्-व्यत्ययेनशप् लिङर्थे लट्)	करे
अर्वते	अश्वाय	घोड़े के तांई
सुगम्	कुशलम्	कल्याण को
मेषाय	मेषाय	मेंढे के ताई
मेष्यै	मेष्यै	भेड़ के ताई
नृभ्यः	पुरुषेभ्यः	पुरुषों के ताई
नारिभ्यः	स्त्रीभ्यः	स्त्रियों के ताई
गवे	गवे	गौ के ताई

संस्कृतार्थः।

(रुद्रः) अस्माकमश्वाय सान्त्वनं कुर्य्यात् मेषाय मेष्यै नृभ्योनारीभ्यो गवे (च) कुशलम् कुर्य्यात् ॥६॥

भावार्थः।

(रुद्र) हमारे घोड़े के लिये शान्ति करें (हमारे) मेंढे भेड़ पुरुष स्त्रियों (और) गौ के लिये कल्याण को करें ॥ ६ ॥

विनियोग—सोमयाग के अग्नि मारुत शस्त्र में यह मन्त्र पढ़ा जाता है (आ०श्रौ० सू०५।२०।६।)

मेंढे और भेडों को घर में रख कर उनसे लाभ उठाना आर्य्य के लिए निन्दनीय नहीं समझा जाना चाहिये जैसे आज कल समझा जाता है

सोमो देवता गायत्रीच्छन्दः ।८।८।८॥

अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शत स्यनृणाम् । महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥७॥

अस्मे०	अस्मासु	हम में
सोम	हे सोम	हे सोम
श्रियम्	श्रियम्	ऐश्वर्य्य को
अधि	अधि+	—
नि	नि+	—
धेहि	अधि+नि+धेहि (स्थापय)	स्थापन करो

शतस्य	शतस्य	सौ के
नृणाम्	नृणाम	मनुष्यों के
महि	महत्	बहुत
श्रवः	यशः	यश को
तुविऽनृम्णम्	प्रभूत बल युक्तम्	बहुत बल से युक्त को

संस्कृतार्थः।

हे सोम मनुष्याणां शतस्य श्रियमस्मासु स्थापय (तथाच)प्रभूत बलयुक्तं महद्यशः(अस्मासुस्थापय)॥७॥

भाषार्थः।

हे सोम सौ मनुष्यों के ऐश्वर्य्य को हम में स्थापन करो (और) बहुत बल से युक्त बड़े यश को (हम में स्थापन करो)॥७॥

सोम देवता के वर्णन के लिये देखो पृष्ठ २१२।

सोमो देवता गायत्रीच्छन्दः ।८।८।८॥

मा नः सोमपरिबाधो माऽरातयो-
जुहुरन्त। आ न इन्दो वाजे भज ॥८॥

मा	मा	मत
नः	अस्मान्	हमको
सोमऽपरि बाधः	सोमयागस्य प्रतिबन्धकाः	सोम यज्ञ के रोकने वाले
मा	मा	मत
अरातयः	शत्रवः	शत्रु
जुहुरन्त	हिन्सन्तु (ह्व मसला करणे-लोडर्थे-लङ्)	पीड़ा दें
आ	आ+	—
नः	अस्मान्	हम को
इन्दो०	हे सोम	हे सोम
वाजे	वले	वल में
भज	आ+भज (भागिनःकुरु) संस्कृतार्थः	भागी बनाओ

सोमयागस्य प्रतिबन्धकाः अस्मान्माहिन्सन्तु, शत्रवो मा (हिन्सन्तु) हे सोम! वलेऽस्मान् भागिनः कुरु ॥८॥

भावार्थः ।

सोम याग के रोकने वाले हम को पीड़ा न दें शत्रु हम को पीड़ा न दें हे सोम बलमें हमको भागी बनाओ ॥ ८ ॥

सोमो देवता अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८॥

या॒स्ते॑प्र॒जा॑अ॒मृत॑स्य॒ पर॑स्मि॒न्धा-
म॑न्नृ॒तस्य॑।मू॒र्धा॑ना॒भा॑सो॑मवेन आ-
भू॒षन्तीः॑सोमवेदः ॥९॥

याः	याः	जो
ते	तव	तेरी
प्रऽजाः	प्रजाः	प्रजा
अमृतस्य	मरण रहितस्य	मृत्यु रहित की
परस्मिन्	उत्तमे	उत्तम में
धामन्	स्थाने (सप्तम्यालुक्)	स्थान में

ऋतस्य	ऋतस्य	ऋत के
मूर्धा	शिरस्स्थानीयः	(सृष्टि का) मस्तक
नाभा	नाभि स्थानीयः	(सृष्टि की) नाभि
सोम	हे सोम	हे सोम
वेनः	कामयस्व वेन-कान्तौ-लेटिरूपम्	प्यार करो
१ आऽभूषन्तीः	आभूषन्तीः (भूष-अलङ्कारेकर्मणि शतृ प्रत्ययः)	सब ओर सजानी हुई को
सोम	हे सोम	हे सोम
वेदः	जानीहि (विद-आमेलेडिरूपम्)	जानो

संस्कृतार्थः।

हे सोम ! ऋतस्योत्तमेस्थाने (वर्तमानस्य) मरण रहितस्य तव याः प्रजाः (सन्ति) (जगतः) शिरः स्थानीयो नाभिस्थानीयः (च त्वम्) (ताः प्रजाः) कामयस्व.हेसोम !आभूषन्तीः(नाः प्रजाः)जानीहि॥९॥

मापार्थः।

हे सोम! ऋत के उत्तम स्थान में (रहने वाले) मरण रहित आपकी जो प्रजा (है) उनको (जगत्) के मस्तक और (जगत्) के केन्द्र आप प्यार करें, हे सोम, सब ओर सजाती हुई (उन प्रजाओं को आप) जानें ॥ ९ ॥

(१) सोम की आर्य प्रजा सब ओर अर्थात् पूजा के स्थान को, घर को गलियों को, नगर को सजाती हुई देखी जाएं उनके किसी काम में फूहड़पन न प्रतीत हो ॥

इति त्र्यश्चत्वारिंशंसूक्तम्।

ऋ० मं० १ सू० ४४ मं० १

अग्न्यश्विना उषोदेवताः कण्व पुत्रः प्रस्कण्वऋषि बृहतीच्छन्दः ।८।८।१२।८॥

अग्ने विवस्वदुषस श्चित्रं राधो अमर्त्य। आदाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥१॥

अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
विवस्वत्	तेजो युक्तम् (विवस्तेजः)	तेज युक्त को
उषसः	उषसः	उषा से
चित्रम्	नानाविधम्	अनेक प्रकार वाले को
राधः	धनम्	धन को
अमर्त्य	हे मरण रहित	हे मरण रहित
आ	आ+	--
दाशुषे	(हविः) दत्तवते	(हवि) देने वाले के लिये
जातऽवेदः	हेजातानां वेदितः (विद ज्ञानेअसुन्प्रत्ययः)	हे उत्पन्नों के जानने वाले
वह	आ+वह	ले आओ
त्वम्	त्वम्	आप
अद्य	अस्मिन्दिने	आज
देवान्	देवान्	देवताओं को

उषःऽबुधः	उषःकालेप्रबुद्धान्	प्रातःकाल में जागने वालों को

संस्कृतार्थः ।

हे मरणरहित जातवेदोऽग्ने रत्नमय(हविः)दत्तवते (यजमानाय) उषसः (सकाशात्) तेजोयुक्तं नाना विधं धनमुषःकालेप्रबुद्धान् देवान् (च) आवह ॥१॥

भावार्थः ।

हे मरणरहित, उत्पन्न हुओंको जाननेवाले अग्न (देव) आप आज (हवि) देने वाले (यजमान) के लिए उषा देवता से तेज युक्त नाना प्रकार के धन को (और) प्रातःकाल में जागने वाले देवताओं को ले आओ ॥ १ ॥

विनियोग—प्रातरनुवाक के आग्नेय क्रतु में यह सूक्त पढ़ा जाता है (आ०श्रौ० सू०४ । १३ । ७)

ज्योतिष्टोम में यदि उषःकाल तक पर्य्याय पूरे न हों तो आश्विन शस्त्र के स्थान में यह प्रगाथ (अर्थात् यह और अगला मंत्र) पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू ६ । ६ । ८)

यह मंत्र वाजपेय यज्ञ में भी पढ़ा जाता है यदि ब्रह्मा साम गान न करे (आ० श्रौ० सू०उ० ३।९।९)

ऋ० मं०१ सू०४४ मं०२ (१०८२

अग्न्यश्विना उषोदेवताः सतोबृहतीछन्दः१२।८।१२।८।

जुष्टोहिदूतोअसिहव्यवाहनो ऽग्नेरथीरध्वराणाम्। सजूरश्विभ्या मुषसासुवीर्य मस्मेधेहिश्रवोबृहत्।२।

जुष्टः	प्रियः	प्यारा
हि	खलु	सचमुच
दूतः	दूतः	दूत
असि	असि	तू है
हव्यऽवाहनः	हविषोवढा	हवि को ले जाने वाला
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
रथीः	रथस्थानीयः	रथ रूप

अध्वरा-याम्	यज्ञानाम्	यज्ञों का
सऽजूः	सहितः	साथ
अश्विऽभ्याम्	अश्विभ्याम्	अश्विन देताओंसे
उषसा	उषसा	उषा से
सुऽवीर्य्यम्	अतिवीर्य्योपेतम्	बहुत पराक्रम से युक्त को
अस्मे०	अस्मासु (सप्तम्याःशेआदेशः)	हम में
धेहि	धारय	धारण कर
श्रवः	यशः	यश को
बृहत्	महत्	महान् को

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने (त्वम्) खलु (देवानाम्) प्रियो दूतो

हविषोवोढा यज्ञानां रथस्थानीयः (च)असि(स त्वम्) अश्विभ्यामुषसा (च) सहितः-(भूत्वा) अतिवीर्योपेतं महद्यशो ऽस्मासु धारय ॥ २ ॥

भाषार्थः।

हे अग्नि आप सचमुच (देवताओं के) प्रिय दूत हवि के लेजाने वाले (और) यज्ञों के रथ रूप हैं (ऐसे आप) अश्वि (देव और) उषा के साथ बहुत पराक्रम से युक्त वडे यश को हम में धारण करें ॥२॥

अग्निर्देवता बृहतीश्छन्दः।८।८।१२।८॥

अ॒द्या दू॒तं वृ॑णीमहे॒ वसु॑म॒ग्निं पु॑रु॒प्रि॒यम्। धू॒मके॑तुं॒ भाऋ॑जीकं॒ व्यु॑ष्टिषु य॒ज्ञाना॑मध्व॒र॒श्रिय॑म् ॥३॥

अ॒द्य	अस्मिन्दिने	आज
१ दू॒तम्	दूतम्	दूत को
१ वृ॒णी॒म॒हे	वरणं कुर्मः	हम वरते हैं

वसुम्	धनवन्तम् (आ०को०)	धनवान् को
अग्निम्	अग्निम्	अग्निको
पुरुऽप्रियम्	बहूनां प्रियम्	बहुतों के प्यारे को
धूमऽकेतुम्	धूमरूपध्वजयुक्तम्	धूम रूप ध्वजा वाले को
भाःऽऋजीकम्	प्रकाशस्यप्रापकम् (भासःप्रकाशस्य ऋजीकः प्रापकस्तम्)	प्रकाशके प्राप्त कराने वाले को
विऽउष्टिषु	उपःकालेषु	प्रातःकालों में
यज्ञानाम्	यज्ञानाम्(मध्ये)	यज्ञों के [बीचमें]
अध्वरऽश्रियम्	यज्ञशोभारूपम्	यज्ञके शोभा रूपको

संस्कृतार्थः।

अस्मिन्दिने धनवन्तं बहूनां प्रियं धूमरूपध्वज युक्तमुपः कालेषु प्रकाशस्य प्रापकं यज्ञानां (मध्ये) यज्ञशोभारूपमग्निं दूतं कर्मणे वृणीमहे ॥३॥

भावार्थः।

आज हम धनवान्, बहुतों के प्यारे, धूमरूप-ध्वजा से युक्त,प्रातःकालों में प्रकाश के प्राप्त कराने वाले,यज्ञों के (बीच में) यज्ञ के शोभारूप अग्निदेव को दूत कर्म के लिए वरते हैं ॥ ३ ॥

(१) दूत कर्म के लिए वरते हैं । जिससे अग्निदेव हमारी स्तुति और पूजा की वार्ता देवताओं को सुनावें और उनकी प्रसन्नता का हमारे हृदय में भान करावे।

अग्निर्देवता सतोबृहतीच्छन्दः।१२।८।१२।८॥

श्रेष्ठंयविष्ठमतिथिंस्वाहुतं जुष्टंजनायदाशुषे । देवाँअच्छायातवेजातवेदस मग्निमीळेव्युष्टिषु॥४॥

श्रेष्ठम्	प्रशस्यतमम्	सबसे अच्छे को
यविष्ठम्	युवतमम्	अत्यन्तजवानको
अतिथिम्	अतिथि रूपम्	अतिथि रूप को
सुऽआहुतम्	यः सुखेनाऽऽहूयते तम्	बुलाने पर सहज से आनेवालेको

जुष्टम्	प्रीतम्	प्रसन्न को
जनाय	मनुष्याय	मनुष्य के लिये
दाशुषे	(हविः)दत्तवते	(हवि)देने वाले के लिये
देवान्	देवान्	देवताओं को
अच्छ	आभिमुख्येन	सामने
यातवे	प्रापयितुम्	प्राप्तकराने को
जातऽवेदसम्	जातानांवेदितारम्	उत्पन्नों को जानने वाले को
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को
ईळे	स्तौमि	स्तुति करता हूं
विऽउष्टिषु	उषः कालेषु	प्रातःकालों में

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) श्रेष्ठं युवतमं स्वाहुत मतिथिरूपं (हविः) दत्तवते मनुष्याय प्रीतं जातानांवेदितारमग्निं देवानाभिमुख्येनप्रापयितुमुषःकालेषु स्तौमि ॥ ४ ॥

भाषार्थः।

मैं सब से अच्छे अत्यन्त जवान, बुलाने पर सहज से आने वाले, अतिथिरूप, (हवि) देने वाले (भक्त) के लिये प्रसन्नात्मा, उत्पन्न हुओं को जानने वाले अग्नि की, देवताओं को सामने लाने के लिए, प्रातःकालों में स्तुति करता हूं ॥ ४ ॥

अग्निर्देवता बृहतीच्छन्दः ।८।८।१२।८।।

स्तविष्यामित्वामहं विश्वस्या-
ऽमृतभोजन। अग्नेत्रातारममृतंमिये
ध्य यजिष्ठंहव्यवाहन॥५॥

स्तविष्या-मि	स्तोष्यामि	स्तुति करूंगा
त्वाम्	त्वाम्	आपको
अहम्	अहम्	मैं

विश्वस्य	सर्वस्य	सब के
अमृत	हे मरण रहित	हे मरण रहित
भोजन	हेपोषक	हे पोषण करने वाले
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
त्रातारम्	रक्षकम्	रक्षा करने वाले को
अमृतम्	मरण रहितम्	मरण रहित को
मियेध्य	हे यज्ञार्ह	हे पूजने योग्य
यजिष्ठम्	यष्टृतमम्	सब से उत्तम पूजने वालेको
हव्यऽवाहन	हे हविषोवोढः	हे हवि के पहुचाने वाले

संस्कृतार्थः।

हे मरण रहित ! विश्वस्यपोषक ! हविषोवोढः ! यज्ञार्ह ! अग्ने ! रक्षकं मरणरहितम् (देवानाम्) यष्टृतमं त्वामहंस्तोष्यामि॥ ५॥

भाषार्थः ।

हे मरण रहित सब के पोषण करने वाले हवि के पहुंचाने वाले पूजने योग्य अग्नि (देव) मैं रक्षा करने वाले मरणरहित (और देवताओं के) सब से उत्तम पूजने वाले आपकी स्तुति करूंगा ॥५॥

अग्निर्देवता सतोबृहतीच्छन्दः।१२।८।१२।८।

सुशंसोबोधिगृणतेयविष्ठ्य मधुजिह्वःस्वाहुतः। प्रस्कण्वस्यप्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्यादैव्यंजनम् ।६।

सुऽशंसः	सुष्ठुशंसनीयः (शसु-स्तुती मावेयम्)	सुन्दर स्तुति योग्य
बोधि	मनोदेहि (भा०को०) (बुध-लोटि-विकरणस्य लुक्)	ध्यान करो
गृणाते	स्तुवते	स्तुति करने वाले के लिये
यविष्ठ्य	हे युवतम	हे अत्यन्त जवान

मधुऽजिह्वः	मधुराजिह्वायस्य सः	मीठो जिह्वा-वाला
सुऽआहुतः	यः सुखेनाऽऽहूयते सः	सुखसे बुलाने योग्य
प्रस्कण्व-स्य	प्रस्कण्वस्य	प्रस्कण्व के
प्रऽतिरन्	प्रवर्धयन् (प्र तिरतिर्वर्धन.र्थः)	बढ़ाता हुआ
आयुः	आयुः	आयु को
जीवसे	जीवनार्थम्	जीने के लिये
नमस्य	पूजय (निघं०३।५)	पूजो
दैव्यम्	दैव्यम् +	—
जनम्	दैव्यम् + जनम्	देव समूह को

१ { प्रस्कण्वस्य

संस्कृतार्थः।

हे युवतम (अग्ने)!सुशंसनीयो मधुजिह्वस्स्वाहुतः (त्वम्) स्तुवते (यजमानाय) मनोदेहि (अपि च)प्रस्कण्वस्य जीवनार्थमायुः प्रवर्धयन् देवसमूहम्पूजय ॥६॥

भाषार्थः।

हे अत्यन्त जवान (अग्निदेव,सुन्दर स्तुतियोग्य, मीठी जिह्वा वाले (और) सुख से बुलाने योग्य (आप) स्तुति करने वाले (भक्त के लिये) ध्यान दें (और मुझ) प्रस्कण्व के जीवन निमित्त आयु को बढ़ाते हुए देव समूह को पूजें ॥ ६ ॥

(१) प्रस्कण्व,कण्वऋषि के पुत्र और इस सूक्त के द्रष्टा हैं। तृतीय पाद में ऋषि अपने लिये प्रार्थना करते हुए प्रतीत होते हैं परन्तु यह उपलक्षण निमित्त है—प्रत्येक मनुष्य इस मंत्र में अपना नाम डाल कर उपासना कर सकता है॥

अग्निर्देवता बृहतीच्छन्दः ८।८।१२।८॥

होतारंविश्ववेदसं संहित्वाविश इन्धते। सआवहपुरुहूतप्रचेतसो ऽग्नेदेवाँइहद्रवत्।७।

होतारम्	होतारम्	होता को

विश्वऽवे-दसम्	विश्वानि वेदांसि धनानियस्यतम् (वेदइतिधननाम निघं०२।१०)	सम्पूर्ण धनों के स्वामी को
सम्	सम्यक्	भली प्रकार
हि	खलु	सचमुच
त्वा	त्वाम्	तुझ को
विशः	प्रजाः	प्रजा
इन्धते	दीपयन्ति	प्रदीप्त करते हैं
सः	सः	वह
आ	आ+	—
वह	आ+वह	लाओ
पुरुऽहूत	हे बहुभिराहूत	हे बहुतों से बु-लाए गए
प्रऽचेतसः	प्रकृष्टज्ञानयुक्तान्	बहुत ज्ञान वालों को
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि

देवान्	देवान्	देवताओं को
इह	अत्र	यहां
द्रवत्	क्षिप्रम् (निघं०२.१५)	शीघ्र

संस्कृतार्थः ।

सम्पूर्णधनस्वामिनं होतारं त्वां प्रजास्सम्यग्दीपयन्ति खलु, हे बहुभिराहूताऽग्ने सः(त्वम्) प्रकृष्टज्ञानयुक्तान्देवान् क्षिप्रमत्राऽऽवह ॥ ७ ॥

भावार्थः ।

सम्पूर्ण धनों के स्वामी और (होता) आप को सच मुच प्रजा अच्छे प्रकार से प्रदीप्त करती हैं : हे बहुतों से बुलाए गए अग्नि (देव) वह आप बहुत ज्ञान वाले देवताओं को यहां पर शीघ्र लावें ॥

यह देवता कौन हैं । इस को लिये देखो अगला मन्त्र ।

अग्निर्देवता सतोबृहतीच्छन्दः १२।८।१२।८।

सवितारमुषसमश्विनाभगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः। कण्वासस्त्वासुत-

सोमासइन्धते हव्यवाहंस्वध्वर।८।

सवितारम्	सवितारम्	सविताको
उषसम्	उषसम्	उषाको
अश्विना	अश्विनौ (सुपांसुलुगिति विभक्तेर्डा)	अश्विदेवताओं को
भगम्	भगम्	भग को
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को
विऽउष्टिषु	उषःकालेषु	प्रातःकालों में
क्षपः	रात्रिषु (सप्तम्यर्थे द्वितीया)	रात्रियों में
१ कण्वासः	कण्वाः	कण्व वंशी
त्वा	त्वाम्	आप को
सुतऽसोमासः	सुतः सोमोयैस्ते (पूर्वं निपातः)	सोम निचोड़ा है जिन्होंने ऐसे

इन्धते	दीपयन्ति	प्रदीप्त करते हैं
हव्यऽवा-हम्	हव्यं वहतीतिह-व्यवाट् तम्	हवि के पहुंचाने वाले को
सुऽअध्वर	हेशोभनयागयुक्त	हे सुन्दर यज्ञ से युक्त

संस्कृतार्थः ।

हे शोभनयागयुक्त [अग्ने] उषःकालेषु रात्रिषु [च] सवितारमुषसमश्विनौभगमग्निम् (चाऽऽवह) अभिषुतसोमाःकण्वा हविषःप्रापकंत्वांदीपयन्ति॥८॥

भाषार्थः

हे सुन्दर यज्ञ से युक्त (अग्निदेव) प्रातःकालों में और रात्रियों में सविता को उषा को अश्वि (देवों) को भग को (और) अग्नि को लाओ, सोम निचोड़े हुए कण्ववंशी हवि के पहुंचाने वाले आप को प्रदीप्त करते हैं॥ ८॥

(१) जैसा छठे मंत्र की व्याख्या में लिखा है। वैसे ही यहां भी समझना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य कण्व के स्थान में अपने कुल के प्रवर्तक का नाम डाल कर उपासना कर सकता है॥

अग्निर्देवताबृहतीच्छन्दः।८।८।१२।८॥

पतिर्ह्यध्वराणा मग्नेदूतोविशाम॑सि। उषर्बुधआवहसोमपीतये देवाँ अद्यस्वर्दृशः।९।

पतिः	पतिः	स्वामी
हि	खलु	सचमुच
अध्वराणाम्	यज्ञानाम्	यज्ञों का
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
दूतः	दूतः	दूत
विशाम्	प्रजानाम्	प्रजाओं का
असि	असि	तू है
उषःऽबुधः	उषःकालेप्रबुद्धान्	प्रातःकाल में जागने वालों को

आ	आ +	
वह	आ + वह	लाओ
सोमऽपीतये	सोमपानार्थम्	सोम पीने के लिये
देवान्	देवान्	देवताओं को
अद्य	अस्मिन्दिने	आज
स्वःऽदृशः	ज्योतिर्दर्शिनः	प्रकाश के देखने वालों को

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! (त्वम्) खलु यज्ञानांपतिः प्रजानांदूतः (च) असि उषःकाले प्रबुद्धान्ज्योतिर्दर्शिनो देवानद्य सोमपानार्थमावह ॥ ९ ॥

भावार्थः ।

हे अग्नि(देव) आप सचमुच यज्ञोंके स्वामी(और) प्रजाओं के दूत हैं प्रातःकाल में जागने वाले प्रकाश को देखने वाले देवताओं को आज सोम पीने के लिये लावें ॥ ९ ॥

अग्निर्देवता सतोबृहतीच्छन्दः ।१२।८।१२।८।

अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदे-
थ विश्वदर्शतः। असि ग्रामेष्ववि-ता
पुरोहितो ऽसि यज्ञेषु मानुषः ।१०।

अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि,
पूर्वाः	अतीताः	गत
अनु	अनु (लक्ष्य)	पीछे पीछे
उषसः	उषसः	उषाओं को
विभावसो	विभा ज्योतिरेव देव धनं यस्य तत्सम्बुद्धौ	हे ज्योति रूप धन वाले
दीदेथ	दीप्तवानसि (दीदेतिश्छान्दसो दीप्तिकर्मा लिटियल्)	प्रदीप्त हुए हो

विश्वऽदर्शतः	सर्वैर्दर्शनीयः	सब के दर्शन योग्य
असि	असि	तू है
ग्रामेषु	ग्रामेषु	ग्रामों में
अविता	रक्षकः	रक्षा करने वाला
पुरःऽहितः	पुरोहितः	पुरोहित
असि	असि	है
यज्ञेषु	यज्ञेषु	यज्ञों में
मानुषः	मनुष्यस्य हितकारी (हितार्थे अण्)	मनुष्य का हितकारी

संस्कृतार्थः ।

हे ज्योतीरूप धनवन्नग्ने ! सर्वैर्दर्शनीयः (त्वम्) अतीता उषसोऽनु (सत्य) दीप्तवानसि मनुष्यस्य हितकारी (त्वम्) ग्रामेषु रक्षकोऽसि यज्ञेषु पुरोहितः (च) असि ॥ १० ॥

भावार्थः।

हे प्रकाशरूप धन वाले अग्नि(देव) सबके दर्शन योग्य आप गत उषाओं के साथ साथ प्रदीप्त हुए हो, मनुष्य के हितकारी आप ग्रामोमें रक्षा करने वाले हो (और) यज्ञो में पुरोहित हो ॥ १० ॥

* (१) आर्य्य जाति सदा से प्रात कालों में अग्निदेव को प्रदीप्त करती चली आई है ॥

अग्निर्देवता बृहतीच्छन्दः ८।८।१२।८।

नित्वायज्ञस्यसाधन मग्नेहोता रमृत्विजम्।मनुष्वद्देवधीमहिप्रचेत सं जीरंदूतममर्त्यम् ।११।

नि	नि+	–
त्वा	त्वाम्	तुझ को
यज्ञस्य	यज्ञस्य	यज्ञ के
साधनम्	साधनम्	साधन को

अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
होतारम्	होतारम्	होता को
ऋत्विजम्	ऋत्विजम्	ऋत्विज् को
मनुष्वत्	मनुर्यथा	जैसे मनु ने
देव	हे देव	हे देव
धीमहि	नि+धीमहि (स्थापयाम.)	हम स्थापन करते हैं
प्रचेतसम्	प्रकृष्टज्ञानयुक्तम्	बहुत ज्ञानवाले को
जीरम्	वेगवन्तम् (आ०को०)	वेगवान् को
दूतम्	दूतम्	दूत को
अमर्त्यम्	मरण रहितम्	मरण रहित को

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने हे देव ! यज्ञस्यसाधनं होतारमृत्विजं प्रकृष्टज्ञानयुक्तं वेगवन्तं दूतं मरण रहितं त्वां (निज-

गृहेषु)स्थापयामः यथा मनुः (पूर्वकाले स्थापितवान्) ॥ ११ ॥

भावार्थ०॥

हे अग्नि हे देव यज्ञ के साधन, होता, ऋत्विज्, बहुत ज्ञान वाले, वेगवान्, दूत, और मरण रहित आपको हम (अपने घरों में) स्थापन करते हैं जैसे (पूर्वकाल में) मनु ने (किया था) ॥ ११ ॥

मनु, आदि काल के अग्नि स्थापन करने वालों में से हैं। उस समय से अब तक आर्य्य जाति में अग्नि का स्थापन और पूर्व की रीति से पूजन नष्ट नहीं हुआ है।

अग्निर्देवतासतो बृहतीच्छन्दः।१।२।८।१२।८।

यद्देवानामित्रमहः पुरोहितो ऽन्तरो यासि दूत्यम्। सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयो ऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः।१२

यत्	यदा	जब
देवानाम्	देवानाम्	देवताओं के

मित्रऽमहः	हे मित्र नन्दन (महइतिहर्षे आ०को)	हे मित्रों को प्रसन्न करने वाले
पुरःऽहितः	पुरोहितः	पुरोहित
अन्तरः	आत्मीयः (भा०को)	आत्मीय(जन)
यासि	प्राप्नोषि	तू प्राप्त होता है
दूत्यम्	दूतकर्म्म (कर्मणियत)	दूत कर्म्म के लिये
सिन्धोःऽइव	समुद्रस्येव	समुद्र की न्याईं
प्रऽस्वनितासः	प्रकृष्टध्वनियुक्ताः (स्वन शब्देभावेक्त, असुगागमश्च)	बड़ी ध्वनि से यक्त
ऊर्मयः	तरङ्गाः	लहरें
अग्नेः	अग्नेः	अग्नि की
भ्राजन्ते	दीप्यन्ते	चमकती हैं
अर्चयः	ज्वालाः	ज्वालाएं

संस्कृतार्थः।

हे मित्र नन्दन ! यदा देवानां पुरोहित आत्मीयः (च त्वं तेषाम्) दूतकर्म्म प्राप्नोषि (तदा) अग्नेर्ज्वालाः समुद्रस्य तरङ्गाइव प्रकृष्ट ध्वनियुक्ताः (सत्यः) दीप्यन्ते ॥ १२ ॥

भाषार्थ।

हे मित्रों को प्रसन्न करने वाले, जब देवताओं के पुरोहित और आत्मीय आप (उनके) दूत कर्म्म को प्राप्त होते हैं (तब) अग्नि की ज्वालाएं समुद्र की लहरों की न्याईं बड़ी ध्वनिसे युक्त होकर) चमकती हैं ॥ १२ ॥

अग्निर्देवता बृहतीछन्दः ।८।८।१२।८॥

श्रुधिश्रुत्कर्णवह्निभि र्देवैरग्ने-
सयावभिः । आसीदन्तुबर्हिषिमि-
त्रोअर्यमा प्रातर्यावाणोअध्वरम्॥१३॥

श्रुधि	श्रृणु (विकरणस्यलुक्)	सुनो

श्रुत्ऽकर्णा	हे श्रवणसमर्थ कर्णयुक्त	हे सुनने वाले कानों से युक्त
वह्निऽभिः	वोढृभिः (सह)	ढोने वालोंके (साथ)
देवैः	देवैः (सह)	देवताओंके (साथ)
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
सयावऽभिः	समानगतिभिः (समानयान्तीति सयावान, याप्रापणे)	समान गति वालों के (साथ)
आ	आ +	—
सीदन्तु	आ+सीदन्तु-उपविशन्तु	बैठें
बर्हिषि	दर्भे	कुशा पर
मित्रः	मित्रः	मित्र
अर्यमा	अर्यमा	अर्यमा
प्रातःऽयावानः	प्रातःकाले गच्छन्तः (या-प्रापणे वनिप्प्रत्ययः)	प्रातःकाल में जाने वाले

अध्वरम्	यज्ञं	यज्ञ को

संस्कृतार्थः।

हे श्रवणसमर्थकर्णयुक्ताऽग्ने ! समानगतिभिः (धनानाम्)वोढृभिः(च) देवैः(सह, अस्मद्वचनम्)श्रृणु, मित्रोऽर्यमा प्रातःकाले यज्ञम्(प्रति)गच्छन्तः(देवाश्च) बर्हिष्युपविशन्तु ॥१३॥

भाषार्थः।

हे सुनने वाले कानों से युक्त अग्नि(देव) एक जैसी गतिवाले (और धनों के) ढोनेवाले देवताओं के (साथ) हमारे वचन को सुनो, मित्र अर्यमा (और) प्रातःकाल में यज्ञ की ओर जाने वाले देवता कुशा पर बैठें ॥१३॥

अग्नि के उपासक को यह निश्चय रखना चाहिये कि जो कुछ स्तुति प्रार्थना वह अग्नि के सामने करता है उसको अग्निदेव ऐसे ही सुनते हैं जैसे मनुष्य कानों द्वारा सुनता है।

अग्निर्देवता सतोबृहतीच्छन्दः ॥१२।८।१२।८।

श्रृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः । पिबतु-

सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥१४॥

शृण्वन्तु	शृण्वन्तु	सुनें
स्तोमम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
मरुतः	मरुतः	मरुत् देव
सुदानवः	कल्याणदानाः (यास्कः)	कल्याण देने वाले
अग्निजिह्वाः	अग्नेर्जिह्वयाहविरास्वादयन्तीति	अग्नि की जिह्वा से हवि का स्वाद लेने वाले
ऋतावृधः	ऋतस्यवर्धकाः अन्तर्भावितण्यर्थाद्वृधेःक्विप्)	ऋत के बढ़ाने वाले
पिबतु	पिबतु	पीवे
सोमम्	सोमम्	सोम को
वरुणः	वरुणः	वरुण

धृतऽव्रतः	दृढनियमः	दृढ नियम वाला
अश्विऽभ्याम्	अश्विभ्याम्	अश्वि देवों से
उषसा	उषसा	उषा से
सऽजूः	सहितः	साथ

संस्कृतार्थः।

कल्याणदाना अग्नेर्जिह्वयाहविरास्वादयन्त ऋतस्यवर्धका मरुतः(देवाअस्मदीयम्) स्तोत्रं शृण्वन्तु दृढनियमो वरुणोऽश्विभ्यामुषसा(च)सहितः सोमंपिबतु॥ १४॥

भाषार्थः।

कल्याण के देने वाले अग्निकी जिह्वा से हवि का स्वाद लेने वाले ऋत के बढाने वाले मरुत् देवता हमारे स्तोत्र को सुनें दृढ नियम वाले वरुणदेव अश्वि(देव)और उषा के साथ सोम को पीवें॥ १४॥

॥ इतिचतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्॥

ऋ० मं०१ सू०४५ मं०१

अग्निर्देवता प्रस्कण्वऋषिरनुष्टुप्छन्दः८।८।८।८।

त्वमग्नेवसूँरिह रुद्राँआदित्याँ
उत। यजास्वध्वरंजनं मनुजातंघृत
प्रुषम्।१।

त्वम्	त्वम्	तू
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
१ वसून्	वसून्	वसुओं को
इह	इह	यहां
रुद्रान्	रुद्रान्	रुद्रों को
आदित्यान्	आदित्यान्	आदित्यों को
उत	अपिच	और भी
यज	पूजय	पूजो

सुऽअध्वरम्	शोभनयागयुतम्	सुन्दर याग से युक्त को
जनम्	(देव) समूहम्	(देव) समूह को
²मनुऽजातम्	मनोरुत्पन्नम	मनु से उत्पन्न को
³ घृतऽप्रुषम्	घृतस्यसेक्तारम् (प्रुष सेचने)	घी बरसाने वाले को

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने ! त्वमिह वसून्रुद्रानादित्यान् अपिच शोभनयाग युतं मनोर्जातं घृतस्य सेक्तारं (देव) समूहं पूजय॥ १ ॥

भावार्थः।

हे अग्नि आप यहां वसु, रुद्र, आदित्य और सुन्दर याग से युक्त, मनु से उत्पन्न, घी के बरसाने वाले देव समूह को भी पूजिये ॥१ ॥

यह सूक्त प्रातरनुवाक में आग्नेय क्रतु के आश्विन शस्त्र में पढ़ा जाता है (आ०श्रौ० सू०४। १३। ७)

गर्गत्रिरात्र नामी अहीन यज्ञके अन्तिम दिनमें यह सूक्त आज्य शस्त्र है (आ० श्रौ०सू० उ०४। २। ९)

(१) "यदि द७ सर्वंवासयन्त तस्माद्वसव०" (श०ब्रा०११।६।३६)

परमात्मा की वह शक्तियां वा स्वरूप जो, इस सृष्टि को मनुष्यादि प्रजा से बसाने वाले हैं वसु कहलाते हैं जैसे पृथिवी अग्नि,

अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र क्योंकि इन्हीं के आश्रय से ये जीव बसते हैं ॥

(२) मनु यहां पर प्रजापति से तात्पर्य है जिस से देव और मनुष्य सब उत्पन्न हुए हैं ॥

(३) घी बरसाने वाले अर्थात् घृत उपलक्षित अन्नादि पदार्थों के देने वाले ॥

ऐसे कल्याण करने वाले देव समूह को भी अग्नि हमारे लिये पूजें।

अग्निर्देवता अनुष्टुप्छन्दः ।८। ८।८।८।

श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः । तान्रोहिदश्व गिर्वण स्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥२॥

३ श्रुष्टीऽवानः	श्रुष्टी सुखं तद् वनन्ति कामयन्त इति (श्रुष्टीति सुखनाम) (निघं०४।३)	सुख की इच्छा करने वाला
१ हि	खलु	सच च
३ दाशुषे	दत्तवते	देनेवाले के लिए
देवाः	देवाः	देवता

अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
विऽचेतसः	विशिष्ट प्रज्ञानाः	विशेष ज्ञान वाले
तान्	तान्	उनको
{ रोहित्ऽ- अश्व	हे रोहिन्नामकै रश्वै रुपेत (निघ० १।१२)	हे रोहितनामी घोड़ों वाले
गिर्वणः	हे स्तुतिसंसेव्य (गीर्भि.स्तुतिभिर्वन्यते संसेव्यत इति)	हे स्तुतियों से सेवन करने योग्य
१ { त्रयःऽत्रिं- शतम्	त्रयस्त्रिंशत्सङ्ख्याकान्	तेतीस संख्या वालोंको
आ	आ +	—
वह	आ+वह	लाओ

संस्कृतार्थ-।

हे अग्ने ! देवा विशिष्ट प्रज्ञाना (हविः) दत्तवते सुखं कामयमानाः (च) खलु (सन्ति) हे रोहिदश्व हे स्तुति संसेव्य ताँस्त्रयस्त्रिंशत्संख्याकान् (देवान्) आवह ॥ २ ॥

भावार्थः ।

हे अग्नि, देवता विशेष ज्ञान वाले (और हवि) देने वाले के लिए सच मुच सुख की इच्छा करने वाले हैं, हे रोहित्‌नामी घोड़ों वाले हे स्तुति से सेवन करने योग्य उन तेतीस (देवताओं) को लाओ ॥ २ ॥

(१) परमात्मा की नाना शक्ति और स्वरूपों को वेद में कई प्रकार से वर्णन किया गया है। एक प्रकार से ३३ देवता वर्णन किए गए हैं, दूसरे प्रकार से ३०१, एक और प्रकार से ३००३ इत्यादि (श० ब्रा० ११। ६। ३। ४) परन्तु वास्तव में देवता एकही शक्ति के नाना रूप और नाम होने से असंख्य हैं हम तो इतना ही कह सकते हैं ॥

(२) कि सब देवता विज्ञान वाले हैं, जड़ (Blind Forces) नहीं हैं ॥

(३) और जो अनुग्रह की वांछा से लौकिक राजा आदि की अनुचित सेवा न करता हुआ इन को पूज्य मान,कर हवि आदि देने का परिश्रम उठाता है, उस के लिए ये देवता सदा सुख की कामना करते हैं ॥

अग्निर्देवता, अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८।

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदोविरूपवत् । अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्यश्रुधीहवम् ॥३॥

प्रियमेधऽवत्	प्रियमेधस्येव	प्रियमेध की न्याईं
अत्रिऽवत्	अत्रेरिव	अत्रि की न्याईं
जातऽवेदः	हे जातानां ज्ञातः	हे उत्पन्न हुओं के जानने वाले
विरूपऽवत्	विरूपस्येव	विरूप की न्याईं
अङ्गिरस्वत्	अङ्गिरसइव	अङ्गिरा की न्याईं
महिऽव्रत	हे महाकर्मन्	हे बड़े कर्म वाले
प्रस्कण्वस्य	प्रस्कण्वस्य	प्रस्कण्व की
श्रुधी	शृणु	सुनो
हवम्	आह्वानम्	पुकार को

संस्कृतार्थः

हे महाकर्मन् जातानांज्ञातः(अग्ने !)प्रियमेधाऽत्रि
विरूपाऽङ्गिरस इव(मम) प्रस्कण्वस्याऽऽह्वानंशृणु॥३॥

भाषार्थः।

हे उत्पन्न हुओं के जानने वाले बड़े कर्म्म वाले (अग्नि, जिस प्रकार आपने) प्रियमेध, अत्रि, विरूप, (और) अङ्गिरा की (पुकार को सुना था) उसी प्रकार (मुझ) प्रस्कण्व की पुकार को सुनो ॥ ३ ॥

प्रियमेध, अत्रि, विरूप और अङ्गिरा आर्य्यजाति के पूर्व पुरुषाओं में से हैं जैसे उनकी पुकार को सुनकर अग्निदेवने उनको रक्षा की थी, वैसे हमारी भी करें ॥

अग्निर्देवता, अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८।

महिकेरवऊतये प्रियमेधाअहूषत । राजन्तमध्वराणा मग्निंशुक्रे-णशोचिषा ।४।

१ { महिऽ-केरवः	प्रौढकर्म्माणः (महयोमहान्तःकारवः कर्म्माणियेषान्तेतथोक्ताः (आकारस्यैकारश्छान्दसः)	बड़े कर्म्मों वाले
ऊतये	रक्षाऽर्थम्	रक्षा के लिये

प्रियऽमेधाः	प्रियमेधाः	प्रियमेधवंशियोंने
अहूषत	आहूतवन्तः	बुलाया है
राजन्तम्	दीप्यमानम्	चमकते हुए को
अध्वराणाम्	यज्ञानाम् (मध्ये)	यज्ञों के (बीच में)
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को
शुक्रेण	शुभ्रेण	उज्ज्वल से
शोचिषा	प्रकाशेन	प्रकाश से

संस्कृतार्थः ।

प्रौढकर्म्माणः प्रियमेधा यज्ञानाम् (मध्ये) शुभ्रप्रकाशेन दीप्यमानमग्निं रक्षार्थमाहूतवन्तः॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

बड़े कर्म्मों वाले प्रियमेध वंशियों ने यज्ञों के(बीच में) उज्ज्वल प्रकाशसे चमकते हुए अग्निको रक्षा के लिये बुलाया है ॥ ४ ॥

(१) प्रियमेध वंशियों ने बड़े २ कर्म किये हैं जो प्राचीन इतिहास के लुप्त होजाने से हमें विदित नहीं हैं ये सब अग्नि के उपासक थे ॥

अग्निर्देवता, अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८।

घृताहवनसन्त्ये माउषुश्रुधी- गिरः। याभिःकण्वस्यसूनवो हवन्ते ऽवसेत्वा ।५।

{ घृतऽआ-हवन	हे घृतेनहूयमान!	हे घृत से हवन करने योग्य
सन्त्य	हे दानसाधो (सन् दाने)	हे दानी
इमाः	इमाः	ये
ऊम्०	(पूरणः)	–
सु	सु+	–
श्रुधि	सु+श्रुधि सुष्ठु शृणु	खूब सुन
गिरः	स्तुतीः	स्तुतिओं को

याभिः	याभिः	जिनसे
कण्वस्य	कण्वस्य	कण्व के
सूनवः	पुत्राः	पुत्र
हवन्ते	आह्वयन्ति	बुलाते हैं
अवसे	रक्षाऽर्थम्	रक्षा के लिये
त्वा	त्वाम्	तुझ को

संस्कृतार्थः ।

हे घृतेनहूयमान ! दानसाधो (अग्ने) याभिः (स्तुतिभिः)कण्वस्यपुत्रा रक्षाऽर्थं त्वामाह्वयन्ति (ताः) इमाः स्तुतीः सुष्ठु शृणु ॥५॥

भावार्थः ।

हे घृत से हवन करने योग्य दानी (अग्निदेव) जिन (स्तुतियों से) कण्वकेपुत्र रक्षा के लिये आप को बुलाते हैं (उन) इन स्तुतियों को खूब सुनिये॥५॥

(१) कण्व के पुत्र अर्थात् मैं प्रस्कण्व और दूसरे मेरे बन्धु वर्ग ।

अग्निर्देवता, अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८।

त्वांचित्रश्रवस्तम हवन्तेविक्षु-
जन्तवः।शोचिष्केशंपुरुप्रिया ऽग्ने-
हव्यायवोह्ळवे ।६।

त्वाम्	त्वाम्	तुझ को
चित्रश्रवः ऽ तम	हे अतिशयेन चित्रकीर्तियुक	हे बड़ीविचित्र कीर्ति वाले
हवन्ते	आह्वयन्ति	बुलाते हैं
१ विक्षु	प्रजासु	प्रजाओं में
जन्तवः	मनुष्याः(निघं०२।३)	मनुष्य
शोचिः ऽ- केशम्	दीप्तिरूपकेशो-पेतम्	प्रकाश रूप वालों वाले को

पुरुऽप्रिय	हे बहुप्रिय ('पुरु' इति बहुनाम) (निघं० १।१)	हे बहुतों के प्यारे
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
हव्याय	हव्याय	हवि के लिये
वोळ्हवे	वोढुम् (वहतेः 'तुमर्थे' तवेन् प्रत्ययः)	ले जाने के लिये

संस्कृतार्थः।

हे अतिशयेन चित्रकीर्तियुक्त बहुप्रियाऽग्ने ! प्रकाशरूपकेशयुक्तं त्वां हविषो वहनार्थं मनुष्याः प्रजानां मध्यआह्वयन्ति ॥ ६ ॥

भावार्थः।

हे बड़ी विचित्र कीर्तिसे युक्त बहुतोंके प्यारे अग्नि (देव) प्रकाश रूप वालों वाले आपको हवि लेजाने के लिए मनुष्य प्रजाओं के बीच में बुलाते हैं ॥ ६ ॥

(१) अग्निदेव को मनुष्य अपने २ घरों में प्रजाओं के बीच में इसलिये बुलाते हैं—कि यह देवताओं के लिए हवि को ले जावें ॥

अग्निर्देवता, अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८॥

निर्त्वा होतारमृत्विजं दधिरेव-

सुवित्तमम् । श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं वि-
प्राअग्ने दिविष्टिषु ॥७॥

नि	नि+	—
त्वा	त्वाम्	तुझ को
१ होतारम्	होतारम्	होता को
१ { ऋत्विजम्	ऋत्विजम्	ऋत्विज् को
दधिरे	नि + दधिरे स्थापितवन्तः	स्थापन किया है
{ वसुवित्ऽतमम्	अतिशयेनधनस्य ज्ञातारम्	धनके बहुत ज्ञान वाले को
२ { श्रुत्ऽकर्णम्	श्रवणार्थंकर्णोपेतम्	सुनने के लिये कानों से युक्त को
{ सप्रथःऽतमम्	अतिप्रसिद्धम्	अति प्रसिद्धको

विप्राः	मेधाविनः	बुद्धिमानोंने
अग्ने	हे अग्ने!	हे अग्नि
दिविष्टिषु	दिवः स्वर्गस्य, इष्टय इच्छायेषु (यज्ञेषु)	स्वर्ग की इच्छासे युक्त (यज्ञों) में

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! मेधाविना होतारमृत्विजमतिशयेन धनस्य ज्ञातारमतिप्रसिद्ध श्रवणार्थं कर्णोपेतं त्वां स्वर्गेच्छायुक्तेषु (यज्ञेषु) स्थापितवन्तः ॥ ७ ॥

भावार्थः ।

हे अग्नि, होता ऋत्विज् धनके बहुत ज्ञानवाले, अतिप्रसिद्ध, सुनने के लिए कानों से युक्त आपको बुद्धिमानोंने स्वर्ग की इच्छासे युक्त (यज्ञों) में स्थापन किया है ॥ ७ ॥

(१) यज्ञ में मनुष्य होता का काम हवि ग्रहण करने के लिए देवताओं को बुलाने और हवि स्वीकार करने के लिए उन से प्रार्थना करने का है यही कर्म देवहोता अग्नि का है ॥

(२) यद्यपि हम अग्निके कानों को नहीं देखते। परन्तु जानते हैं कि वह सुनने के लिए कानों से युक्त है और हमारी स्तुति और प्रार्थना को सुनते हैं ॥

(३) बुद्धिमान् परलोक के सुख के साधन निमित्त अग्नि को

स्थापन करके यज्ञ करते हैं जिससे वे दिनों दिन पाप को छोड़कर सुकर्म में प्रवृत्त होते जाते हैं और शरीर को त्यागने पर सूर्य्यादि देवलोकों को प्राप्त करते हैं ॥

अग्निर्देवता, अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८॥

आत्वाविप्राअचुच्यवुः सुतसोमा अभिप्रयः । बृहद्भाबिभ्रतोहवि रग्ने-मर्तायदाशुषे ॥८॥

आ	आ+	–
त्वा	त्वाम्	तुझ को
विप्राः	मेधाविनः	बुद्धिमानों ने
अचुच्यवुः	आ+अचुच्यवुः प्रापितवन्तः (अन्तर्भावितण्यर्थः)	प्राप्त कराया है
सुतऽसोमाः	अभिषुतसोम युक्ताः	जिन्होंने सोम निचोड़ा है
अभि	प्रति	प्रति

प्रयः	अन्नम्	अन्न को
बृहत्	महान्तम् 'सुपा'मितिविभक्तेर्लुक्)	बड़े को
भाः	भासमानम् (सुपांसुलुगितिविभक्तेर्लुक्)	प्रकाशमान को
बिभ्रतः	धारयन्तः	धारते हुए
हविः	हविः	हवि को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
मर्ताय	मरणधर्माय	मरण धर्मी के लिये
दाशुषे	यजमानाय	यजमान के लिये

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! अभिषुतसोमयुक्ता हविर्धारयन्तो मेधाविन (हविर्लक्षणम्)अन्न प्रति महान्तं भासमान त्वां मरणधर्माय यजमानाय प्रापितवन्तः॥८॥

भावार्थ ।

हे अग्नि, सोम निचोडे हुए (और) हवि को धारते हुए बुद्धिमानों ने (हविरूप) अन्न के प्रति

बड़े (और) प्रकाशमान आपको मरणधर्मा यजमान के लिए प्राप्त कराया है ॥ ८ ॥

मेधावी सुत सोम ऋत्विजों का मरणधर्मा यजमान पर यह बड़ा अनुग्रह है कि महान् प्रकाश युक्त अग्निदेव आकर उसका अन्न स्वयं ग्रहण करें और अन्य देवताओं को पहुंचावें।

अग्निर्देवता,अनुष्टुप्छन्दः।८।८।८।८॥

प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य। इहाऽद्य दैव्यं जनं बर्हिरासादयावसो ॥९॥

प्रातः-ऽयाव्नः	प्रातरागच्छतः (देवान्) (आकारलोपः)	प्रातःकाल में आनेवाले (देवताओं को)
सहःऽकृत	हे बलेनोत्पादित (सह इतिबलनाम) (निघं०२।९)	हे बल से उत्पन्न किए गए
सोमऽपेयाय	सोमपानाऽर्थम्	सोमपान के लिए
सन्त्य	हे दानसाधो !	हे दानी
इह	इह	यहां

अद्य	अद्य	आज
दैव्यम्	दैव्यम्+	–
जनम्	दैव्यम्+जनम्, देव समूहम्	देव समूह को
बर्हिः	दर्भे (सप्तम्यर्थे द्वितीया)	कुशापर
आ	आ+	–
सादय	आ + सादय उपवेशण	बिठाओ
वसो०	हे धनाधिप (आ०को०)	हे धन के स्वामी

संस्कृतार्थः ।

हे बलेनोत्पादित दानसाधो धनाऽधिप (अग्ने!) अद्याऽस्मिन्स्थाने प्रातरागच्छतोदेवान् (अन्यमपि) देव समूहं सोमपानार्थं दर्भे उपवेशय ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

हे बल से उत्पन्न किए गए, दानी, धन के स्वामी (अग्निदेव) आज यहां पर प्रातःकाल में आने वाले देवताओं को (और अन्य) देव समूह को सोम पीने के लिए कुशा पर बिठाओ ॥ ९ ॥

(१) प्रातःकाल में आने वाले देवता अग्नि, उषा और अश्वि हैं।

अग्निर्देवता, अनुष्टुप्छन्दः।८।८।८।८।।

अर्वाञ्चं दैव्यंजन मग्नेयक्ष्वस-
हूतिभिः। अयंसोमःसुदानव स्तं-
पाततिरोअह्न्यम् ।१०।

अर्वाञ्चम्	अभिमुखमागतम्	सम्मुख आते हुए को
दैव्यम्	दैव्यम् +	
जनम्	दैव्यम्+जनम्, देव समूहम्,	देव समूह को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
यक्ष्व	यज	पूजो
सहूतिऽभिः	समाना ह्वानैः	इकट्ठेबुलाकर
अयम्	अयम्	यह
सोमः	सोमः	सोम

सुऽदानवः	हेकल्याणदानाः (यास्का)	हे कल्याणके देने वाले
तम्	तम्	उसको
पात	पिबत (वापोलुक)	पीओ
१ { तिरःऽअ- ह्नम्	ह्यस्तनम् (महोऽतीतयवर्तत इति तम्)	कल के (निचोड़े- हुए) को

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने। अभिमुखमागतं देवसमूहं समानाः ह्वानैर्यज,हे कल्याणदानाः(देवाः!) अयंसोमः (वर्त्तते) तं ह्यस्तनं - (सुतंसोमम्) पिबत ॥ १० ॥

भावार्थः ।

हे अग्नि सम्मुख हुए देव समूह को इकट्ठे बुला कर पूजिए, हे कल्याण के देनेवाले (देवताओ). यह सोम (वर्त्तमान है) इस कल के (निचोड़े हुए सोम) को आप पीवें ॥१०॥

(१) एक दिन पहले निचोड़कर रखने से सोम में विशेष गुण होजाते हैं ॥

इति पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋ० मं०१ सू०४६ मं०१

अश्विनौदेवते प्रस्कण्वऋषिर्गायत्री छन्दः ।८।८।८।

एषोउषाअपूर्व्या व्युच्छतिप्रिया दिवः । स्तुषेवामश्विनाबृहत् ।१।

एषो०	एषा	यह
उषाः	उषाः	उषा
१ अपूर्व्या	पूर्वमविद्यामाना	जो पहिले नहीं दीखती थी
वि	वि +	—
उच्छति	वि+उच्छति आविर्भवति	प्रकट होती है
प्रिया	प्रिया	प्यारी
दिवः	द्युलोकात्	आकाश से
स्तषे	स्तौमि	स्तुति करता हूं
वाम	युवाम्	तुम दोनों को

अश्विना	हे अश्विनौ !	हेअश्वि देवताओ
बृहत्	अतिशयेन	अतिशय करके

संस्कृतार्थः ।

एषा पूर्वमविद्यमाना प्रिया उषा द्युलोकाद्‌आविर्भवति हेअश्विनौ ! (अस्मिन्काले) युवामतिशयेन स्तौमि ॥१॥

भावार्थ. ।

जो पहले नहीं दीखती थी ऐसी प्यारी उषा द्युलोक से प्रकट होती है, हे अश्वि देवताओ (ऐसे काल में) मैं आप की अतिशय करके स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

विनियोग—यह सूक्त प्रातरनुवाक में आश्विन क्रतु के आश्विन शस्त्र में पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू० ४ । १५ । २)

(१) "अपूर्व्या" कहने से प्रतीत होता है कि ऋषि को बहुत समय के पीछे उषा का दर्शन हुआ है, ऐसा मेरु के समीप देशों में होता है। यहां कई महीनों की रात्रिके अन्तमें उषा प्रकटहोकर बहुत दिनों तक विद्यमान रहती है। फिर सूर्य के उदय होने से उसके प्रकाश में लय होजाती है।

अश्विनौदेवते निचृद्गायत्रीछन्दः ।८।७।८।

याद॒सा॒सिन्धु॑मातरा मनो॒तरा॑र॒यी॒णाम् । धि॒याद॑े॒वाव॑सु॒विदा ।२।

या	यौ	जो
दस्रा	उग्रौ	भयानक
सिन्धुऽमातरा	समुद्र मातृकौ	समुद्र से उत्पन्न
मनोतरा	मनसोत्पादकौ (पा०को०)	मनसे उत्पन्न करने वाले
रयीणाम्	धनानाम	धनों के
धिया	ध्यानेन	ध्यान से
देवा	देवौ	देवता
वसुऽविदा	धनस्यज्ञातारौ	धन के जानने वाले

संस्कृतार्थः ।

यौ देवौ समुद्रोत्पन्नौ, मनसा धनानामुत्पादकौ ध्यानेन धनस्य ज्ञातारौ (च स्तः) ॥ २ ॥

भाषार्थ ।

जो देवता समुद्र से उत्पन्न, मन से धनों के

उत्पादक, (और) ध्यान द्वारा धन के जानने वाले (हैं) ॥ २ ॥

(१) इस सूक्त में समुद्र से सर्वत्र अन्तरिक्ष के जल समझने चाहियें, इन्हीं से अदिति देव और उषा की भी उत्पत्ति होती है यदि अन्तरिक्ष में जल और वायु (atmosphore) न होते, तो सूर्य्य उदय तक आकाश अत्यन्त काला दिखाई देता जिस में नक्षत्रों से भिन्न और किसी प्रकार की ज्योति नहीं दिखाई देती, और सूर्य्य उदय होने पर धूप और प्रकाश एक दम प्रकट होजाते ॥

अश्विनौदेवते गायत्रीछन्दः ।८।८।८॥

वच्यन्तेवांककुहासो जूर्णायाम-
धिविष्टपि । यद्वांरथोविभिष्प-
तात् ।३।

वच्यन्ते	प्रापयन्ति (ऋ०।१।९७।२)	पहुंचाते हैं
वाम्	युवाम्	तुम दोनों को
ककुहासः	महान्तः (निघ०३।३)	महान्
१ जूर्णायाम्	पुरातन्याम्	प्राचीन में

अधि	अधि+	-
१ विष्टपि	अधि+विष्टपि लोके (षा०को०)	लोक में
यत्	यदा	जब
वाम्	युवयोः	तुम दोनों का
रथः	रथः	रथ
२ विऽभिः	उड्डीयमानैः (अश्वैः)	उडने वाले(घोड़ों) से
पतात्	गच्छति (पत्लृगतौ) (अस्माल्लेटघाडागमः)	जाता है

सस्नार्थः।

(हे अश्विनौ!) यदा युवयो रथउड्डीयमानैः (अश्वैः) गच्छति (तदा) महान्तः (अश्वाः) युवां पुरातनेलोके प्रापयन्ति ॥ ३ ॥

भावार्थः।

(हे अश्विदेवताओ) जब आप का रथ उडने वाले घोड़ों से चलता है, (तब)महान् (अश्व) आपको प्राचीन लोक में ले जाते हैं ॥ ३ ॥

विषय सूची।

ऋग्वेद संहिता अङ्क १३ से २१ तक।

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
९७६	१८	भूत्	मूत्
९७७	१६	मह	सह
९८०	२	चित्	चित्
,,	७	कुपवन्ति	कुर्वन्ति
९८१	४	यदेपा	यदेषा
,,	१०	यद्देच	यद्देव
,,	१६	यत	यत्
९८२	२	(लङर्थेलुङ्)	(लङर्थेलुङ्)
,,	१८	पथिवी	पृथिवी
९८७	४	सस	सुस
,,	७	सुन्तु	सुन्तु
,,	१२	पचक्षा	पचक्षो
९९०	१४	विस्तृतती	विस्तृती
९९२	१४	मवद	मवद्
,,	१६	सामम्	सुमम्
९९४	२	कास्य	कार्य
,,	५	किस	किमत्रे
९९६	१६	सन्त	सन्तु
९९८	६	ाव्युच्य	वियुच्य
९९९	१४	देवता	देवताः
१०००	८	भूम्याम	भूम्याम्
१००१	१४	इवद्रा	इवद्रो
१००२	१७	लुङ	लुङ्
१००३	५	सवया	सर्वया
,,	१४	पीचि ।	पाची
१००४	९	उपा+	उपो+
१००५	५	पथिवी	पृथिवी
,,	८	प्रताचां	प्रतीचां
,,	१४	यज्य	युज्य
,,	१८	।वन्दु	विन्दु
१००७	१५	कसु)	कसुः)
१००८	९	पूवकाल	पूर्वकाल
,,	१५	यच्मे	युच्मे
,,	१९	पात्व)	पात्वम्)
१०११	११	प्रचेतसः	प्रऽचेतसः
१०१२	१८	विभया	विभूया
१०१३	४	पखिलिस	पखिलस्
१०१४	९	काप	कोप
१०१५	१५	प्रथना	प्रार्थना
१०१८	५	उपद्रुते	उपऽद्रुते
	११	सुऽ	सुऽ
१०२०	५	नयन्तु	नयन्तु

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१०२०	८	पति	पति.
१०२१	६	षड्गिराध	षड्गिऽराध
,,	१०	मानयन्त	मावयन्त
१०२२	६	पासे"	पश्यसे"
१०२३	८	राक्षतम्	रक्षितम्
१०२३	१२	कळाम	कळाम्
,,	१३	सुऽवीराम	सुऽवीराम्
,,	१३	वारोपताम	वोरोपेताम्
,,	१२	वीरासे	वीरो मे
,,	१५	यजामह	यजामहे
,,	१५	प्रयाग	प्रयोग
१०२७	१७	वाचेम	वोचेम
,,	१८	सिङि	सिङि
१०२८	५	पदं)	पदम्)
१०३०	८	पाधीन	पधीन
१०३१	२	तिष्ठात	तिष्ठति
१०३१	४	र्याति	र्यन्ति
,,	१४	तीत्य	न्तीत्य
१०३१	६	त्यन्तर	त्यन्तर्
,,	१८	पाधीन	पधीन
१०३२	१२	राजाभः	राजभिः
१०३३	८	तुकमः	तुक्ता
,,	२१	मनिवास	मुनिवासं
१०३५	७	यम	यम्
,,	१६	ते	ते
,,	,,	हियते	ह्रियते
१०३६	११	यं बाहु	यं बाहु
,,	१५	परयन्ति	पूरयन्ति
१०३७	१८	हनन्ति	हनन्ति
१०४०	१६	मादित्या	मादित्यो
,,	१८	दृष्ट(ह्राव	दुष्ट(ह्वि
१०४२	,,	वस	वस
,,	,,	कमत	कमत
१०४३	१४	स्तुन्	स्तुन्
१०४४	६	कणा	मणो
१०४५	७	(हविरूपम्)	(हवीरूपम्)
,,	१६	मणो	मणो
१०४६	१४	,,	,,

अंक २७ २८] [मार्गशीर्ष-पौष १

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर व्याख्यान से युक्त

जिसको पण्डितगणेशदत्त व्यास और मुलतानिवासी पं०शङ्करदत्त शास्त्री की सहायता से शिवनाथ आहिताग्नि ने सम्पादन किया

लाहौर

पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में प्रिण्टर लाला लाससमन के अधिकार से छपा।

१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)

पिछले २४ अंकों का मूल्य ५॥)

ऋग्वेद संहिता अङ्क२५,२६ शुद्धाशुद्धि पत्रम् ।

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१०५०	१०	कंत	कुत	१०६३	१६	करते	करते हैं
,,	१४	हमा	हमारे	१०६५	४	चेतसे	चैतसे
,,	१९	दखो	देखो	,,	७	व ाय	बद्राय
,,	२०	दवता	देवता	,,	८	बुद्धिमान	बुद्धिमान्
१०५१	१६	(परणाः)	(पूरणः)	१०७६	१८	बन्धकाः	बन्धकाः
१०५२	१४	च ।+	चप+	१०७८	१५	दपस	दपस
१०५३	६	स्याह	स्याहै	,,	,,	द्विषर्ध	द्विषर्ध
,,	८	ता	तम्	१०८०	१५	न्दने	न्दिने
,,	११	संतेः	सुतेः	१०८२	८	दतः	दतः
१०५५	१५	ज्ञानवाम	ज्ञानवान्	,,	,,	,,	,,
,,	१०	मतुपच)	मतुप् च)	,,	१०	वडा	वोडा
१०५८	११	पपन्	पूपन्	१०८७	८	तारम	तारम्
१०६१	१६	[illegible]	[illegible]				
,,	१०	स्पदरम्	स्पुदरम्	१०९०	१०	सनम्	जनम्
१०६२	४	सट)	सट्)	१०९१	१०	करतेहैं	करतीहैं

(१) प्राचीन लोक यों है जिसमें उत्तर मेरु के समीपस्थ देशों में अश्वि देवताओं का रथ बहुत दिनों तक चारों ओर घूमता हुआ दिखाई देता है ॥

(२) अश्वि देवताओं के घोड़े आकाश में बहुत शीघ्र उड़ते हैं तभी तो सहस्रों कोस की परिक्रमा २४ घण्टे में करलेते हैं ॥

अश्विनौ,देवते निचृद्गायत्रीछन्दः ।७।८।८।

हविषाजारोअपां पिपर्तिपपुरि- नरा । पिताकुटस्यचर्षणिः ।४।

हविषा	हविषा	हवि से
१ जारः	कामुकः	अनुराग करने वाला
१ अपाम्	उदकानाम्	जलों के
पिपर्ति	पूरयति	पूर्ण करता है
पपुरिः	(धनधान्येन) पूरयिता	(धनधान्य से) पूर्ण करनेवाला
नरा	हे नरौ	हे नरो

पिता	पालकः	पालने वाला
कुटस्य	गृहस्य (आ०को०)	घरके
चर्षणिः	द्रष्टा	देखने वाला

संस्कृतार्थः ।

हे नरौ, अपांजारः (धनधान्येन) पूरयिता गृहस्य पालकः (कर्म्मणः) द्रष्टा (अग्निः) (अस्मद्दत्तेन) हविषा (युवाम्) पूरयति ॥४॥

भाषार्थः ।

हे नरो जलों से अनुराग करनेवाले (धनधान्य से) पूर्ण करने वाले घर के पालक (और कर्म्म के) द्रष्टा (अग्नि) (हम से दी हुई) हवि से (आप को) पूर्ण करते हैं ॥ ४ ॥

(१) "जलों के जार" अग्निदेव हैं (देखो तै० ब्रा० १।१।३।८) जो हवि से देवताओं को पूर्ण करते हैं, और यजमान के घर को धन धान्य से पूर्ण करते हैं ॥

अश्विनौदेवते, निचृद्गायत्रीछन्दः ७।८।८॥

आदारोवांमतीनां नासत्यामत-

वचसा। पातंसोमस्यधृष्णुया ।५।

१ आऽदारः	प्रेरकः (आ०को०)	प्रेरण करने वाला
१ वाम्	युवयोः	तुम दोनों की
१ मतीनाम्	स्तुतीनाम्	स्तुतियों का
नासत्या	हे अनृत रहितौ	हे झूठ से रहित
२ मतऽव-चसा	मतं स्तुतिरूपंवचो याभ्यां तौ, तत्सम्बुद्धौ	हे स्तुति रूपवचन के आदर करने वालो
पातम्	पिबतम (शपोलुक्पिबादेशा-भावश्च)	पान करो
सोमस्य	सोमम् (द्वितीयाऽर्थेषष्ठी)	सोम को
धृष्णुऽया	धृष्टतया (सुपांसुलुगितियादा-देशः)	बेधड़क हो कर

संस्कृतार्थः ।

हे अनृत रहितौ (स्तुतिरूपे)वचस्यादरयुक्तौ (अ०

अश्विनौ) युवयोः स्तुतीनां प्रेरकः (यःसोमोऽस्ति) (तम्) सोमं धृष्टतया पिबतम् ॥५॥

भापार्थः ।

हे झूठ से रहित(स्तुतिरूप)वचन में आदर करने वाले (अश्विदेवो) आप की स्तुतियों का प्रेरण करने वाला जो सोम है उस को बेधड़क होकर पाओ॥५

(१) सोम स्तुतियों का प्रेरक है। सोमपान से चित्त की चञ्चलता मिट कर मनुष्य स्तुति शील होजाता है।

अश्विनौ देवते गायत्रीछन्दः ८।८।८ ॥

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः। तामस्मे रासाथामिषम् ॥६॥

या	या	जो
नः	अस्मान्	हम को
पीपरत्	पालयेत्	पाले
अश्विना	हे अश्विनौ	हे अश्विदेवताओ

ज्योतिष्मती	ज्योतिर्युक्ता	प्रकाश से युक्त
तमः	तमः+तिरः अन्धकारात्तरः(भूतम्)	अन्धकारसे रहित
तिरः	+ तिरः	--
ताम्	ताम्	उसको
अस्मे०	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
रासाथाम्	दत्तम् (रा-दाने लोडर्थे लुङ्)	दो
इषम्	अन्नम्	अन्न को

संस्कृतार्थः।

हे अश्विनौ!ज्योतिषायुक्तमन्धकारात्तिरः(भूतम्) यदन्नमस्मान्पालयेत्तदस्मभ्यंदत्तम् ॥६॥

भाषार्थः।

हे अश्विदेवताओ प्रकाशसे युक्त(और)अन्धकार से रहित जो अन्न हमारी पालना करे उसको हमारे ताईं दो ॥ ६ ॥

अश्विदेव हमें ऐसा अन्न दें जो हमारी बुद्धि में प्रकाश को उत्पन्न करे और अज्ञान रूपी अन्धकार को हटावे।

अश्विनी देवते, निचृद्गायत्रीछन्दः ।८।७।८

आनोनावामतीनां यातंपारायगन्तवे।
युञ्जाथामश्विनारथम् ।७।

आ	आ+	—
नः	अस्मान् (प्रति)	हमारे (प्रति)
नावा	नावा	बेड़ी से
मतीनाम्	स्तुतीनाम्	स्तुतियों की
यातम्	आ+यातम्	आइये
पाराय	पाराय+	—
गन्तवे	पाराय+गन्तवे पारं प्राप्तुम् (तुमर्थेतवे प्रत्ययः)	जाने के लिए
युञ्जाथाम्	युञ्जाथाम्	जोड़ो
अश्विना	हे अश्विनौ	हे अश्विदेवताओ
रथम्	रथम्	रथ को

संस्कृतार्थः।

हे अश्विनौ ! (समुद्रात्) अस्मान् (प्रति) पारम् प्राप्तुं स्तुतीनां नावाऽऽगच्छतम्, (ततोऽवतीर्य) रथं युञ्जाथाम् ॥ ७ ॥

भावार्थः।

हे अश्विदेवो (समुद्र से) हमारे प्रति पार होने के लिए स्तुतियों की बेड़ी से आओ,(उस से उतर कर) रथ को जोड़ो ॥ ७ ॥

अश्विद्देव अन्तरिक्षके जलोंसे पार द्युलोकमेंहं हमारी स्तुतियों की बेड़ी उन को जलों के इस किनारे ले आवे और यहां से उनका रथ उन्हें हमारे पास ले आवे।

अश्विनौदेवते, निचृद्गायत्रीछन्दः ।७।८।८

अरित्रंवांदिवस्पृथु तीर्थेसिन्धूनां रथः । धियायुयुज्रइन्दवः ।८।

अरित्रम्	समुद्रयानम् (आ०को०)	जहाज
वाम्	युवयोः	तुम दोनों का
दिवः	द्युलोकात्	आकाश से

पृथु	विस्तीर्णम्	चौड़ा
तीर्थे	अवतरण प्रदेशे	किनारे पर
सिन्धूनाम्	समुद्राणाम्	समुद्रों के
रथः	रथः	रथ
धिया	कर्मणा (निघ०२।१)	कर्म से
युयुज्रे	युक्ताबभूवुः	युक्त हुए हैं
इन्दवः	सोमाः	सोम

संस्कृतार्थः।

(हे अश्विनौ) युवयोःसमुद्रयानमाकाशात् (अपि) विस्तीर्णम् (अस्ति) समुद्राणामवतरण प्रदेशे रथः (विद्यते) सोमाः (च,अभिषवादि) कर्मणायुक्ताः बभूवुः ॥ ८॥

भाषार्थः।

(हे अश्विदेवताओ) आप का जहाज़ आकाश से (भी) चौड़ा (है) समुद्रों के किनारे पर रथ (विद्यमान है)(और)सोम (भी निचोड़ने आदि) कर्म से युक्त हुए हुए हैं ॥ ८ ॥

हमारी स्तुति रूप जहाज़ जिस पर चढ़ कर अश्विदेव अन्तरिक्ष के पार आते हैं द्युलोक से भी चौड़ा है, वहां से हमारे घर तक आनेके लिए तीर्थ (port) पर रथ उपस्थित है, सोम भी निचोड़े हुए हैं। (वाक्य पूर्ति के लिये देखो अगला मन्त्र)

अश्विनौदेवते निचृद्गायत्रीछन्दः।८।७।८।

दिवस्कण्वासइन्दवो वसुसिन्धूनांपदे । स्वंवव्रिंकुहधित्सथः ।९।

दिवः	द्युलोके (सप्तम्यर्थे षष्ठी)	आकाश में
कण्वासः	हे कण्वाः	हे कण्वो
इन्दवः	सोमाः	सोम
वसु	धनम्	धन
सिन्धूनाम्	समुद्राणाम्	समुद्रों के
पदे	स्थाने	स्थान में
स्वम्	स्वम्	अपने

व॒प्रिम्	रूपम् (निघं० ३।७)	रूपको
कु॑ह	कुत्र	कहां
धि॒त्स॒थः	धारयितुमिच्छथः	धारण करना चाहते हो

संस्कृतार्थः ।

हे कण्वाः! सोमा द्युलोके (प्राप्ताः) धनं समुद्राणाम् (अवतरण-) स्थाने (विद्यते) (हे अश्विनौ) निजस्वरूपं कुत्र धारयितुमिच्छथः ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

हे कण्वो ! सोम द्युलोक में (पहुंच गए) धन समुद्रों के किनारे पर (है) हे अश्विदेवो आप अपना स्वरूप कहां धारण करना चाहते हो ॥९॥

ऋषि कहते हैं कि हे कण्वो हम अश्विदेवों को सोम निचोड़ कर अर्पण कर चुके हैं। जो अग्निद्वारा द्युलोक में पहुंच गया, धन जो अश्विदेवोंके रथ में भरा है समुद्रों के तीर पर विद्यमान है। हे अश्विदेवो अब आप कहां आना चाहते हो। द्युलोक में या किसी अन्य यजमान के घर।

अश्विनौदेवते गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

अभू॑दु॒भा उ॒ अं॒शवे॒ हिर॑ण्यं॒प्रति॒-
सूर्यः॑ । व्य॑ख्यज्जि॒ह्वया॑ऽसि॑तः ॥१०॥

अभूत्	अभूत्	हुआ
उम्०	खलु	सच मुच
भाः	छाया (भा०को०)	छाया
उम्०	(पूरणः)	—
अंशवे	ज्योतिषे	प्रकाशके लिये
हिरण्यम्	हिरण्यम्+	—
प्रति	हिरण्यम्+प्रति स्वर्ण लक्षण	स्वर्ण के सदश
सूर्यः	सूर्य्यः	सूर्य्य
वि	वि +	—
अख्यत्	वि+अख्यत प्रकटोऽभवत्	प्रकट हुआ
जिह्वया	जिह्वया	जिह्वा से
असितः	कृष्णवर्णः	काले रङ्ग वाला

संस्कृतार्थः ।

ज्योतिषे खलु छायाऽभवत् सूर्य्यो हिरण्यसदृशः (संवृत्तः) (अग्निरपि) कृष्णवर्णः (सन्) ज्वाला रूपया जिह्वया प्रकटोऽभवत् ॥१०॥

भाषार्थः ।

प्रकाश के लिये सचमुच छाया होने लगी, सूर्य सोने की न्याईं (होगया)(अग्नि भी) काला (होकर) अपनी (लाट रूपी) जिह्वा से प्रकट होने लगा ॥१०

कई दिनों के मन्द प्रकाश के पीछे आज ऐसा प्रकाश होगया है कि उस को छाया भी पड़ने लगी है, सूर्य भी जो अबतक लाल रंग के दीखते थे आज सुवर्ण की न्याईं पीले रंग के होगए हैं। अग्नि जो थोड़े प्रकाश में खूब चमकती थी अब सूर्य के प्रकाश की अपेक्षा काली पड़ गई और केवल लाट से प्रकाशित होती है। यह दृश्य उत्तर मेरु के समीपस्थ देशों का है। जहां प्रस्कण्व ऋषि ने इस सूक्त को देखा प्रतीत होता है।

अश्विनौदेवते, गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

अभूदुपारमेतवे पन्थाऋतस्यसा

१ या । अदर्शि विस्रुतिर्दिवः ।११।

अभूत्	अभूत्	हुआ
ऊम्०	(पूरण)	—
पारम्	पारम	पार
एतवे	गन्तुम् (तुमर्थे तवेन्)	जाने के लिए
पन्थाः	मार्गः	मार्ग
ऋतस्य	यज्ञस्य	यज्ञ का
साधुऽया	साधु. (सुपांसुलुगि तियाडादेशः)	अच्छा
अदर्शि	वि + अदर्शि	स्पष्ट दिखाई दी
वि	वि +	—
स्रुतिः	वीथिका	पगडंडी
दिवः	द्युलोकस्य (आ०को०)	द्युलोक की

संस्कृतार्थ ।

पा गन्तुं यज्ञस्य मार्गो साधुरभूत् (तेननिस्तुता) द्युलोकस्य वीथिका सुस्पष्ट दृष्टाऽभवत् ॥११॥

भावार्थः।

पार जाने के लिए यज्ञका अच्छारस्ता बनगया, (और) उसमें से निकली हुई द्युलोक की पगडंडी दीखने लगी॥११

यहां पर 'यज्ञ या सृष्टि नियम को एक विशाल राजमार्ग से उपमा दी है। जिस में से स्वर्गादि लोकों की पगडण्डियां निकलती हैं जो सूर्य के उदय होने से अब स्पष्ट दीखने लगीं॥

अश्विनौदेवते, गायत्रीछन्दः ८।८।८॥

तत्तदिदश्विनोरवो जरिताप्रति

भूषति मदेसोमस्यपिप्रतोः॥१२॥

तत्ऽतत्	तत्तत्	उस उस को
इत्	अपि	भी
अश्विनोः	अश्विनोः	अश्विदेवताओं के
अवः	रक्षणम्	रक्षा को
जरिता	स्तोता	स्तुति करने वाला
१ प्रति	प्रति+	,,

१ भूषति	प्रति+भूषति पुनः पुनरलङ्करोति	बार बार अलङ्कृतकरताहै
मदे	मदे	मद में
सोमस्य	सोमस्य	सोम के
पिप्रतोः	पूरयतोः (पृ पूरणे)	पूर्ण करने वालों के

संस्कृतार्थः ।

स्तोता सोमस्य मदे पूरयतोरश्विनोस्तत्तद्रक्षणं पुनःपुनरलङ्करोति ॥१२॥

भावार्थः ।

स्तुति करने वाला सोम के मद में पूर्ण करने वाले अश्विदेवताओं की उस उस रक्षा को बारबार अलङ्कृत करता है ॥ १२ ॥

जैसे किसी मित्र को प्रदान की हुई बहु मूल्य वस्तु को मनुष्य बारबार दूसरों के सामने सजाकर रखता है, इसी प्रकार स्तोता सोम के आनन्द में अश्विदेवताओं की प्रदान की हुई प्रत्येक रक्षा को बार बार मित्रों के सामने वर्णन करता है ॥

अश्विनौ देवते, गायत्रीछन्दः ।८।८।८ ॥

वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा । मनुष्वच्छम्भू आगतम् ।१३।

वावसाना	निवासशीलौ (विभक्तेराकारः)	निवास करने वाले
विवस्वति	दीप्तिमति (आकाशे)	दीप्तमान् (आकाश) में
सोमस्य	सोमस्य	सोमके
पीत्या	पानाऽर्थम्	पीने के लिए
गिरा	स्तुत्या	स्तुति से
मनुष्वत्	मनाविव (सप्तम्यर्थे वतिः)	जैसे मनु के पास
शम्ऽभू०	हे सुखस्यभावयितारौ (अन्तर्भावितण्यर्थाड्डुः)	हे सुखकेदेनेवालो
आ	आ +	–
गतम्	आ + गतम् आगच्छतम्	आओ

संस्कृतार्थः

हे दीप्तिमति (आकाशे) निवास शीलौ सुखस्यभावयितारौ (अश्विनौ!) (युवाम्) सोमंपातुं स्तुत्या मनाविव (अत्र) आगच्छतम् ॥ १३ ॥

भाषार्थः।

हे दीप्तिमान आकाश में रहने वाले, सुख के

देने वाले (अश्विदेवताओ) (आप दोनों) सोम पीने के लिए स्तुति करने से (यहां) आओ जैसे (पूर्व काल में), मनु के पास (आते थे) ॥१३॥

अश्विनौ देवते गायत्रीछन्दः ८।८।८।

युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपा चरत् । ऋता वनथो अक्तुभिः ।१४।

युवोः	युवयोः	तुम दोनों के
उषाः	उषाः	उषा
अनु	अनु	पीछे
श्रियम्	शोभाम्	शोभा को
१ परिऽज्मनोः	परितोगन्त्रोः (अ॰ह्न मेंनिनिपात्यते।)	चारों ओर चलने वालों के
१ उपऽआचरत्	समीपअगच्छत	समीप आई है

ऋता	यज्ञान् (शेर्लोपः)	यज्ञों को
वनथः	कामयेथे	आप दोनों कामना करते हैं
२ अक्तुऽभिः	रात्रिषु (सप्तम्यर्थे तृतीया)	रात्रियों में

संस्कृतार्थः।

(हे अश्विनौ) परितो गन्त्रोर्युवयोः शोभामनु (सृत्य)उषा अगच्छत् युवांरात्रिषु यज्ञान्कामयथे॥४॥

भावार्थः।

(हे अश्विदेवताओ) चारों ओर चलने वाले आप की शोभा के पीछे पीछे उषा आई है आप रात्रियों में यज्ञों की कामना करते हो ॥ १४ ॥

(१) उत्तर मेरु समीपस्थ देशों में लम्बी रात्रि के अन्त में पहले प्रकाशसे मिले हुए तम रूपी अश्विदेवता कई दिन तक आकाश में चारों ओर घूमते प्रतीत होते हैं फिर पीछे उषा की लाली प्रकट होकर कई दिन तक घूमती दिखाई देती है ॥

(२) रात्रि के देवता होने से अश्विदेव रात्रि में यज्ञ की कामना करते हैं ॥

अश्विनौ देवते गायत्रीछन्दः ८।८।८॥

उभा पिबतमश्विनो भा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः॥१५॥

उभा	उभौ	आप दोनों
पिबतम्	पिबतम्	पीओ
अश्विना	हे अश्विनौ	हे अश्विदेवताओ
उभा	उभौ	आप दोनों
नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिए
शर्म	शरणम्	शरण को
यच्छतम्	दत्तम् (दाण् दाने, यच्छादेशः)	दो
अविद्रियाभिः	विद्रः छिद्रः, तद्रहिताभिः	छिद्र रहितों से
ऊतिऽभिः	रक्षाभिः	रक्षाओं से

संस्कृतार्थः।

हे अश्विनौ ! उभौ (युवां सोमम्) पिबतम्,

उभौ (युवाम्) छिद्र रहिताभीरक्षाभिरस्मभ्यं शरणं दत्तम्॥ १५ ॥

भावार्थः ।

हे अश्विदेवताओ आप दोनों (सोम को) पीवें आप दोनों छिद्ररहित रक्षाओं से हमें शरण दें॥१५॥

इति षट् चत्वारिंशं सूक्तम् ।

ऋ० मं० १ सू० ४७ ।

अश्विनौ देवते, कण्वपुत्रः प्रस्कण्व ऋषिर्बृहती छन्दः ।८।८।१२।८।

अयंवांमधुमत्तमः सुतःसोमऋता
वृधा । तमश्विनापिबतंतिरोअह्न्य
धत्तंरत्नानिदाशुषे ।१।

अयम्	अयम्	यह
वाम्	युवाभ्याम्	तुम दोनोंके लिये

मधुमत्ऽतमः	अतिशयेनमाधुर्य्यवान्	बहुत मिठास वाला
सुतः	निष्पीडितः	निचोड़ा हुआ
सोमः	सोमः	सोम
ऋतऽवृधा	हे ऋतस्यवर्धयितारौ ! (अन्तर्भावितण्यर्थः	हे ऋत के बढ़ाने वालो
तम्	तम्	उसको
अश्विना	हे अश्विनौ !	हे अश्वि देवताओ
पिबतम्	पिबतम	पीओ
तिरःऽअह्नयम्	ह्यस्तनम्	कल वाले को
धत्तम्	धारतयम्	धारण करो
रत्नानि	रत्नानि	रत्नों को
दाशुषे	दत्तवते	देने वालेके तांई

संस्कृतार्थः।

हे ऋतस्य वर्धयितारावश्विनो ! अतिमाधुर्य्यवा-
नय सोमो युष्मदर्थं निष्पीडितः,ह्यस्तनं (सुतम्) तम्
(सोमम्) पिबतम् (हविः) दत्तवते रत्नानि (च) धार
यतम् ॥ १ ॥

भावार्थः।

हे ऋत के बढ़ाने वाले अश्विदेवताओ बहुत
मिठास वाला यह सोम आप के लिए निचोड़ा गया
है उस कलके (निचोडे हुए सोम)को आप पीवें और
(हवि) देने वाले के लिए रत्नों को धारण करें ॥१॥

यह सूक्त प्रातरनुवाक में आग्नेय क्रतु के बार्हत छन्द में पढ़ा
जाता है (आ० श्रौ० सू० ४।१५।२)

अश्विनी देवते, सतोबृहतीछन्दः ।१२।८।१२।८

त्रिवन्धुरेणत्रिवृतासुपेशसा रथे-
नायातमश्विना। कण्वासोवांब्रह्म-
कृण्वन्त्यध्वरे तेषांसुशृणुतंहवम् ।२।

१ त्रिऽवन्धुरेण	वन्धुराः नीडबन्धनाऽऽधारभूताः काष्ठविशेषाः, त्रयोबन्धुरायस्य तेन,	पीढी वांधने के तीन डंडों से युक्त से
१ त्रिऽवृता	त्रिरावेष्टितेन	तीन लपेटे वालेसे
सुऽपेशसा	सुरूपेण(निघ०३।७)	सुन्दर से
रथेन	रथेन	रथ से
आ	आ+	-
यातम्	आ+यातम्	आओ
अश्विना	हे अश्विनौ !	हे अश्विदेवताओ
कण्वासः	कण्वाः	कण्व वंशी
वाम्	युवाभ्याम्	तुम दोनोंके लिए
ब्रह्म	मन्त्ररूपस्तुतिम्	मन्त्ररूप स्तुति को

क्रुणवन्ति	कुर्वन्ति (क्रु विकरणः)	करते हैं
अध्वरे	यज्ञे	यज्ञ में,
तेषाम्	तेषाम्	उनकी
सु	सुष्ठु	भली प्रकार
शृणुतम्	शृणुतम्	सुनो
हवम्	आह्वानम्	पुकार को

संस्कृतार्थः ।

हे अश्विनौ! त्रिवन्धुरेण त्रिरावेष्टितेन सुरूपेण रथेनाऽऽगच्छतम, कण्वा युवाभ्यां यज्ञे मन्त्ररूप स्तुतिं कुर्वन्ति, तेषामाह्वानं सुष्ठु शृणुतम् । २ ।

भावार्थः ।

हे अश्विदेवताओ पीढ़ी बांधने के तीन डंडों से युक्त, तीन लपेटे वाले सुन्दर रथ से आओ, कण्व वंशी आप के लिए यज्ञ में मन्त्र रूप स्तुति को करते हैं उनका पुकार को भली रीति से सुनो ॥२॥

(१) त्रिवन्धुर और त्रिवृत की व्याख्या के लिए देखो पृ० ८५८।

अश्विनौदेवते, बृहती छन्दः ।८।८।१२।८।

अश्विनामधुमत्तमं पातंसोममृता

वृधा । अथाद्यदस्त्रावसुबिभ्रतारथे

दाश्वांसमुपगच्छतम् ।३।

अश्विना	हे अश्विनौ !	हे अश्वि देवताओ
मधुमत्ऽ तमम्	अति माधुर्य्य वन्तम्	बहुत मिठास वाले को
पातम्	पिबतम्	पीओ
सोमम्	सोमम्	सोम को
ऋतऽवृधा	हे ऋतस्यवर्ध यितारौ (अन्तर्भावितण्यर्थ)	हे ऋतके बढाने वालो
अथ	अनन्तरम्	पीछे

अद्य	अद्य	आज
दस्रा	हे उग्रौ	हे भयानक (देवताओ)
वसु	धनम्	धन को
बिभ्रता	धारयन्तौ (विभक्ते राकारः)	धारण करते हुए
रथे	रथे	रथ में
दाश्वांसम्	(हविः) दत्तवन्तम्	(हवि) देने वाले को
उप	प्रति	की ओर
गच्छतम्	प्राप्नुतम्	प्राप्त हों

संस्कृतार्थः

हे ऋतस्य वर्धयितारावुग्रावश्विनौ ! (युवाम्)अतिमाधुर्य्यवन्तं सोमं पिबतम्,अनन्तरमद्य रथे धनं धारयन्तौ(हविः)दत्तवन्तम्(यजमानम्)प्रति प्राप्नुतम् ।२।

भाषार्थः ।

हे ऋत के बढ़ाने वाले भयानक अश्विदेवताओ, आप दोनों बहुत मिठास वाले सोम को पीवें फिर आज रथमें धनको धारण करते हुए(हवि) देने वाले (यजमान) की ओर प्राप्त हों ॥ २ ॥

अश्विनौदेवते, सतोबृहतीछन्दः ।१२।८।१२।८

चिषधस्थेबर्हिषिविश्ववेदसा म-
ध्वायज्ञंमिमिक्षतम् । कण्वासोवांसु-
तसोमाअभिद्यवो युवांहवन्तेअ-
श्विना ।४।

त्रिऽसधस्थे	त्रिषु (स्थानेषु,) सहावस्थिते (मध्यमपदलोपसमासः)	तीन स्थानों में इकट्ठी रक्खी हुई पर
बर्हिषि	दर्भे	कुशा पर
विश्वऽवे-दसा	हेसर्व्वज्ञौ!	हेसब कुछ जानने वाला
मध्वा	मधुरेण (रसेन)	मीठे (रस) से
यज्ञम्	यज्ञम्	यज्ञ को
मिमिक्षतम्	सेक्तुमिच्छतम्	सींचने की इच्छाकरो

कण्वासः	कण्वाः	कण्ववंशी
वाम्	युवाभ्याम्	तुम दोनों के लिए
सुतऽसोमाः	सुतःसोमोयैस्ते	सोम निचोड़े हुए
अभिद्यवः	दिवोद्देशाः	द्युलोक के उद्देश वाले
युवाम्	युवाम्	तुम दोनों को
हवन्ते	आह्वयन्ते	बुलाते हैं
अश्विना	हे अश्विनौ	हे अश्विदेवताओ

संस्कृतार्थः ।

हे सर्वज्ञा वश्विनौ ! त्रिषु(स्थानेषु) सहाऽवस्थिते दर्भे मधुरेण (रसेन) यज्ञंसेक्तुमिच्छन्तम्, युवयोः (निमित्तम्) सुतसोमा दिवोद्देशाः कण्वा युवामाह्वयन्त ॥ ४ ॥

भावार्थः ।

हे सब कुछ जानने वाले अश्वि देवताओ, तीन स्थानोंमें इकट्ठी रखी हुई कुशा पर मीठे(रससे)यज्ञको

सींचनेकी इच्छा करो आपके(लिए)सोम निचोडे हुए द्युलोकके उद्देश वाले कण्ववंशी आपको बुलाते हैं ॥४॥

(१) वेदि पर पहले पश्चिम की ओर कुशा की एक तह बिछा कर कुशाओं के अग्र भाग को उकास कर पूर्व की ओर दूसरी तह उनके नीचे बिछाई जाती है, फिर इन के अग्र भाग को उकास कर तीसरी तह उस से पूर्व की ओर बिछाई जाती है, ऐसी कुशा पर अश्विदेव हमारे यज्ञ में मिठास को बरसावें ॥

(२) कण्ववंशी केवल इस लोक के सुख के लिए ही नहीं किन्तु परलोक के उद्देश से भी देवताओं को बुलाते थे ऐसे ही हमें भी करना चाहिए ॥

अश्विनौ देवते, बृहतीछन्दः ।८।८।१२।८।

याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं
युवमश्विना । ताभिःष्व१स्माँ अवतं-
शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ।५।

याभिः	याभिः	जिनसे
कण्वम्	कण्वम्	कण्व को
अभिष्टि ऽभिः	परित्राणैः (आ०को०)	सहायताओं से

प्र	प्र+	–
आवतम्	प्र+आवतम् प्रकर्षेणरक्षितन्तो	खूब रक्षा की थी
युवम्	युवाम्	आप दोनों ने
अश्विना	हे अश्विनौ	हेअश्वि देवताओ
ताभिः	ताभिः	उन से
सु	सुष्ठु	भली प्रकार
अस्मान्	अस्मान्	हम को
अवतम्	रक्षतम्	रक्षा करो
शुभः	शुभः +	–
पती०	हे,शुभः+पती ! हे सुकर्म्मणः पाल्कौ	हे सुकर्म्म के पालने वालो
पातम्	पिबतम्	पीओ
सोमम्	सोमम्	सोम को

ऋतऽवृधा	हे ऋतस्य वर्ध-यितारौ (अन्तर्भावितण्यर्थः)	हे ऋतके बढ़ाने वालो

संस्कृतार्थः ।

हे ऋतस्य वर्धयितारौ सुकर्मणः पालकावश्विनौ युवां याभिः परित्राणैः कण्वं प्रकर्षेण रक्षितवन्तौ, ताभिरस्मान् सुष्ठुरक्षतम्, (अस्मद्दत्तम्) सोमम् (च) पिबतम् ॥ ५ ॥

भावार्थः ।

हे ऋत के बढ़ाने वाले सुकर्म के पालने वाले अश्विदेवताओ जिन सहायताओं से आपने कण्व की खूब रक्षा की थी उनसे हमारी भली प्रकार रक्षा करो (और हम से दिये हुए) सोम को पीओ ॥५॥

अश्विनौदेवते, सतोबृहतीछन्दः । १२।८।१२।८

सुदासे दस्रावसुबिभ्रतारथे पृक्षो वहतमश्विना । रयिंसमुद्रादुतवा-दिवस्पर्य स्मेधत्तंपुरुस्पृहम् ॥६॥

सुऽदासे	सुदास नाम्ने राज्ञे (व्यत्ययश्छान्दसः)	राजा सुदासके लिये
दस्रा	हे, उग्रौ !	हे भयानक (देवताओ)
वसु	धनम्	धन को
बिभ्रता	धारयन्तौ	धारण करते हुए
रथे	रथे	रथ में
पृक्षः	अन्नम् (निघं०२।७)	अन्न को
वहतम्	अवहतम् प्रापितवन्तौ (अडभावश्छान्दसः)	पहुंचाया
अश्विना	हे अश्विनौ !	हे अश्विदेवताओ
रयिम्	धनम्	धन को
समुद्रात्	अन्तरिक्षात् (निघं०१।३।)	अन्तरिक्ष से
उत	उत+	–
वा	उत + वा	अथवा

दिवः	दिवः+परि,द्युलोकस्य सकाशात् (आ०को०)	द्युलोक से
परि	+परि	—
अस्मे	अस्मासु	हम में
धत्तम्	स्थापयतम्	स्थापन करो
पुरुऽस्पृहम्	बहुभिःस्पृहणीयम्	बहुतों से इष्ट को

संस्कृतार्थः।

हे उग्रावश्विनौ!(युवाम्)रथे धनं धारयन्तौ(यथा) सुदासे (राज्ञे) अन्नं प्रापितवन्तौ (तथैव)अन्तरिक्षाद् द्युलोकाद्वा (आहृत्य) बहुभिः स्पृहणीयं धनमस्मासु स्थापयतम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः।

हे भयानक अश्विदेवताओ रथमें धन को धारण कर आपने (राजा) सुदास के लिए अन्न पहुंचाया (वैसेही)अन्तरिक्ष अथवा द्युलोक से(लाकर)बहुतों से इष्ट धन को हम में स्थापन करो ॥ ६ ॥

सुदास राजा,दिवोदास के पुत्र आर्य्य जाति के एक प्राचीन राजा थे, जिन्हों नें इन्द्र की सहायता से अपने अनार्य्य शत्रुओं को जीता था। यह बहुत दानी और प्रतापी राजा थे। इन की विजय और दान का वृत्तान्त ऋं० ७। १८ में वर्णन किया है॥

अश्विनौ देवते, बृहती छन्दः ।८।८।१२।८॥

यन्नासत्यापरावति यद्वास्थो-
अधितुर्वशे । अतोरथेनसुवृतानआ
गतं साकंसूर्य्यस्यरश्मिभिः ।७।

यत्	यदि	यदि
नासत्या	हे, अनृतरहितौ	हे झूठ से रहित
पराऽवति	दूर देशे (निघ०।३।२६)	दूरमें
यत्	यत्+	–
वा	यत्+वा	अथवा
स्थः	स्थः	हो
अधि	अधि+	–
तुर्वशे	अधि+तुर्वशे समीपे(निघ०२।१६)	समीप में
अतः	ततः (भा०को०)	वहां से

रथेन	रथेन	रथ से
सुऽवृता	सुवर्त्तमानेन	हलके घूमने वाले से
नः	अस्मान् (प्रति)	हमारे (समीप)
आ	आ+	–
गतम्	आ + गतम् आगच्छतम् (शपोलुक्)	आओ
साकम्	सह	साथ
सूर्यस्य	सूर्य्यस्य	सूर्य्य के
रश्मिऽभिः	किरणैः	किरणों से

संस्कृतार्थः।

हे अनृत रहितौ! (अश्विनौ! युवाम्) यदि दूरे, यद्वा समीपे स्थः, ततः सूर्य्यस्य किरणैः सह सुवर्त्तमानेन रथेनाऽस्मान्प्रत्यागच्छतम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः।

हे झूठ से रहित (अश्विदेवताओ) आप यदि

दूर हों अथवा समीप हों सूर्य्य की किरणों के सहित हलके घूमने वाले रथ से हमारे समीप आवें ॥७॥

सूर्य्य की किरणें "सब देवता" हैं (देखो श०ब्रा० ३।९।२।१२) और प्रत्यक्ष हमारे पास द्युलोक से आती हैं, अश्विदेवता भी उन किरणों के साथ हमारे पास आवें ॥

अश्विनौदेवते, सतोबृहतीछन्दः ।१२।८।१२।८

अर्वाञ्चावांसप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तुसवनेदुप। इषंपृञ्चन्तासुकृतेसुदानव आवर्हिंसीदतंनरा ।८।

अर्वाञ्चा	अर्वाञ्चा+	
वाम्	युवाम्	तुम दोनों को
सप्तयः	अश्वाः (निघं० १।१४)	घोड़े
अध्वरऽश्रियः	यज्ञं प्रति गच्छन्तः (श्रिञ् गतौ भा०को०)	यज्ञ की ओर जाने वाले

वहन्तु	अर्वाञ्चा+वहन्तु अभिमुखमान-यन्तु	सामने ले आ
सवना	सोमोत्सवान् (शेर्लोपः)	सोम के उत्सवों को
इत्	पूरणः	—
उप	उप(लक्ष्य)	लक्ष रख कर
इषम्	बलम्	बल को
पृञ्चन्ता	सयोजयन्तौ (पृषोऽम्पर्कं, विभक्ते राकारः)	संयुक्त करते हुए
सुऽकृते	सुकर्मकारिणे	सुकर्म करनेवाले के लिए
सुऽदानवे	सुष्ठुदानयुक्ताय	बड़े दानी के लिए
आ	आ +	—
बर्हिः	दर्भे (सप्तम्यर्थेद्वितीया)	कुशा पर
सीदतम्	आ+सीदतम्, उपविशतम्	बैठो

नरा	हे नरो !	हे नरो

संस्कृतार्थः ।

हे नरौ ! यज्ञं प्रतिगच्छन्तोऽश्वाः सोमोत्सवानुप (लक्ष्य) युवामभिमुखमानयन्तु सुकर्म्मकारिणे सुष्ठु दानयुक्ताय(यजमानाय)बलं सयोजयन्तौ(युवाम्)दर्भेषूपविशतम् ॥ ८ ॥

भावार्थः।

हे नरो यज्ञ के प्रति जाने वाले घोडे, सोम के उत्सवों को लक्ष करके आप को (हमारे) सामने ले आवें,भले कर्म्म और बहुत दानसे युक्त (यजमान के) लिए बल को संयुक्तकरते हुए आप कुशाओं पर बैठें ॥ ८ ॥

अश्विनौ देवते, बृहतीछन्दः ।८।८।१२।८॥

तेननासत्यागतं रथेनसूर्य्यत्वचा।
येनशश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वःसो-
मस्यपीतये ।९।

तेन	तेन	उससे
नासत्या	हे, अनृतरहितौ	हे झूठ से रहित
आ	आ+	–
गतम्	आ + गतम आगच्छतम्	आओ
रथेन	रथेन	रथ से
सूर्यऽत्वचा	सूर्य्यएवत्वग्यस्य तेन	सूर्य्य रूपी चर्म वाले से
येन	येन	जिससे
शश्वत्	निरन्तरम्	निरन्तर
ऊहथुः	प्रापितवन्त	प्राप्त कराया है
दाशुषे	(हवि.) दत्तवते	(हवि) देने वाले के लिए
वसु	धनम्	धनको
मध्वः	मधुरस्य	मीठे के

सोमस्य पीतये	सोमस्य पानाऽर्थम्	सोम के पीने के लिये

सस्कृतार्थः ।

हे अनृत रहितौ ! (अश्विनौ!) सूर्य्यरूपत्वग्युक्तेन येन रथेन (हविः) दत्तवते (यजमानाय) निरन्तरं धनं प्रापितवन्तौ, तेन मधुरस्य सोमस्य पानार्थम् (इह) आगच्छतम् ॥ ९ ॥

भावार्थः ।

हे झूठ से रहित (अश्विदेवताओ) सूर्य्य रूपी चर्म से युक्त जिस रथ से आपने (हवि) देने वाले (यजमान के लिए) निरन्तर धन को प्राप्त कराया है उससे मीठे सोम के पीने के लिए (यहां) आओ॥९।

(१) अश्विदेवताओं का ज्योति निर्मित रथ सूर्य्य रूपी चर्म से वेष्टित है। वास्तव में इस पृथिवी पर सारी महिमा सूर्य्य की ही है, वही देवताओं का उत्पादक, वही उन का रथ, वही घोड़ा, वही अस्त्र, और उसी की किरणें सब देवता हैं॥

अश्विनौदेवते, सतोबृहतीछन्दः ।१२।८।१२।८।

उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैं

प्रचनिह्वयामहे। शश्वत्कण्वानां

दसिप्रियेह्विकं सोमंपपथरश्विना॥१०॥

उक्थेभिः	शस्त्रैः	होता से की हुई स्तुतियों से
अर्वाक्	सम्मुखं यथास्या तथा	सामने से
अवसे	रक्षणाऽर्थम्	रक्षा करने लिये
पुरुऽवसू०	हे प्रभूत धनौ	हे बहुत धनवालो
अर्कैः	स्तोत्रैः	उद्गाता से की हुई स्तुतियों से
च	च	और
नि	नि+	-
ह्वयामहे	नि + ह्वयामहे, नितरामाह्वयामः	हमवार२ पुकारते हैं
शश्वत्	नित्यम्	सदा
कण्वानाम्	कण्वानाम्	कण्व वंशियों की
सदसि	सभायाम्	सभा में

प्रिये	प्रिये	प्रिय में
हि	प्रसिद्धौ	यह प्रसिद्ध है
कम्	(पूरणः)	–
सोमम्	सोमम्	सोम को
पपथुः	पीतवन्तौ	पीआ है
अश्विना	हे अश्विनौ	हे अश्विदेवताओ

संस्कृतार्थः।

हे प्रभूतधनावश्विनौ ! (वयम्) शस्त्रैः स्तोत्रैश्च (युवाम्) रक्षणाऽर्थं पुनः पुनः सम्मुखमाह्वयामः (युवाम्) कण्वानां प्रिये सदसि सर्वदा सोमं पीतवन्ता विति प्रसिद्धम् ॥ १० ॥

भाषार्थः।

हे बहुत धन वाले अश्विदेवताओ, हम शास्त्र और स्तोत्रों से (आप को) रक्षा के लिए बार बार सामने बुलाते हैं, कण्ववंशियों की प्यारी सभा में आप ने सदा सोम पान किया है, ऐसा प्रसिद्ध है १०

इसलिए आशा है कि अब भी आप हम कण्ववंशियों का परित्याग नहीं करेंगे ॥

इति सप्त चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

ऋ० मं०१ सू०४८

उषोदेवता प्रस्कण्वऋषिर्बृहतीछन्दः।८।८।१२।८

सह॑वा॒मेन॑नउषो॒ व्यु॑च्छादुहि-

तर्दिवः। स॒हद्यु॒म्नेन॑बृह॒ताविभावरि

रा॒यादे॑वि॒दास्व॑ती। १।

स॒ह	सह	साथ
वा॒मेन॑	प्रशस्येन (निघ०३।८)	प्रशंसाके योग्य से
नः॒	अस्मान्	हम को
उ॒षः॒	हे उषः	हे उषा
१ वि	वि +	–
१ उ॒च्छ॒	वि + उच्छ, आविर्भव	प्रकट हो
दु॒हि॒तः॒	हे पुत्रि !	हे पुत्री

दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक की
सह	सह	साथ
द्युम्नेन	यशसा (निघं०४।२)	यश से
बृहता	महता	बड़े से
विभाऽवरि	हे विशेष दीप्ति युक्ते	हे विशेष दीप्ति वाली
राया	धनेन	धन से
देवि	हे देवि	हे देवी
२ दास्वती	दानवती	दानवती

संस्कृतार्थः।

हे द्युलोकस्य पुत्रि ! विशेष दीप्तियुक्ते ! उषः ! अस्मदर्थं प्रशस्येन (भोगेन)सह महता यशसा धनेन (च) सह दानवती (त्वम्) आविर्भव । १ ।

भावार्थः।

हे द्युलोक की पुत्री, विशेष दीप्ति वाली उषा

हमारे लिये प्रशंसा योग्य(भोग)के साथ बड़ेयश(और) धन के साथ दानवती (आप) प्रकट हों ॥ १ ॥

यह सूक्त प्रातरनुवाक में उषस्यक्रतु के बार्हत छन्द में पढा जाता है (आ० श्रौ० सू० ४ । १४ । २)

(१) 'व्युच्छ' का अर्थ उषा की लालीका खिलना या फूटना है (२) प्रकाश का दान देने वाली उषा हमारे लिए प्रति दिन महान् यश धन और ऐसे भोग जो आर्य्य जनों में प्रशंसा के योग्य हो लाती हुई खिलें ॥

उषा देवता, सतोबृहतीछन्दः॥ १२।८।१२।८

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववसुविदो
भूरिच्यवन्तवस्तवे। उदीरयप्रति-
मासूनृताउष प्रचोदराधोमघोनाम्॥

अश्वऽवतीः	अश्वैरुपेताः	अश्वों से युक्त
गोऽमतीः	गोभिर्युक्ताः	गौओं से युक्त
विश्वऽवसु विदः	कृत्स्नस्यसुष्ठुवेदः	सब को खूब जानने वालीं

भूरि	वहुवारम्	वहुत वार
च्यवन्त	प्राप्तवत्यः (च्युङ गतौ, षड्भावः)	प्राप्त हुईं
वस्तवे	निवासाय (तवेन प्रत्ययः)	निवास के लिये
२ उत्	उत्+	–
२ ईरय	उत्-ईरय, ब्रूहि	कहो
प्रति	प्रति	प्रति
मा	माम्।	मुझ को
सूनृताः	प्रियसत्यवाचः	प्रिय और सत्य वचनों को
२ उषः	हे उषः	हे उषा
चोद	प्रेरय	प्रेरण करो –
राधः	धनम् (निघं०२।१०)	धन को
१ मघोनाम्	धनवतः (द्वितीयार्थे षष्ठी)	धनवानों को

संस्कृतार्थः।

अश्वै र्गोभिः (च) युक्ता सर्वस्य सुष्ठु वेत्र्यः (उषसोऽस्माभिःसह) निवासार्थं वहु वारं प्राप्ता अभवन् हे उषः! साम्प्रति प्रियसत्य वाचः कथय धनवतः (प्रति) धनम् (च) प्रेरय ॥ २ ॥

भावार्थः।

घोड़े (और) गौओं से युक्त, और सब को खूब जानने वाली (उषाएं हमारे साथ) निवास के लिये बहुत बार प्राप्त हुई, हे उषा मेरे ताईं प्रिय और सत्य वचन कहो (और) धनियों (की ओर) धन को प्रेरण करो ॥ २ ॥

(१) हम थोड़े से मनुष्यों को अधूरा सा जानते हैं, परन्तु उषा सब को खूब जानती है, ऐसी गौ और घोड़ों वाली गत उषाओं ने हमारे साथ बहुत बार निवास किया है। आज की उषा उदय होकर

(२) मुझ स्तुति करनेवाले के लिए सत्य और प्रिय वचनों को कहे। मैं मनुष्यों की अप्रिय और असत्य वाणियों को न सुनूं॥

(३) हमारी जाति के धनिकों की ओर उषा धन को प्रेरण करे, जिस से उन के धन की सदा वृद्धि होती रहे॥

उषोदेवता, निचृद्बृहतीछन्दः।८।७।१२।८

उवासोषा उच्छाच्चनु देवी-

रारथानाम्। येअस्याआचरणेषुद-
ध्रिरे.समुद्रेनश्रवस्यवः। ३।

उवास	निवासमकरोत्	निवास करती थी
उषाः	उषाः	उषा
उच्छात्	आविर्भवेत् (लेट्याडागमः)	प्रकट हो
च	अपि	भी
नु	इदानीम् (भा०को०)	अब
देवी	देवी	देवी
१ जीरा	प्रेरयित्री (जयतेरक,ईकारान्त देशश्च)	प्रेरण करने वाली
१ रथानाम्	रथानाम्	रथों के
ये	ये	जिन्हों ने
अस्याः	अस्याः	इसके

आऽचरणेषु	आगमनेषु	आगमनों में
दधिरे	धृतवन्तः	लगाया हैं
समुद्रे	समुद्रे	समुद्र में
न	इव	की न्यांई
अवस्यवः	अवोधनं तदात्मन इच्छन्ति ते, धनाऽभिलाषिणः	धन की इच्छा करने वाले

संस्कृतार्थः।

उषाः (पुराऽस्मत्समीपे) निवासमकरोत् रथानां प्रेरयत्री (सा) देवीदानीमप्याविर्भवेत् ये (वयम्) अस्या आगमनेषु (मनः) धृतवन्तः, यथा धनाऽभिलाषिणः समुद्रे (मनो धारयन्ति) ॥३॥

भाषार्थः।

उषा (पूर्वकाल में हमारे पास) निवास करती थी रथों को प्रेरण करने वाली (वह) देवी आज भी प्रकट हो। जो (हम) उसके आगमन में (मन को) लगाए हुए हैं, जैसे धन की इच्छा करने वाले समुद्र में (मन को लगाते हैं)॥ ३ ॥

(१) उषा के फूटने पर यात्रा के निमित्त यात्री लोग रथ जोड़ते हैं इसलिए उषा रथों की प्रेरक है ॥

(२) जैसे धन की इच्छा करने वाले समुद्र में चित्त लगाते हैं कि कब हमारे जहाज़ जो परदेशों में माल लेकर गए हुए हैं धन से भरे हुए लौटेंगे ऐसे ही हम भी उषा के फटने की कई दिन से प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥

उषोदेवता, विराट् सतोबृहतीछन्दः।१।१।८।१२।७

उषोयेतेप्रयामेषुयुञ्जते मनोदानायसूरयः । अत्राहतत्कण्वएषां कण्वतमो नामगृणातिनृणाम् ।४।

उषः	हे उषः	हे उषा
ये	ये	जो
ते	तव	तेरे
प्र	प्र+	—
यामेषु	आगमनेषु	आने पर
युञ्जते	प्र+युञ्जते	लगाते हैं

मनः	मनः	मन को
दानाय	दानाय	दान के लिए
सूरयः	स्तोतार (निघ० ३।१६)	स्तुति करने वाले
अत्र	अस्मिन् (काले)	इस (समय) में
अह	प्रशंसया	प्रशंसा के साथ
तत्	तत्+	–
कण्वः	कण्व	कण्व
एषाम्	एषाम्	इनके
कण्वऽतमः	कण्वानांज्येष्ठः	कण्ववंशियों में सब से बडा
नाम	तत्+नाम	उस नाम को
गृणाति	उच्चारयति	उच्चारण करता है
नृणाम्	नराणाम्	नरों के

संस्कृतार्थः।

हे उषः,तवाऽऽगमनेषु ये स्तोतारो दानाय मनः प्रयुञ्जते तेषांनराणां तन्नामं कण्वानां ज्येष्ठः कण्वो ऽस्मिन् काले प्रशंसयोच्चारयति ॥ ४ ॥

भावार्थः।

हे उषा, आपके आने पर जो स्तोता लोग दान के लिए मन को लगाते हैं उन नर, (वीरों) के उस (लोक प्रसिद्ध) नाम को कण्वों में सब से बड़ा कण्व इस समय प्रशंसा के साथ उच्चारण करता है ॥४॥

ऋषि कहते हैं कि कण्ववंशियोंमें सब से ज्येष्ठ मैं उन स्तुति करने वाले महापुरुषों के नाम प्रशंसा के साथ उच्चारण करता हूं जो प्रभात के समय दान में चित्त को लगाते हैं ॥

उषोदेवता, बृहतीछन्दः ।८।८।१२।८

आघायोपिवसून्युं षायातिप्रभु-
ञ्जती । जरयन्तीवृजनंपद्दीयत
उत्पातयतिपक्षिणः ॥५॥

आ | आ +

घ	खलु	सचमुच
१ योषाऽइव	गृहणीव	घरवाली की न्याई
सूनरी	सु(मार्गेण) नेत्री	अच्छे(रस्ते)चलाने वाली
उषाः	उषाः	उषा
याति	आ+याति	आती है
१ प्रऽभुञ्जती	प्रकर्षेणपालयन्ती (भुजपालने)	उत्तमता से पालती हुई
१ जरयन्ती	जरां प्रापयन्ती	बुढापे को प्राप्त कराती हुई
१ वृजनम्	अङ्क्रमम् (पा०को०)	चलने वाले को
१ पत्ऽवत्	पादयुक्तम्	पैरों से युक्त को
२ ईंयते	प्रेरयति (अन्तर्भावितण्यर्थः)	प्रेरण करती है
१ उत्	उत्+	–

१ पातयति	उत्+पातयति	उड़ाती है
१ पक्षिणः	पक्षिणः	पक्षिओं को

संस्कृतार्थः।

सु(मार्गेण)नेत्र्युषा गृहणीव प्रकर्षेण पालयन्ती जङ्गमं जरां प्रापयन्त्याऽऽयाति (सा) पादयुक्तं(प्राणिजातंस्वकर्मणि) प्रेरयति पक्षिणः(च) उत्पातयति॥५॥

भाषार्थः।

अच्छे (रस्ते) चलाने वाली उषा घर वाली की न्याईं उत्तमता से पालती हुई, चलने वाले (जीवों) को बुढापा प्राप्त कराती हुई आती है वह पैरों वाले (प्राणिसमूह को अपने कर्म में) प्रेरण करती है (और) पक्षियों को उड़ाती है ॥ ५ ॥

(१) उषा सुघड़ स्त्री की न्याईं सब का पालन करती हुई आती है वह देवी हमारा भी पालन करेगी ॥

(२) प्रत्येक उषा के फटने पर जङ्गम जीव बुढापे की ओर सरकते जाते हैं, इस लिए हमें प्रत्येक पौ फटने पर परलोक साधन के लिए ध्यान आना चाहिए ॥

(३) उषा के फूटने पर पैरों वाले पशु और मनुष्य चलने और पक्षी उड़ने के लिए चेष्टा करते हैं ॥

उषोदेवता, सतोबृहतीछन्दः।१२।८।१२।८।

वियासृजतिसमनंव्य१र्थिनः पदंनवेत्योदति। वयोनकिष्टेपप्तिवांसआसते व्युष्टौवाजिनीवति।६।

वि	वि+	–
१ या	या	जो
१ सृजति	वि + सृजति, प्रेरयति	प्रेरण करती है
१ समनम्	सङ्ग्रामम् (निघ०२।१७)	युद्ध को
वि	वि + (सृजति) प्रेषयति	भेजती है
अर्थिनः	कार्य्यवतः	काम वालों को
पदम्	स्थानम्	स्थान को

न	न	नहीं
२ वेति	कामयते	कामना करती है
ओदती	प्रवहन्ती (उन्दीक्षरणे)	वेग से चलती हुई
वयः	पक्षिणः	पक्षी
नकिः	न	नहीं
ते	तव	तेरे
पप्तिऽवांसः	पतनशीलाः (पतङ्गती)	उड़ने वाले
आसते	आसते	बैठते हैं
विऽउष्टौ	आविर्भावे	प्रकट होने पर
वाजिनीऽवति	हे अन्नबहुले (क०।३।१०)	हे बहुत अन्नवाली

संस्कृतार्थः।

या(उषाः)सद्मानं प्रेरयति कार्य्यवतः(च स्वकर्मणि)

प्रेषयति (सा) प्रवहन्ती(सती विश्राम-)स्थानं नेच्छति हे अन्न बहुले! तवाऽऽविर्भावे पतनशीलाः,पक्षिणः (स्वनीडेषु) नाऽऽसते ॥ ६ ॥

भाषार्थः।

जो (उषा) सङ्ग्राम को प्रेरण करती है (और) काम वालों को (अपने काम पर) भेजती है (वह) वेग से चलती (हुई विश्राम) स्थान को नहीं चाहती हे बहुत अन्न वाली आपके प्रकट होने पर उड़ने वाले पक्षी (अपने घोसलों में) नहीं बैठते ॥६॥

(१) रात्रि के समय युद्ध भी बन्द होजाते हैं और पौ फटने पर फिर आरम्भ होते हैं ॥

(२) जल के प्रवाह की न्याईं उषा विश्राम को नहीं चाहती किन्तु बराबर चलती रहती है और बारी बारी सब देशों में प्राप्त होकर वहां के रहने वाले जीवों को जगा कर अपने अपने काम में प्रेरण करती है ॥

उषोदेवता, बृहतीछन्दः । ८।८।१२।८

एषायुक्तपरावतः सूर्य्यस्योदय-
नादधि । शतंरथेभिःसुभगोषाइयं
वियात्यभिमानुषान् ॥७॥

एषा	एषा	इस ने
अयुक्त	योजितवती	जोडा है
पराऽवतः	दूर (देशे) नि०३।२६)	दूर
सूर्यस्य	सूर्यस्य	सूर्य्य के
उत्ऽअयनात्	उदयनात्+आध उदेत्यत्रेत्युदयनं तस्माद्उदयस्थानात् (अधिकरणेल्युट्)	उदय स्थान से
अधि	अधि +	–
१ शतम्	शतैः (तृतीयार्थे प्रथमा)	सौ से
१ रथेभिः	रथैः	रथों से
सुऽभगा	सौभाग्यवता	सौभाग्य वाली
उषाः	उषाः	उषा

इयम्	इयम्	यह
वि	वि+	—
याति	वि+याति, प्रयाणं करोति	गमन करती है
अभि	प्रति	की ओर
मानुषान्	मानुषान्	मनुष्यों को

संस्कृतार्थः ।

एषा सूर्य्यस्योदयस्थानाद्दूरदेशे(रथान्) योजितवती, इयं सौभाग्यवत्युषा मनुष्यान् प्रति शतै रथैः प्रयाणं करोति ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

इस ने सूर्य्य के उदय स्थान से दूर देश में (रथों को)[1] जोड़ा है यह सौभाग्य वाली उषा सौ रथों से मनुष्यों की ओर गमन करती है ॥ ७ ॥

(१) सौभाग्यवती उषा सूर्य्य के उदय स्थान से दूर देश में रथों को जोड़ कर लाल और सुनहरी प्रकाश रूपी सैंकड़ों रथों से मनुष्यों के प्रति आती है ॥

जो मूर्ख वैसे समय में पड़े सोते रहते हैं उन का भाग्य कैसे उदय हो सकता है ॥

उषोदेवता, सतोबृहतीछन्दः ।१२।८।१२।८॥

विश्वमस्याननामचक्षसेजग

ज्ज्योतिष्कृणोतिसूनरी। अपद्वेषो

मघोनीदुहितादिव उषाउच्छदप-

स्रिधः ।८।

विश्वम्	सर्वम्	सम्पूर्ण
अस्याः	अस्याः	इसके
१ ननाम	ननाम	झुका है
१ चक्षसे	दर्शनाय	दर्शन के लिये
जगत्	जगत्	जगत्
ज्योतिः	प्रकाशम्	प्रकाश को
कृणोति	करोति(कृषिकरणे)	करती है

सूनरी	सु(मार्गेण)नेत्री	अच्छे (रस्ते) चलाने वाली
अप	अप+	—
२ द्वेषः	द्वेष्टॄन्	द्वेष रखने वालों को
मघोनी	धनवती (घममितिधन नाम निघ०२।१०।)	धन वाली
दुहिता	पुत्री	पुत्री
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक की
उषाः	उषाः	उषा
२ उच्छत्	अप+उच्छत् निराकुर्यात् (अन्तर्भावितण्यर्थः, (लिडर्थेलड्)	दूर करे
अप	अप+उच्छत् निवारयेत्	हटावे
स्त्रिधः	हिंसकान् (स्त्रिधहिंसायाम्)	पीड़ा देने वालों को

संस्कृतार्थः।

सर्वं जगदस्यादर्शनाय ननाम,सु (मार्गेण)

नेत्री (सा देवी)प्रकाशं करोति, द्युलोकस्य पुत्री धनवत्युषाः (अस्माकम्) द्वेष्टॄन्निराकुर्य्यात् हिंसकान्(च) निवारयेत् ॥८॥

भाषार्थः ।

सारा जगत् इसके दर्शनके लिए झुका है, सु(मार्ग) में ले चलने वाली(यह देवी) प्रकाश को करती है, द्युलोककी पुत्री धन वाली उषा (हमसे)द्वेष रखने वालों को दूर करे(और) हमें पीड़ा देने वालों को हटावे॥८॥

(१) ज्यूं ज्यूं पृथिवी (अपनी दैनिक गति में) पूर्व की ओर झुकती है त्यूं त्यूं पृथिवी के नाना देशों में क्रम से उषा का दर्शन होता है ॥

(२) हम सब नित्यप्रति पौ फटने पर उपासना किया करें तो शीघ्र हम से द्वेष रखने वालों और हमें पीड़ा देने वालों का नाश हो जावे ॥

उषोदेवता, बृहतीछन्दः ।८।८।१२।८॥

उष॒ आ भा॑हि भा॒नुना॑ च॒न्द्रेण॑ दुहितर्दिवः । आ॒वह॑न्ती॒ भूर्य॒स्मभ्यं॒ सौभ॑गं व्यु॒च्छन्ती॒ दिवि॑ष्टिषु ।९।

उषः	हे उषः	हे उषा
आ	समन्तात्	चारों ओर से
भाहि	प्रकाशस्व	चमको
भानुना	प्रकाशेन	प्रकाश से
चन्द्रेण	आल्हादकेन	आनन्द देने वाले से
दुहितः	हे पुत्रि !	हे पुत्री
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक की
आऽवहन्ती	आनयन्ती	लाती हुई
भूरि	प्रभूतम्	बहुत
अस्मभ्यम्	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
सौभगम्	सौभाग्यम् (उत्तरपदवृद्ध्यभावश्छान्दसः)	सौभाग्य को

विऽछुच्छन्ती	आविर्भवन्ती	प्रकट होती हुई
दिविष्टिषु	यज्ञेषु (क०१।४४।७)	यज्ञों में

संस्कृतार्थः ।

हे द्युलोकस्य पुत्रि! हे उषः! अस्मभ्यं प्रभूतं सौभाग्यमानयन्ती (अस्माकम्) यज्ञेषु (च) आविर्भवन्ती (त्वम्) आल्हादकेन प्रकाशेन समन्तात् प्रकाशस्व ॥ ९ ॥

भावार्थः ।

हे द्युलोक की पुत्री! हे उषा! हमारे लिए बहुत सौभाग्य को लाती हुई (और हमारे) यज्ञों में प्रकट होती हुई (आप) आनन्द देने वाले प्रकाश से सब ओर चमकें ॥ ९ ॥

उषोदेवता, सतोबृहतीछन्दः ।१२।८।१२।८।।

विश्वस्यहिप्राणनंजीवनंत्वे वि-

यदुच्छसिसूनरि। सानोरथेनबृहता

विभावरि श्रुधिचित्रामघेहवम् ।१०।

विश्वस्य	सर्वस्य	सम्पूर्ण के
हि	एव	ही
प्राणनम्	चेष्टनम्	चेष्टा करना
जीवनम्	जीवनम्	जीवन
त्वे॰	त्वयि	तुझ में
वि	वि +	–
यत्	यत्	जो
उच्छसि	वि+उच्छसि आविर्भवसि	प्रकट होती है
सूनरि	हे सु(मार्गेण) नेत्रि!	हे सु(मार्ग से) ले चलने वाली
सा	सा	वह
नः	अस्मान्	हम को
रथेन	रथेन	रथ से
बृहता	महता	बड़े से

विभाऽवरि	हेविशेषदीप्तियुक्ते	हे विशेष दीप्ति वाली
श्रुधि	शृणु	सुनो
चित्रऽमघे	हे विचित्रधनवति	हे अनेक प्रकार के धन वाली
हवम्	आह्वानम्	पुकार को

संस्कृतार्थः।

हे सु (मार्गेण) नेत्रि ! यत् (त्वम्) आविर्भवसि, (तस्मात्)त्वय्येव सर्वस्य चेष्टनं जीवनं(च वर्तते) हे विशेष दीप्ति युक्ते ! हे विचित्र धनवति ! सा (त्वम्) अस्मान् (प्रति) महता रथेन (आगत्यास्मदीयम्) आह्वानं शृणु ॥१०॥

भाषार्थः।

हे सु (मार्ग से) ले चलने वाली ! जो आप प्रकट होती हैं (इससे)आपमें ही सब की चेष्टा और जीवन है, हे विशेष दीप्ति वाली, हे अनेक प्रकार के धनवाली, वह (आप) हमारी ओर बडे रथ से (आकर हमारी) पुकार को सुनें ॥ १० ॥

20474

(१२०१) ऋ० मं०१सू०४८मं०११

उषोदेवता, बृहतीछन्दः । ८।८।१२।८

उषोवाजंहिवंस्व यश्चित्रोमानुषेजने । तेनावहसुकृतोअध्वरांउप येत्वागृणन्तिवह्नयः ॥११॥

उषः	हे उषः!	हे उषा
वाजम्	अन्नम्	अन्न को
हि	खलु	सचमुच
वंस्व	कामयस्व (मा०को)	कामना करो
यः	यः	जो
चित्रः	विविधरूपः	नाना प्रकार का
मानुषे	मानुषे+	–
जने	मानुषे+जने मनुष्य समूहे	मनुष्यों में

भापार्थः।

हे उपा मनुष्यों में जो नाना प्रकार का अन्न (है) उसकी कामना करो, उससे जो (हवि के) पहु॰ चाने वाले (ऋत्विज्) आपकी स्तुति करते हैं, उनको सुकर्म करने वाले के यज्ञों की ओर लाओ ॥११॥

१) उषा हमारे हविरूप अन्नों से प्रसन्न होकर अपने स्तुति करने वाले देव भक्त ऋत्विजों को हमारे यज्ञों की ओर प्रेरण करे जिससे हमारे यज्ञ अच्छी प्रकार सिद्ध हों।

उषोदेवता, सतोबृहतीछन्दः। १२।८।१२।८

विश्वान्देवाँ आवह सोमपीतये ऽन्तरिक्षादुषस्त्वम्। सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य १ मुषो वाजं सुवी- र्यम् ॥१२॥

विश्वान्	सर्वान्	सब को
देवान्	देवान्	देवताओं को
आ	आ+	—

वह	आ+वह	लाओ
सोमऽपीतये	सोमपानार्थम्	सोम पीनेके लिए
अन्तरिक्षात्	अन्तरिक्षात्	अन्तरिक्ष से
उषः	हे उषः!	हे उषा
त्वम्	त्वम्	तू
सा	सा	वह
अस्मासु	अस्मासु	हम में
धाः	निधेहि	स्थापन करो
गोऽमत्	गोभिर्युक्तम् (विमलेर्युक्त)	गोओं से युक्त को
अश्वऽवत्	अश्वैर्युक्तम्	घोड़ों से युक्त को
उक्थ्यम्	स्तुतियोग्यम्	स्तुतिकेयोग्य को

उषः	हे उषः!	हे उषा
वाजम्	अन्नम्	अन्न को
सुऽवीर्य्यम्	अतिवीर्य्योपेतम्	बहुत वीरता देने वाले को

संस्कृतार्थः।

हे उषः! अन्तरिक्षात्सर्व्वान् देवान् (अत्र) सोमपानार्थमानय, हे उषः! सा त्वं गोभिरश्वैः (च) युक्तं स्तुतियोग्यमतिवीर्य्योपेतम् (च) अन्नमस्मासु निधेहि ॥१२॥

भाषार्थः।

हे उषा अन्तरिक्ष से सब देवताओं को (यहां) सोम पीने के लिये लाओ हे उषा वह आप गौओं (और) घोड़ों से युक्त स्तुति के योग्य (और) बहुत वीरता देने वाले अन्न को हममें स्थापन करो ॥१२॥

उषादेवता, बृहतीछन्दः। ८।८।१२।८

यस्या॒ रुश॑न्तो अ॒र्चयः॑ प्रति॑ भ॒द्रा

अदृक्षत । सानोरयिंविश्ववारंसुपे-

शस मुषादेदातुसुग्म्यम् ॥१३॥

यस्याः	यस्याः	जिस के
रुशन्तः	देदीप्यमानाः (मा०वो०)	खूब चमकते हुए
अर्चयः	प्रकाशाः	प्रकाश
प्रति	प्रति +	–
१ भद्राः	मङ्गलरूपाः	मङ्गल रूप
१ अदृक्षत	प्रति+अदक्षत	देखे गए
सा	सा	वह
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताईं
रयिम्	धनम्	धन को

विश्वऽवारम्	विश्वैर्व्रियतइति (कर्मणियत्)	सब से वरने योग्य को
सुऽपेशसम्	शोभनरूपोपेतम् (निघं० ३।७)	मनोहर रूप वाले को
उषाः	उषाः	उषा
ददातु	ददातु	देवे
सुग्म्यम्	सुखेनप्राप्तव्यम्	सुख से प्राप्त होने वाले को

संस्कृतार्थः ।

यस्या देदीप्यमानाः प्रकाशा मङ्गलरूपा दृष्टाः सोषाः सर्वैर्वरणीयं शोभनरूपोपेतं सुखेनप्राप्तव्यं धनमस्मभ्यं ददातु ॥१२॥

भाषार्थः ।

जिसके खूब चमकते हुए प्रकाश मङ्गल रूप देखे गए हैं वह उषा सब से वरने योग्य मनोहर रूप वाले सुख से प्राप्त होने वाले धन को हमारे ता० दे ॥ १२ ॥

(१) उषाके प्रकाश सदा मङ्गल रूप देखे गए हैं । उससे इसी उपासक का अमङ्गल नहीं हुआ ।

उषोदेवता, सतोबृहती छन्दः ।१२।८।१२।८।।

ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये
जुहूरेऽवसे महि । सा नः स्तोमाँ अभि
गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ।।१४

ये	ये	जो
चित्	अपि	भी
हि	खलु	सचमुच
त्वाम्	त्वाम्	तुझ को
ऋषयः	ऋषयः	ऋषि
पूर्वे	पुरातनाः	प्राचीन
ऊतये	रक्षणार्थम्	रक्षा के लिए
जुहूरे	आहूतवन्तः	बुलाते थे
अवसे	अन्नार्थम् (निरु०२।७)	अन्न के लिए

महि	हे पूजनीये	हे पूजने योग्य
सा	सा	वह
नः	अस्माकम्	हमारे
स्तोमान्	स्तोत्राणि	स्तोत्रों को
अभि	अभि+	—
गृणीहि	अभि+गृणीहि प्रति शब्दय	उत्तर दो
राधसा	धनेन	धन से
उषः	हे,उषः	हे उषा
शुक्रेण	शुभ्रेण	उज्ज्वल से
शोचिषा	तेजसा	तेज से

संस्कृतार्थः ।

हे पूजनीये ! ये खलु पुरातना ऋषयोऽपि रक्षणायाऽन्नाऽर्थं (च) त्वामाहूतवन्तः, हे उषः सा (त्वम्) अस्मदीयानि स्तोत्राणि धनेन शुभ्रेणतेजसा (च) प्रतिशब्दय ॥१४॥

भावार्थः।

हे पूजनीय जो सचमुच प्राचीन ऋषि भी अन्न (और) रक्षा के लिए आप को बुलाते थे हे उषा सो (आप) हमारे स्तोत्रों का धन और उज्ज्वल तेज से उत्तर दें ॥१४॥

(१) अर्थात् स्तोत्रों के बदले में हमें धन और उज्ज्वल तेज दो

उषा देवता, बृहती छन्दः ।८।८।१२।८॥

उषो यद॒द्य भा॒नुना॒ वि द्वारा॑वृ॒णवो॑ दि॒वः। प्र नो॑ यच्छतादवृ॒कं पृ॒थु च्छ॒र्दिः प्र दे॑वि॒ गोम॑ती॒रिषः॑ ॥१५॥

उषः	हे उषः	हे उषा
यत्	यत्	जो
अद्य	अद्य	आज
भानुना	दीप्त्या	प्रकाश से
वि	वि +	—

१ द्वारौ	द्वारौ	दोनों द्वारों को
ऋण्वः	वि+ऋण्वः, उद्घाटितवती (ऋणु धातोर्लङि छान्दसंरूपम)	खोला है
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक के
प्र	प्र+	–
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताईं
यच्छतात्	प्र + यच्छतात्, देहि	दीजिए
अवृकम्	हिंसक रहितम्	हिंसक से रहित को
पृथु	विस्तृतम्	चौडे को
छर्दिः	गृहम् (निघं०३।४)	घर को
प्र	प्र(देहि)	दीजिये
देवि	हे देवि!	हे देवि
गोऽमतीः	गोभिर्युक्तानि	गौओं से युक्त को

इषः	अन्नानि	अन्नों को

संस्कृतार्थः।

हे उषः! यदद्य (त्वम्) दीप्त्या द्युलोकस्य द्वारा, वुद्घाटितवती (सात्वम्) अस्मभ्यं हिंसकरहितं विस्तीर्णगृहं, गोभिर्युक्तान्यन्नानि (च) प्रदेहि ॥१५॥

भाषार्थः।

हे उषा जो आज (आपने) प्रकाश से द्युलोक के दोनों द्वारों को खोला है(सो आप)हमारे ताईं हिंसकों से रहित चोडे घर को (और) गौओं से युक्त अन्नों को दीजिये ॥ १५ ॥

(१) दोनों द्वार अर्थात् जहां पूर्व और पश्चिम में आकाश पृथिवी से मिलता हुआ दीखता है ॥

उषोदेवता, सतोबृहतीछन्दः ।१२।८।१२।८।

संनोरायाबृहताविश्वपेशसा मि

मिक्ष्वासमिळाभिरा। संद्युम्नेनवि

प्रवतुरोषोमह्वि संवाजैर्वाजिनीवति

॥१६॥

सम्	सम्+	–
नः	अस्मान्	हम को
राया	धनेन	धन से
बृहता	महता	वड़े से
विश्वऽपेशसा	सर्वरूपेण	सब रूपों वाले से
मिमिक्ष्व	सम्+मिमिक्ष्व, संयोजय (व्यत्ययेनात्मनेपदम्)	संयुक्त कीजिये.
सम्	सम् (योजय)	–
इळाभिः	गोभिः(निघ०२।११)	गौओं से
आ	समुच्चयाऽर्थः	और
सम्	सम् (योजय)	संयुक्त कीजिए

द्युम्नेन	प्रतापेन (आ०को०)	प्रताप से
विश्वऽतुरा	विश्वेषां(शत्रूणाम्) तुहिंसकस्तेन	सम्पूर्ण(शत्रुओं)के नाश करने वालेसे
उषः	हे उषः	हे उषा
महि	हे पूजनीये	हे पूज्य
सम्	सम् (योजय)	संयुक्तकीजिये
वाजैः	अन्नैः	अन्नों से
वाजिनी ऽवति	हे अन्न बहुले	हे बहुत अन्न वाली

संस्कृतार्थः ।

हे उषः ! सर्व रूपेण महता धनेनाऽऽस्मान्संयोजय गोभिः (च) संयोजय, हे पूजनीये सर्वेषाम् (शत्रूणाम्)हिंसकेन प्रतापेन(अस्मान्)संयोजय,हेअन्न बहुले ! अन्नैः (अस्मान्)संयोजय॥ १६ ॥

भाषार्थः ।

हे उषा सब प्रकार के बड़े धनसे हम को संयुक्त

करो, (और) गौओं से संयुक्त करो, हे पूज्य ! सब (शत्रुओं) के नाश करने वाले प्रताप से हमें संयुक्त करो, हे बहुत अन्नवाली अन्न से हम को संयुक्त करो ॥ १६ ॥

इत्यष्टाचत्वारिंशं सूक्तम् ।

ऋ०मं०१ सू० ४९ ।

उषोदेवता, प्रस्कण्वऋषिरनुष्टुप्छन्दः।८।८।८।८

उषोभद्रेभिरागहि दिवश्चिद्रो-
चनादधि।वहन्त्वरुणप्सव उपत्वा
सोमिनोगृहम् ॥१॥

उषः	हे उषः	हे उषा
भद्रेभिः	कल्याणैः (मार्गैः)	शुभ (मार्गों) से
आ	आ+	–
गहि	आ+गहि,आगच्छ	आओ

१ दिवः	द्युलोकात्	द्युलोक से
१ चित्	अपि	भी
रोचनात्	रोचनात्+अधि दीप्यमानात्	प्रकाश युक्त से
अधि	+अधि	–
वहन्तु	प्रापयन्तु	पहुंचावें
अरुणऽप्सवः	अरुणवर्णाः (प्सुरिति रूपनाम नि० ।३।७)	लाल रङ्ग वाले
उप	प्रति	की ओर
त्वा	त्वाम्	तुझ को
सोमिनः	सोमयाजिनः	सोमयाजी के
गृहम्	गृहम्	घर को

संस्कृतार्थः ।

हेउषः !(त्वम्)दीप्यमानाद्द्युलोकादपि कल्याणैः

(मार्गैः) आगच्छ,त्वामरुणवर्णाः (अश्वाः) सोमयाजिनोगृहंप्रति प्रापयन्तु ॥ १ ॥

भापार्थः ।

हे उपा (आप) प्रकाश युक्त द्युलोक से भी शुभ (मार्गों से) आवें, आप को लाल रङ्ग वाले (घोडे सोमयाजी के घर की ओर पहुंचावें ॥ १ ॥

यह सूक्त प्रातरनुवाक में उपस्य क्रतु के अनुष्टुप्छन्द में पढा जाता है (आ०श्रौ० सू०४।१४।२)

(१) द्युलोक से भी, अर्थात् यद्यपि उपा पृथिवी से बहुत दूर द्युलोक में है,वहां से भी सोमयाजी के घर में आकर सोमपान करे ॥

उपोदेवता, अनुष्टुपछन्दः ।८।८।८।८

सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्थाउषस्त्वम् । तेनासुश्रवसंजनं प्रावाद्यदुहितर्दिवः ।२।

सुऽपेशसम्	शोभनरूप युक्तम् (नि०८।११)	सुन्दर रूप से युक्तको
सुऽखम्	सुखकरम्	सुख देने वाले ः

रथम्	रथम्	रथ को
यम्	यम्	जिस को
{ अधिऽअ-स्थाः	अध्यतिष्ठः	बैठी हो
उषः	हे उषः	हे उषा
त्वम्	त्वम्	तू
तेन	तेन	उससे
सुऽश्रवसम्	शोभनकीर्ति युक्तम्	सुन्दर कीर्ति वाले को
जनम्	मनुष्यम्	मनुष्य को
प्र	प्र +	–
अव	प्र+अव, प्रकर्षेण रक्ष	खूब रक्षा करो
अद्य	अद्य	आज
दुहितः	हे पुत्रि !	हे पुत्री

दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक की

संस्कृतार्थः।

हे द्युलोकस्य पुत्रि ! उषः ! त्वं शोभनरूपयुक्तं सुखकरं यं रथमध्यतिष्ठस्तेन (रथेनागत्य) अद्य शोभनकीर्तियुक्तं मनुष्यं प्रकर्षेण रक्ष ॥२॥

भाषार्थः।

हे द्युलोक की पुत्री उषा ! आप सुन्दर रूप से युक्त सुख देने वाले जिस रथ के ऊपर बैठी हो उस (रथ से आकर) आज सुन्दर कीर्ति से युक्त मनुष्य की खूब रक्षा करो ॥ २ ॥

उषोदेवता, अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८।

वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतु-
ष्पदर्जुनि । उषःप्रारन्नृतूँरनु दिवो
अन्तेभ्यस्परि ।३।

वयः	पक्षिणः	पक्षी
चित्	अपि	भी

ते	तव	तेरे
पतत्रिणः	पक्षोपेताः	पांखों वाले
द्विऽपत्	पादद्वयोपेतम् (मनुष्यादिकम्)	दो पाओं वाले (मनुष्यादि)
चतुःऽपत्	पादचतुष्टयोपेतम्(गवादिकम्)	चार पाओं वाले (गौ आदि)
अर्जुनि	हे शुभ्रवर्णे	हे उज्ज्वल रङ्ग-वाली
उषः	हे उषः	हे उषा
प्र	प्र+	–
आरन्	प्र + आरन् प्रागच्छन्	गए हैं
ऋतून्	गमनानि ऋगतौ,भावे कुप्रत्ययः)	गमनों का
अनु	अनु(स्तृत्य)	पीछे २
दिवः	आकाशस्य	आकाश के

अन्तेभ्यः	प्रान्तेभ्यः	सीमाओं से
परि	सर्वतः	सब ओर

संस्कृतार्थः।

हे शुभ्रवर्णे ! उषः ! तव गमनान्यनु (स्त्य) पक्षोपेताःपक्षिणः, पादद्वयोपेताः (मनुष्यादयः) पाद चतुष्टयोपेताः (गवादयश्च)आकाशप्रान्तेभ्यः सर्वतः प्रागच्छन् ॥ ३ ॥

भाषार्थः।

हे उज्ज्वल रङ्ग वाली उषा आप के गमन के पीछे २ पांखों वाले पक्षी, दो पाओं वाले (मनुष्यादि और) चार पाओं वाले (गौ आदि) आकाश की सीमाओं से सब ओर विचरे हैं ॥ ३ ॥

उषोदेवता, अनुष्टुपछन्दः।ऽऽऽऽऽ॥

व्युच्छन्तीहिरश्मिभि विंश्वमा भासिरोचनम् । तांत्वामुषर्वसूयवो गोभिःकण्वाअहूषत ।४।

विऽउच्छन्ती	प्रादुर्भवन्ती	प्रकट होती हुई
हि	खलु	सचमुच
रश्मिऽभिः	किरणैः	किरणों से
विश्वम्	सर्वम्	सब को
आऽभासि	समन्तात्प्रकाशयसि (अन्तर्भावितण्यर्थः)	चारों ओर प्रकाशित करती हो
रोचनम्	देदीप्यमानं यथास्यात्तथः (क्रियाविशेषणम्)	देदीप्यमान करती हुई
ताम्	ताम्	उसको
त्वाम्	त्वाम्	तझको
उषः	हे उषः	हे उषा
वसुऽयवः	वसु धनमात्मन इच्छन्ति,ते	धन की कामना वाले

गी:ऽभि:	स्तुतिभिः	स्तुतियों से
कण्वा:	कण्वाः	कण्ववंशियों ने
अहूषत	आहूतवन्तः	बुलाया है

संस्कृतार्थः ।

हे उषः ! (स्वकीयैः) किरणैः खलु प्रादुर्भवन्ती (या त्वम्) सर्वम् (भूतजातम्) देदीप्यमानं प्रकाशयसि, तां त्वां धनाऽभिलाषिणः कण्वाःस्तुतिभिराहूतवन्तः ॥ ४ ॥

भावार्थः ।

हे उषा सचमुच (अपनी) किरणों से प्रकट होती हुई (जो आप) सारे (संसार) को देदीप्यमान करती हुई प्रकाशित करती हो,उस आपको धनकी कामना वाले कण्ववंशियों ने स्तुतियों से बुलाया है ॥ ४ ॥

अब भी धनकी कामना वाली आर्य्य जाति को प्रभात के समय स्तुति और प्रार्थना को नहीं त्यागना चाहिए ॥

इत्येकोन पञ्चाशत्सूक्तम् ॥

ऋ० मं० १ सू० ५०।

सूर्योदेवता, प्रस्कण्वऋषिर्गायत्रीछन्दः ।८।८।८

उदुत्यंजातवेदसं देवंवहन्ति
केतवः। दृशेविश्वाय सूर्य्यम् ।१।

उत्	उत् +	–
ऊम्०	(पूरणः)	–
त्यम्	तम्	उसको
जातऽवेदसम्	जातानांवेदितारम्	उत्पन्न हुओं के जानने वाले को
देवम्	देवम्	देवता को
वहन्ति	उत्+वहन्ति, ऊर्ध्वंनयन्ति	ऊपर ऊपर ले जाती हैं
केतवः	रश्मयः	किरणें

दृशे	द्रष्टुम्	दर्शन के लिये
विश्वाय	सर्वस्मै	सब के लिए
सूर्यम्	सूर्य्यम्	सूर्य्य को

संस्कृतार्थः ।

रश्मयो जातानां वेदितारं तं सूर्य्यं सर्वस्मै दर्शनायोर्ध्वं वहन्ति ॥ १ ॥

भावार्थः ।

किरणें उत्पन्न हुओं के जानने वाले उस सूर्य्य को सब को दर्शन कराने के लिए ऊपर ऊपर ले जाती हैं ॥ १ ॥

विनियोग—इस सूक्त की प्रथम ९ ऋचायें आश्विन शस्त्र के सूर्य्य क्रतु में पढ़ी जाती हैं (आ० श्रौ० सू ६।५।१८)

सूर्य्य की किरणें ही हमें सूर्य्य देवता का दर्शन कराती हैं जिस समय किरणें सूर्य्य से चलती हैं उस से २०॥ पल (8 mt. 18 sec.) पीछे सूर्य्य भगवान का दर्शन होता है।

सूर्य्योदेवता, गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

अपत्येतायवोयथा नक्षत्रायन्त्यक्तुभिः । सूरायविश्वचक्षसे ।२।

अप	अप+	–
त्ये	ते(अर्थात् प्रसिद्धः)	वे (नामी)
तायवः	स्तेनाः (निघं० ३।२४।)	चोर
यथा	यथा	जैसे
नक्षत्रा	नक्षत्राणि (शेर्लोपः)	तारे
यन्ति	अप+यन्ति, अपगच्छन्ति	निकल जाते हैं
अक्तुऽभिः	किरणैः (सह) (भा०को०)	किरणोंके (सहित)
सूराय	सूर्य्याय	सूर्य्य के लिये
विश्वऽचक्षसे	सर्वस्यद्रष्ट्रे	सबके देखने वाले के लिये

संस्कृतार्थः ।

सर्वस्यद्रष्ट्रे सूर्य्याय नक्षत्राणि किरणैः (सह) प्रसिद्धाःस्तेनाइवाऽपगच्छन्ति ॥ २ ॥

भावार्थः।

सबके देखने वाले सूर्य्य के लिए नक्षत्र, किरणों (सहित) नामी चोरों की न्याईं निकल जाते हैं ॥ २ ॥

जब सब को देखने वाले सूर्य्य भगवान् उदय होते हैं तो नक्षत्र ऐसे निकल जाते हैं जैसे स्वामी के जागने पर नामी चोर, जिनका पकड़ना असम्भव है ॥

सूर्य्योदेवता, गायत्रीछन्दः।८।८।८।

अदृश्रमस्यकेतवो विरश्मयोजनाँ

अनु। भ्राजन्तोअग्नयोयथा।३।

अदृश्रम्	वि+अदृश्रम्, विस्पष्टेनदृष्टाः (व्यत्ययश्छान्दसः)	स्पष्ट देखी गई हैं
अस्य	अस्य	इसके
१ केतवः	ध्वज(रूपाः)	ध्वजा (रूप)
वि	वि+	--
१ रश्मयः	रश्मयः	किरणें

जनान्	जनान्	मनुष्यों को
अनु	अनु(लक्ष्य)	लक्ष रख कर
भ्राजन्तः	ज्वलन्तः ('निघं० । १ । १६)	जलती हुईं
अग्नयः	अग्नयः	अग्नियां
यथा	यथा	जैसे

संस्कृतार्थः ।

अस्य ध्वज-(रूपाः) रश्मयो जनान् (अनुलक्ष्य गच्छन्तः)ज्वलन्तोऽग्नय इव विस्पष्टेनदृष्टाः ॥ ३ ॥

भावार्थः ।

इस की ध्वजा (रूप) किरणें मनुष्यों की ओर (जाती हुईं) सप्ट देखी गईं हैं जैसे जलती हुईं अग्नियां ॥३॥

(१)किरणें सूर्य्य भगवान् के आने का समाचार लेकर ध्वजा रूप से आगे आगे चलती हैं जैसे सेना के आने का समाचार ऊंचे स्थानों पर अग्नियां जला कर दिया जाता है ॥

सूर्य्योदेवता, गायत्रीछन्दः ।८।८।८॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि

सूर्य । विश्वमाभासिरोचनम् ।४।

१ तरणिः	त्वरायुक्तः (तरणिरिति क्षिप्र नाम) (निघ० । २ ।१५)	वेग वाला
विश्वऽद-र्शतः	सर्वैर्द्रष्टव्यः	सब से देखने योग्य
ज्योतिःऽ कृत्	ज्योतिषःकर्ता	ज्योति के करने वाला
असि	असि	तू है
सूर्य	हे सूर्य !	हे सूर्य
विश्वम्	सर्वम्	सब को
आ	आ+	–
भासि	आ + भासि प्रकाशयसि (अन्तर्भावितण्यर्थ)	तू प्रकाशित करता है

रोचनम्	देदीप्यमानंयथा स्यात्तथा (क्रियाविशेषणम्)	देदीप्य मान करके

संस्कृतार्थः ।

हे सूर्य्य ! (त्वम्) त्वरायुक्तः सर्वैर्द्रष्टव्यः, ज्योतिषः कर्ता (च)असि,(त्वमेव) सर्वं देदीप्यमानं प्रकाशयसि ॥ ४ ॥

हे सूर्य्य आप वेग वाले सब से देखने योग्य (और) प्रकाश के करने वाले हो, (आप ही)सब को देदीप्यमान करके प्रकाशित करते हो ॥ ४ ॥

. ¹ यह मंत्र चातुर्मास्य के शुनासीरीय पर्व में सूर्य्य की हवि का अनुवाक्या है (आ० श्रौ० सू० २।२०।४)

(१) त्वरायुक्त इस लिए कि बराबर चलते रहते हैं, कभी विश्राम नहीं लेते ।

सूर्य्योदेवता, गायत्रीछन्दः । ८।८।८

प्रत्यङ् देवानांविशः प्रत्यङ्ङुदे-
षिमानुषान्। प्रत्यङ्विश्वंस्वर्दृशे॥५॥

पृ०	प०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१०८३	१५	मऽ	मुऽ
१०८३	१६	होतारम	होतारम्
१०८५	१४	सुतऽ	सुतऽ
१०८८	५	यज्ञेषु	यज्ञेषु
,,	७	प-ीाः	पतोताः
११००	८	है	तु है
११०५	१५	बर्हिर्षि	बर्हिषि
,,	१८	लुक)	लुक्)
११०७	२	यद्यं	यज्ञम्
११०८	१४	पिबतु	पिबतु
१११०	४	बद्धौ	बद्धौ
१११२	१८	दाशषे	दाशुषे
,,	१४	माला	माले
१११४	१८	जात	जात
,,	१८	मत	मत
१११५	२	पाप	पाणि

पृ०	प०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१११५	१०	स्रुधी	स्रुघि
१११८	४	सूनवः	सूनवः
११२२	६	रम्	रम्
,,	३	त्रिप्टिप	विष्टिपु
११२७	१०	उपवेषण	उपवेषय
११२८	३	दैध्यं	दैध्य
,,	४	सदा	सदा
,,	८	जनम्	जनम्
११३०	८	विया	विप
,,	१४	स्तुपे	स्तुषे
,,	१५	वाम	वाम्
११३२	११	विदा	विदा
११३३	११	वक	वकू
,,	१४	ते ह	ते हैं
,,	१०	नूर्णायाम्	नूर्णायाम्

मूल्य प्राप्ति स्वीकार।

९८ ठाकुर बसावनसिंह ग्राम कान्हौली पो० महुआ जिला मुजफ्फरपुर ५॥)

९९ लाला रूपचन्द हीरानन्द वकील ग्राम शिकारपुर (सिन्ध) ५॥)

१०० ठाकुर गनपतसिंह मुनसरीम ग्राम मण्डावा जिला जयपुर ५॥)

१०१ दाहिया भाई बी० पटेल सक्रेटरी बीठल पुस्तकालय पोस्ट भाद्रान (गुजरात) ५॥)

पुस्तक मिलने और मूल्य भेजने का पताः—

मुन्शी जयराम मैनेजर

ऋग्वेद संहिता ब्राह्मण वालीकोठी

[मुलतान]

अंक २९-३०] [माघ फाल्गुन १९६५

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर व्याख्यान से युक्त

जिसको मुलतान निवासी पं० शङ्करदत्त शास्त्री की सहायता से शिवनाथ आहिताग्नि ने सम्पादन किया

लाहौर

पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में प्रिंटर लाला लालमन के अधिकार से छपा।

१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)

पहले २४ अंकों का मूल्य ५॥)

१ प्रत्यङ्	सम्मुखं वर्तमानः	सामने हुआ हुआ
देवानाम्	देवानाम्	देवताओं के
२ विशः	जातीन्(आ०को०)	जातियों को
प्रत्यङ्	सम्मुखं वर्तमानः	सामने हुआ हुआ
उत्	उत्+	–
५ एषि	उत्+एषि, ऊर्ध्वं गच्छसि	ऊपर चलते हो
मानुषान्	मानुषान्	मनुष्यों को
प्रत्यङ्	सम्मुखं वर्तमानः	सामने हुआ हुआ
विश्वम्	सर्वम्	सब को
स्वः	ज्योतिः	प्रकाश को
दृशे	द्रष्टुम	देखने के लिए

संस्कृतार्थः ।

(हे सूर्य्य ! त्वम्) देवजातीन् प्रति वर्तमानः,

मनुष्यान्प्रति वर्तमानः सर्वं प्रति वर्तमानः (सन्) ज्योतिः प्रदर्शनार्थमूर्ध्वं गच्छसि ॥५॥

भावार्थः ।

(हे सूर्य्य आप) देवजातियों के सामने हुए हुए, मनुष्यों के सामने हुए २,सबके सामने हुए हुए ज्योति दिखाने के लिए ऊपर ऊपर चलते हो ॥५॥

(१) जब सूर्य्यदेव आकाश में चलते हैं, तो सब देवजाति सब मनुष्य और दूसरे सब प्राणी ऐसा समझते हैं कि सूर्य्य ने हमारी ओर मुख किया हुआ है।

(२) ऋषियों ने देवताओं में भी,गुणकर्मानुसार जातिविभाग की कल्पना की है। जैसे अग्नि में ब्रह्म जाति की इन्द्र में क्षत्रजाति की और मरुतों में वैश्य जाति की ॥

वरुणोदेवता, गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

येनापावकचक्षसा भुरण्यन्तंजनाँ

अनु । त्वंवरुणपश्यसि ।६।

येन	येन	जिससे
पावक	हे पवित्र कारक !	हे पवित्र करने वाले

चक्षसा	चक्षुषा (आ०को०)	नेत्र से
भुरण्यन्तम्	गच्छन्तम् (निघ०२।१४)	चलते हुए को
जनान्	मनुष्यान्	मनुष्यों को
अनु	प्रति (आ०को०)	की ओर
त्वम्	त्वम्	आप
वरुण	हे वरुण !	हे वरुण
पश्यसि	पश्यसि	देखते हो

संस्कृतार्थः ।

हे पवित्रकारक ! वरुण ! येन चक्षुषा त्वं पश्यसि (तम्) मनुष्यान्प्रति गच्छन्तम् (चक्षुर्नमस्कुर्मः) ॥६॥

भाषार्थः ।

हे पवित्र करने वाले वरुण आप जिस नेत्र से देखते हो मनुष्योंके प्रति जाने वाले (उस नेत्र को हम नमस्कार करते हैं) ॥ ६ ॥

इस मन्त्र के देवता वरुण हैं (देखो वृ०दे० श११३) जिन का आकाश रूप और सूर्य्य चक्षु हैं, इसी सूर्य्य रूपी चक्षु द्वारा वरुण देव सब मनुष्यों के पुण्य पाप को देखते हैं, उस चक्षु को हमारा नमस्कार हो।

सूर्योदेवता, गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

विद्यामेषिरजस्पृथ्व हामिमानो

अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानिसूर्य्य ।७।

वि	वि+	–
द्याम्	द्याम् +	–
एषि	गच्छसि	जाते हो
रजः	द्याम् + रजः (लोकारजांस्युच्यन्ते निरु०)	द्युलोक को
पृथु	विस्तीर्णम्	विस्तार युक्त को
अहा	अहानि (शेर्लोपः)	दिनों को

मिमा॑नः	वि+मिमानः, पृथक्कुर्वन् (आ०को०)	अलग करता हुआ
अ॒क्तुऽभि॑ः	रात्रिभिः	रात्रियों द्वारा
पश्य॑न्	पश्यन्	देखता हुआ
जन्मा॑नि	जातानि	प्राणियों को
सूर्य॒	हे सूर्य्य !	हे सूर्य्य

संस्कृतार्थः

हे सूर्य्य ! (त्वम्) रात्रिभिर्दिनानि पृथक्कुर्वन् (तथा) जातानि पश्यन् (सन्) विस्तीर्णं द्युलोकं गच्छसि ॥७॥

भावार्थः ।

हे सूर्य्य (आप) रात्रियों द्वारा दिनों को अलग करते हुए, (और) प्राणियों को देखते हुए, विस्तार युक्त द्युलोक की ओर जाते हैं ॥७॥

सूर्य की प्रत्यक्षगति (जो वास्तव में पृथिवी की गति है) दिन और रात्रि का भेद करती है, इस से भिन्न एक और गति है जिस से सूर्यदेव अपने सारे परिवार को लिए हुए द्युलोक की ओर जा रहे हैं ॥

सूर्यो देवता, निचृद्गायत्रीछन्दः।८।७।८।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण ।८।

सप्त	सप्त	सात
त्वा	त्वाम्	तुझ को
हरितः	अश्वाः	घोड़े
रथे	रथे	रथ में
वहन्ति	नयन्ति	ले जाते हैं
देव	हे देव !	हे देव
सूर्य	हे सूर्य्य !	हे सूर्य्य
शोचिःऽ-केशम्	शोचींषितेजांस्येव केशा यस्य,तम्	तेज रूप बालों से युक्त को

विऽचक्षण	हे विशेषदृष्टि युक्त	हे दूर देखने वाले

संस्कृतार्थः ।

हे विशेषदृष्टियुक्त सूर्य्य ! हे देव ! तेजोरूप केशयुक्तं रथे (अवस्थितम्) त्वां सप्त (सङ्ख्याकाः) अश्वाः (आकाशे) नयन्ति ॥ ८ ॥

भावार्थः ।

हे दूर देखने वाले सूर्य्यदेव, तेजरूप बालों से युक्त (और) रथ में (बैठे हुए) आपको सात घोड़े (आकाश में) ले जाते हैं ॥८॥

पहिले मंत्र में आया है, कि सूर्य्य को किरणें ले जाती हैं, इसलिये ये सात घोड़े सूर्य्य की सात प्रकार की किरणें हैं, जो इन्द्र धनुष में भिन्न भिन्न प्रतीत होती हैं, और वृक्ष, फूल, फल, घास पशु, मनुष्य इत्यादि सृष्टि में नाना रंग को उत्पन्न करती हैं ॥

सूर्योदेवता, गायत्रीछन्दः ।८।८।८॥

अयुक्तसप्तशुन्ध्युवः सूरोरथस्य

नप्त्यः । ताभिर्यातिस्वयुक्तिभिः ।९।

अयुक्त	योजितवान्	जोड़ा है
सप्त	सप्त	सात
शुन्ध्युवः	वडवाः	घोड़ियों को
सूरः	सूर्य्यः	सूर्य्य ने
१ रथस्य	रथस्य	रथ की
१ नप्त्यः	पुत्र्यः (नपात्ऽइत्यपत्यनाम (निघं० ।२।२)	पुत्रियों को
ताभिः	ताभिः	उन से
याति	चलति	चलता है
स्वयुक्तिऽभिः	स्वयमेवयुक्तयो योजनानि यासां ताभिः	स्वयं जुड़ने वालियों से

संस्कृतार्थः ।

सूर्य्यो रथस्य पुत्रिस्थानीयाः सप्तसङ्ख्याका वडवाः (रथे) योजितवान्, ताभिः स्वयं युक्ताभिः (वडवाभिराकाशे) चलति ॥ ९ ॥

भापार्थः।

सूर्य्य ने रथ की पुत्री रूप सात घोड़ियों को (रथ में) जोड़ा है (वह) उन स्वयं जुड़ने वालियों से (आकाश में) चलते हैं ॥ ९ ॥

सूर्य्य का मण्डल रथ है। उसी से उत्पन्न होने से किरणें रथ की पुत्री हैं, जो रथ में स्वयं जुड़ी हुई हैं, इन सात घोड़ियों वाले रथ से सूर्य्य भगवान् आकाश की यात्रा करते हैं ॥

सूर्य्यदेवता,अनुष्टुप्छन्दः ८।८।८।८।

उद्वयंतमसस्परि ज्योतिष्पश्य-
न्तउत्तरम्। देवंदेवत्रासूर्यं मगन्म
ज्योतिरुत्तमम्।१०।

उत्	उत्	-
वयम्	वयम्	हम
तमसः	अन्धकारस्य	अन्धकार के
परि	उपरि (आ०वो०)	ऊपर
ज्योतिः	प्रकाशम्	प्रकाश को

पश्यन्तः	पश्यन्तः	देखते हुए
उत्ऽत-रम्	उत्कृष्टतरम्	बहुत बड़े को
देवम्	देवम्	देवता को
देवऽत्रा	देवेषु (सप्तम्यर्थेत्राप्रत्ययः)	देवताओं में
सूर्यम्	सूर्यम्	सूर्य को
अगन्म	उत् + अगन्म प्राप्नुयाम (लिङर्थेलङ्)	प्राप्त होवें
ज्योतिः	ज्योतिरूपम्	ज्योति रूपको
उत्ऽतमम्	उत्तमम्	उत्तम को

संस्कृतार्थः ।

वयमन्धकारस्योपर्य्युत्कृष्टतरं प्रकाशं पश्यन्तो देवेषु(मध्ये)उत्तमं ज्योतीरूपं सूर्य्यदेवं प्राप्नवाम।१०।

भाषार्थः।

हम अन्धकार के ऊपर वहुत बडे प्रकाश को देखते हुए देवताओंमें उत्तम ज्योति रूप सूर्यदेवता को प्राप्त होवें ॥१०॥

अन्धकार जो पृथिवी की छायासे होता है। केवल ८,६०,००० मील तक है, इस से ऊपर निरन्तर ज्योति है, हम इस शरीर को त्यागने पर निरन्तर ज्योति को देखते हुए सूर्यलोक को प्राप्त होवें, अथवा ध्यान द्वारा जीते जी प्राप्त होवें यह प्रार्थना इस मंत्र में है।

सूर्योदेवता,निचृदनुष्टुप्छन्दः।८।८।८॥

उद्यन्नद्यमित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगंममसूर्य हरिमाणञ्चनाशय।११।

उत्ऽयन्	उदयंगच्छन्	उदय होता हुआ
अद्य	अद्य	आज
मित्रऽमहः	हे मित्रनन्दन (महरतिहर्षनाम, भा०को०)	हे मित्रोंके प्रसन्न करने वाले
आऽरोहन्	आरोहन्	चढता हुआ

उत्ऽतराम्	उत्कृष्टतरम्	बहुत बड़े को
दिवम्	द्युलोकम्	द्युलोकको
हृत्ऽरोगम्	हृद्रोगम्	हृदय के रोग को
मम	मम	मेरे
सूर्य	हे सूर्य्य !	हे सूर्य्य
हरिमाणम्	पीतवर्णताम् (आ०को०)	पीलेपन को
च	च	और
नाशय	नाशय	नाश करो

संस्कृतार्थः ।

हे मित्रनन्दन हे सूर्य्य ! अद्योदयं गच्छन्नुत्कृष्टतरं द्युलोकम् (च) आरोहन् मम हृद्रोगं पीतवर्णताञ्च नाशय ॥ ११ ॥

भावार्थः ।

हे मित्रों के प्रसन्न करने वाले हे सूर्य्य, आज (आप) उदय होते हुए (और) बड़े द्युलोक में

चढ़ते हुए, मेरे हृदय के रोग और पीले पन को नाश करो ॥ ११ ॥

प्रस्कण्व ऋषि ने हृदय रोग और पाण्डु रोग (पीलिये) की अवस्था में ये तीन मंत्र देखे थे और इन से उनको रोग की शांति हुई थी, अब भी जो इन मंत्रों से सूर्य्य की उपासना करे तो उसका पाण्डु और हृदय रोग नाश हो सकता है। सज्जनों का दुःख भी संसार के उपकार का कारण होता है। शुनःशेप का उदाहरण इस विषय में आचुकी है। आगे और ऋषियों के भी आवेंगे।

सूर्य्यो देवता, अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८।

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु द-
ध्मसि। अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं
नि दध्मसि ।१२।

शुकेषु	शुकेषु	तोतों में
मे	मम	मेरे
हरिमाणं	पीतवर्णताम्	पीले पन को
रोपणाकासु	सारिकासु	मैनाओं में

दध्मसि	स्थापयामः (मसइकारागमः)	स्थापन करते हैं
अथो०	अपिच	और भी
हारिद्रवेषु	गोपीताख्यहरिद्रुणेषुपक्षिषु (ऋ०८।३५।७)	गोपीत पक्षियों में
मे	मम	मेरे
हरिमाणम्	पीतवर्णताम्	पीले पनको
नि	नि+	—
दध्मसि	नि+दध्मसि, स्थापयामः	हम स्थापन करते हैं

संस्कृतार्थः।

(हे सूर्य्य)! मम पीतवर्णतां शुकेषु सारिकासु, अपिच गोपीत पक्षिषु स्थापयामः ॥१२॥

भाषार्थः।

हे सूर्य्य! मेरे पीले पन को हम तोतों और मैनाओं में और गोपीत पक्षियों में स्थापन करते हैं ॥१२॥

इन तीनों पक्षियों में पीला रंग स्वभाविक है; रोग के कारण नहीं है। वे हमारे पीले रंग को ग्रहण करें और हम अपना स्वभाविक रंग धारण करें ॥

सूर्योदेवता, अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह । द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम् ॥१३॥

उत्	उत् +	–
अगात्	उत्+अगात्, उदितोऽभूत्	उदय हुआ है
अयम्	अयम्	यह
आदित्यः	सूर्य्यः	सूर्य्य
विश्वेन	सर्वेण	सब से
सहसा	बलेन	बल से
सह	सह	साथ

द्विषन्तम्.	द्वेषंकुर्वन्तम्	शत्रुता करने वाले को
मह्यम्	मह्यम्	मेरे ताईं
रन्धयन्	आयत्ती कुर्वन् (आ०को०)	वस में करता हुआ
मो०	न	नहीं
अहम्	अहम्	मैं
द्विषते	शत्रवे	शत्रु के ताईं
रधम्	आयत्तीभवेयम् (लिङर्थेलुङ् अडभावः)	वस में होऊं

संस्कृतार्थः ।

अयं सूर्य्यः सर्वेण बलेन द्वेषकारिणं मह्यमायत्तीकुर्वन्नुदितोऽभूत्, अहं शत्रवे माऽऽयत्तीभवेयम् ॥१३॥

भाषार्थः ।

यह सूर्य्य(देव)सम्पूर्ण बलके साथ शत्रुता करने वालेको मेरे वस में करते हुए उदय हुए हैं मैं शत्रुके वस में न होऊं ॥१३॥

इति पञ्चाशत्सूक्तम् ।

ऋ० मं० १ सू० ५१।

विनियोग—यह सूक्त अतिरात्र यज्ञ में प्रथम रात्रि के पर्याय में होता के शस्त्र में पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू० ६।४।१०)

और गवामयन में विषुवत् के दिन निष्केवल्य शस्त्र में भी पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू० उ० । २।६।१२)

इस सूक्त में इन्द्र के मनुष्यहितकारी वीर कर्मों का वर्णन है और यह दिखलाया गया है कि वे वीर कर्म भक्तों की स्तुति और सोम द्वारा पूजन से प्रेरित हुए हैं, कुछ उदाहरण भक्तोंकी रक्षा और सहायताके लिए हैं जैसे अङ्गिराओं और अत्रि के लिए वर्षा का करना, दस्युओं (आर्य्य शत्रुओं) के साथ युद्ध में राजा ऋजिश्वा की सहायता करना, इसी तरह कुत्स ऋषि और राजा दिवोदास वा अतिथिग्व की रक्षा करना, वम्र ऋषि के स्तुति बल से दस्यु वृत्र को मार कर गिराना, कवि के पुत्र उशना ऋषि के स्तुति बल से द्यावा पृथिवी को कपाने वाले बल को प्राप्त करना शार्य्यात राजा का अर्पण किया सोम पी कर बड़े बड़े यश को बढ़ाने वाले कर्मों का करना, वृद्ध भक्त कक्षीवान को युवती वृचया नामी स्त्री का प्राप्त कराना इत्यादि ।

इन्द्रोदेवता सव्य आङ्गिरस ऋषिर्जगतीछन्दः

॥१२।१२।१२।१२॥

अभित्यंमेषंपुरुहूतमृग्मिय मिन्द्रं

गीर्भिर्मदतावस्वोअर्णवम् । यस्य

द्यावोनविचरन्तिमानुषा भुजेमंहि-
ष्ठमभिविप्रमर्चत ।१।

अभि	अभि +	–
त्यम्	तम्	उसको
मेषम्	सेक्तारम् (नरम्) (मेषतिः सेचनकर्मा) (आ०को०)	नर को
पुरुऽहूतम्	वहुभिराहूतम्	वहुतों से वुलाए गए को
ऋग्मियम्	ऋग्भिर्मीयते शब्द्यते,तम् (माङ् शब्दे)	ऋचाओं से स्तुति किए जाने वाले को
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
गीःऽभिः	स्तुतिभिः	स्तुतियों से
मदत	अभि+मदत,मादयत (णिलोपश्छान्दसः)	हर्षित करो

वस्वः	धनस्य	धन के
अर्णवम्	समुद्रम्	समुद्र को
यस्य	यस्य	जिसके
द्यावः	आकाशाः	आकाश
न	इव	की न्याईं
विऽचरन्ति	अभिव्याप्नुवन्ति (आ०को०)	चारों ओर फैलते हैं
मानुषा	मनुष्यहितानि	मनुष्य के हितकारी
भुजे	लाभाय (आ०को०)	लाभके लिये
मंहिष्ठम्	अतिशयेनवृद्धम् (महिवृद्धौ)	बहुत बढे हुएको
अभि	अभि+	
विप्रम्	मेधाविनम्	बुद्धिमान को
अर्चत	अभि+अर्चत	पूजो

संस्कृतार्थः ।

(हे आर्य्याः!) तं बहुभिराहूतं ऋग्भिःस्तूयमानं धनस्य समुद्रं नरमिन्द्रं स्तुतिभिर्मादयत यस्य मनुष्य हितानि(कर्माणि)आकाशाइवाऽभिव्याप्नुवन्ति,अतिशयेन वृद्धं मेधाविनम् (तमेव)लाभायाऽभ्यर्चत ॥१॥

भावार्थः ।

(हे आर्य्यगण) उस बहुतों से बुलाए गए, ऋचाओं से स्तुति किए जाने वाले,धन के समुद्र, नर वीर इन्द्रको स्तुतियों से हर्षित करो,जिसके मनुष्य हितकारी(कर्म)आकाशों की न्याई चारों ओर फैलते हैं,बहुत बढे हुए,बुद्धिमान,(उसी को) लाभ के लिए पूजो ॥ १ ॥

यदि हम को लाभ की इच्छा है तो धन के समुद्र इन्द्र को स्तुति द्वारा मद युक्त करना चाहिये। थोडे धन वाले लौकिक राजा आदि का सहारा नहीं तकना चाहिये ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ॥१२।१२।१२।१२।

अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयो ऽन्तरिक्षप्रांतविषीभिरावृतम्। इन्द्रं-

दक्षासऋभवोमदच्युतं शतक्रतुं ज-
वनीसूनृतारुहत् ।२।

अभि	अभि+	–
ईम्	(पूरणः)	–
अवन्वन्	अभि+अवन्वन्, अभितोऽभजन्त (वनतेर्व्यत्ययेनउप्रत्ययः)	सब ओर से सेवा की
सुऽअभिष्टिम्	सुपष्टव्यम्	अत्यन्त पूजनीय को
ऊतयः	सहायकाः (कर्त्तरिक्तिन्)	सहायक
अन्तरिक्षऽप्राम्	अन्तरिक्षस्य पूरकम्	अन्तरिक्ष के भरने वाले को
तविषीभिः	बलैः	बलों से

आऽवृतम्	आवृतम्	घिरे हुए को
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
दक्षासः	कर्मकुशलाः	काम में चतुर
ऋभवः	ऋभवः	ऋभुओं(ने)
मदऽच्युतम्	मदोन्मत्तम् (आ०को०)	मदोन्मत्त को
शतऽक्रतुम्	बहुकर्माणम्	बहुत कर्मों से युक्त को
जवनी	प्रेरयित्री (करणेल्युट्)	उत्साह दिलाने वाली
सूनृता	प्रियावाक्	प्यारी वाणी
आ	आ +	—
अरुहत्	आ + अरुहत् उदगच्छत्	ऊपर उठी

संस्कृतार्थः।

सहायकाः कर्मकशला ऋभवःसुपष्टव्यमन्तरि-

क्षस्य पूरकं वलरावृतंमदोन्मत्तमिन्द्रमभितोऽभजन्त, (तेषाम्) प्रेरयित्री प्रियावाक् बहुकर्माणम् (प्रति) उदगच्छत् ॥ २ ॥

भावार्थः ।

सहायक, कर्म में चतुर, ऋभुओं ने अत्यन्त पूजनीय, अन्तरिक्ष को भरने वाले, वलों से घिरे हुए मदोन्मत्त इन्द्र की सब ओर से सेवा की (उन की) उत्साह दिलाने वाली प्यारी वाणी बहुत कर्मों से युक्त (इन्द्र) के प्रति उठी ॥ २ ॥

ऋभओं के वर्णन के लिए देखो (पृ० ३९४) अब इन भक्तों में इन्द्र की सब ओर से सेवा की, और इनकी उत्साह दिलाने वाली वाणी इन्द्र के प्रति उठी, तब सोम रस से मदोन्मत्त होकर इन्द्र ने आर्य्य शत्रुओं का विध्वंस किया। इन्द्र तो अब भी है। परन्तु जब तक उन के उपासकों की स्तुति रूप वाणी उनको वीरता के कर्म करने में प्रेरण न करे, तब तक वह आर्य्य सन्तान की रक्षा करने में असमर्थ है।

सोमरसजनित उन्माद दूसरे मदकारक द्रव्यों से उत्पन्न उन्माद से इतना भिन्न है, जैसे दिन से रात, इस विषय में पक्षपात रहित प्रो० मैक्समूलर भी सम्मति देते हैं, वह लिखते हैं "वेद के आशय को अंग्रेजी वा दूसरी भाषा में वर्णन करने की कठिनता यहां फिर प्रत्यक्ष होतीहै, क्योंकि हमारे हां सोम वा दूसरी बूटियों से जनित मन की उच्च अवस्था को द्योतन करने वाला ऐसा कोई शब्द नहीं है जो घृणा उत्पन्न करने वाले भाव से रहित हो, परन्तु प्राचीन समय में वह मन की उच्च अवस्था देवताओं

की कृपा से प्राप्त और देवताओं के योग्य समझी जाती थी, जिस अवस्था में कवि और वीर अपने उच्च से उच्च कर्त्तव्य करते थे" ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

त्वंगोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपो ताऽ

त्रयेशतद्रुरेषुगातुवित् । ससेनचि-

द्विमदायावहोवस्वा जावद्रिंवावसा

नस्यनर्त्तयन् ।२।

त्वम्	त्वम्	तूने
गोत्रम्	गोसमूहम्	गौओंके समूहको
१ { अङ्गिरः-ऽभ्यः	अङ्गिरोभ्यः	अङ्गिराओंके लिये
अवृणोः	अप+अवृणोः अपावृतवानसि	खोल दिया
अप	अप+	–

उत	च	और
१ अत्रये	अत्रये	अत्रिके लिये
२ शतऽदुरेषु	शतं दुरा द्वाराणि येषां ते, तेषु (दुर्गेषु)	सैकड़ों द्वार वाले (दुर्गों) में
२ गातुऽवित्	गातुंगन्तव्यंमार्गं वेदयति, मार्गस्य लम्भयिता (अन्तर्भावितण्यर्थात् क्विप्)	रस्ता निकालने वाला
ससेन	अन्नेन (निघ०२।७)	अन्न से
चित्	अपि	भी
१ विऽमदाय	विमदाय	विमद ऋषि के लिये
अवहः	प्रापितवान्	प्राप्त कराया
वसु	धनम्	धन को
आजौ	सङ्ग्रामे	युद्ध में

अद्रिम्	वज्रम् (निरु०)	वज्र को
वव्सानस्य	निवसतः (यजमानस्य)	निवास करते हुए (यजमान) के
नर्त्तयन्	नर्त्तयन्	नचाता हुआ

संस्कृतार्थः।

(हे इन्द्र!) शत द्वार युक्तेषु (दुर्गेषु) मार्गस्य लम्भयिता त्वमङ्गिरोभ्योऽत्रये च गोसमूहमपावृतवान्, अपि (च) यजमानस्य सङ्ग्रामे वज्रन्नर्तयन्(सन्) विमदायान्नेन युक्तंधनंप्रापितवान् ॥ ३ ॥

भाषार्थः।—

(हे इन्द्र) सैंकड़ों द्वार वाले (दुर्गों में) रस्ता निकालने वाले आपने अङ्गिरा और अत्रिके लिए (मेघ रूपी)गौके समूह को खोल दिया। और यजमान के युद्ध में वज्र को नचाते हुए आपने विमद के लिए अन्न सहित धन को प्राप्त कराया ॥३॥

(१) अङ्गिरा और अत्रि आर्य्य जातिके आदि पुरुषाओं में से हैं।

(२) सैंकड़ों द्वारों वाले दुर्ग (गढ़ वा किले) बादल हैं, जिन में रस्ता ढूंढ कर, इन्द्र ने जल और ज्योति रूपी गौओं को अङ्गिराओं और अत्रि के लिए खोल दिया।

(३) विमद भी एक प्राचीन ऋषि का नाम है, जिन के लिए इन्द्र ने आर्य्य राजा को युद्ध में जिता कर ऋषि को अन्न और धन प्राप्त कराया।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

त्वमपामपिधानाऽवृणोरपा ऽधारयः पर्वते दानुमद्वसु। वृत्रंयदिन्द्रशवसा वधीरहिं मादित्सूर्य्यंदिव्यारोहयोदृशे ।४।

त्वम्	त्वम्	तूने
अपाम्	जलानाम्	जलों के
१ अपिऽधाना	आच्छादनानि (शेर्लोप.)	ढकनोंको
अवृणोः	अप + अवृणोः, अपावृतवानसि	खोल दिया
अप	अप +	–
अधारयः	स्थापितवानसि	स्थापन किया
२ पर्वते	पर्वते	पर्वत पर

२ दानुऽमत्	दानयुक्तम्	दान युक्त को
२ वसु	धनम्	धन को
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
यत्	यदा	जब
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
शवसा	बलेन	बल से
अवधीः	अवधीः	तू ने मारा
२ अहिम्	मेघम् (निघं०१।१०)	मेघ को
आत्	अनन्तरम्	पीछे
इत्	एव	ही
२ सूर्यम्	सूर्यम्	सूर्य्य को
दिवि	द्युलोके	आकाश में

आ	आ +	–
अरोहयः	आ + अरोहयः प्रादुष्कृतवानसि	प्रकट किया
दृशे	दृष्टुम्	दर्शन के लिये

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! त्वं जलानामाच्छादनान्यपावृतवान् पर्वते दानयुक्त धनम् (च) स्थापितवान् यदा (त्वम्) मेघ-(रूपम्) वृत्रं हतवान् (तद्) अनन्तरमेवाऽऽकाशे सूर्यं दर्शनाऽर्थंप्रादुष्कृतवान् ॥ ४ ॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र आपने जलों के ढकनों को खोल दिया (और) पर्वत पर दान युक्त धन को स्थापन किया, जब आपने बादल (रूपी) वृत्र को मारा (औरउसके) तुरन्त पीछे आकाश में सूर्य्य को दर्शन के लिए प्रकट किया ॥ ४ ॥

(१) जलों के ढकने जो धूलि के कण रूप में जलों को पकड़े हुए थे इन्द्र ने विद्युत रूपी वज्र से खोल दिये ।

(२) दानयुक्त धन वर्षा रूपी जल है, जो अधिकतर पर्वत में ही बरसता है ।

(३) यह प्रथमज वृत्र का वृत्तान्त है। जिस को मारने से पृथिवी पर पहली बार सूर्य्य के दर्शन हुए। (देखो पृ० ७५६)

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

त्वंमायाभिरपमायिनोऽधमः स्वधाभिर्येअधिशुप्तावजुह्वत । त्वंपिप्रोर्नृमणःप्रारुजःपुरः प्रऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥५॥

त्वम्	त्वम्	तू ने
१ मायाभिः	मायाभिः	मायाओंसे
अप	अप +	–
१ मायिनः	मायोपेतान्	मायावियोंको
२ अधमः	अप+अधमः अपसारितवान् (धमतिर्गतिकर्मा निघ०६।२)	दूर निकाल दिया
स्वधाभिः	अन्नैः (निघं०२।७)	अन्नों से

ये	ये	जिन्होंने
अधि	अधि+	—
शुप्तौ	अधि+शुप्तौ, मुखे (सा०भा०)	मुख में
अजुह्वत	अहोषुः (जुहोतेर्लङि व्यत्ययेना त्मनेपदम्)	हवन किया करते थे
त्वम्	त्वम्	तूने
२ पिप्रोः	पिप्रोः	पिप्रु के
नृऽमनः	नृषुमनो यस्य, तत्सम्बुद्धौ	हे मनुष्यों में मन रखने वाले
प्र	प्र+	—
अरुजः	प्र+अरुजः, प्राभाङ्क्षीः	तोड़ दिया
पुरः	पुराणि	गढ़ों को
प्र	प्र+	—
ऋजिश्वानम्	ऋजिश्वानम्	ऋजिश्वा को

दस्युऽहत्येषु	दस्यूनां हत्या येषु (युद्धेषु)	जहां दस्यु मारे जाएं ऐसे (युद्धों में)
आविथ	प्र+आविथ प्रकर्षेण रक्षितवान्	अत्यन्त रक्षाकी

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र !) ये (असुरा हविर्लक्षणैः) अन्नैः मुखे अहौषुः (वृत्रादींस्तान्) मायोपेतान् त्वं मायाभरप-सारितवान् हे नृमनः ! त्वं पिप्रोः पुराणि प्राभाङ्क्षीः (अपि च) दस्यु हत्येषु (युद्धेषु) ऋजिश्वानं प्रकर्षेण रक्षितवान् ।५।

भावार्थः ।

(हे इन्द्र) जो (असुर हविरूप) अन्नों से मुख में होम किया करते थे (उन) मायावियों को आपने अपनी माया से दूर निकाल दिया। हे मनुष्यों में मन रखने वाले आपने पिप्रुके गढ़ों को तोड़ा (और) युद्ध में दस्युओं को मार कर ऋजिश्वा की अत्यन्त रक्षा की ॥५॥

(१) जो लोग कपट युक्त नीति से धन एकत्र करके अपने ही मुख में होम करते हैं अर्थात् अपना पेट पालन करते हैं और दूसरों को कुछ नहीं देते थे दस्यु और असुर हैं चाहे पृथिवी पर मनुष्य रूप में हों चाहे अन्तरिक्ष में वृत्र रूप में, ऐसे

लोगों की कुटिल नीति को दूसरी कुटिल नीतियों से तोड़ कर इन्द्र उनको सदा पृथिवी और अन्तरिक्ष से दूर निकालते रहे हैं ॥

(२) ऐसे ही दस्यु वा असुरों में एक पिप्रु है जिस के दुर्गों को तोड़ कर

(३) और दस्युओं को मार कर इन्द्र ने अपने भक्त राजा ऋजिश्वा की रक्षा की।

इन्द्रो देवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

त्वंकुत्संशुष्णहत्येष्वाविथा
ऽरन्धयोऽतिथिग्वायशम्बरम्। महा-
न्तंचिदर्बुदंनिक्रमीःपदा सनादेव-
दस्युहत्यायजज्ञिषे ॥६॥

त्वम्	त्वम्	तू ने
१ कुत्सम्	कुत्सम्	कुत्स को
१ { शुष्णऽह त्येषु	शुष्णस्य हनन युक्तेषु [सङ्ग्रामेषु]	शुष्ण को नाश करने वाले (युद्धों में)

आविथ	ररक्षिथ	रक्षा की
अरन्धयः	आयत्तौ कृतवान्	वस में किया
१ { अतिथिग्वाय	अतिथिग्वाय	अतिथिग्व के लिए
१ शम्बरम्	शम्बरम्	शम्बर को
महान्तम्	महान्तम्	महान को
चित्	अपि	भी
१ अर्बुदम्	अर्बुदम्	अर्बुद को
नि	नि+	-
क्रमीः	नि+क्रमीः,नितरा माक्रमितवान्	रौंधा
पदा	पादेन	पाओं से
सनात्	सदा	सदा

एव	एव	ही
दस्यु॒ऽह॒त्याय	दस्युहत्यायै (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः	दस्युओं के मारने के लिये
ज॒ज्ञि॒षे	प्रादुर्बभूविथ	प्रकट हुए हो

संस्कृतार्थः।

(हे इन्द्र) त्वं शुष्णस्य हनन युक्तेषु (सङ्ग्रामेषु) कुत्सं ररक्षिथ, (त्वम्) अतिथिग्वाय शम्बरमायत्तं कृतवान् (त्वम्) महान्तमर्बुदं पादेनाक्रमितवान् (त्वम्) सदैव दस्यूनां हत्यायै प्रादुर्बभूविथ ॥६॥

भावार्थः।

(हे इन्द्र) आपने शुष्णके नाश किए जाने वाले (युद्धों) में कुत्स की रक्षा की थी आपने शम्बर को अतिथिग्व के अधीन कियाथा आपने महान [अर्बुद को भी पाओं से रौंधा था, आप सदासे दस्युओं के नाश के लिए उत्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥

(१) शुष्ण, शम्बर, अर्बुद, ये सब वृत्र या अन्य इन्द्र के शत्रुओं के कल्पित नाम हैं और इसी लिए "आर्य्य शत्रु" अर्थ को बोधन करते हैं ॥

(२) कुत्स ऋषि प्रथम मण्डल के ९४ से ९८ और १०१ से ११५ तक सूक्तों के द्रष्टा हैं, इन्द्र ने "आर्य्य शत्रुओं" का हनन करनेयुद्धे में इनकी रक्षा की थी।

(३) अतिथिग्व दिवोदास का नामान्तर है जो बड़े दानी और देव भक्त आर्य्य राजा थे इनके अनार्य्य शत्रु को इन्द्र ने इनके अधीन किया था।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२॥

त्वेविश्वातविषीसध्र्यग्घिता तव-
राधःसोमपीथायहर्षते। तववज्र-
श्चिकितेबाह्वोर्हितो वृश्चाशत्रोर-
वविश्वानिवृष्ण्या ।७।

त्वे०	त्वयि	तुझ में
विश्वा	सर्वम् (विभक्तेराकारः)	सब
तविषी	बलम्	बल
सध्र्यक्	सम्भूय	इकट्ठा
हिता	निहितम् (विभक्तेराकारः)	रखा हुआ

१ तव	तव +	–
१ राधः	तव+राधः,तवाऽनुग्रहः, अर्थात् दयालुर्भवान्	दयालु आप
सोमऽपीथाय	सोमपानाय	सोम पीनेके लिये
हर्षते	हृष्यति	हर्षित होता है
तव	तव	तेरा
वज्रः	वज्रः	वज्र
चिकिते	ज्ञातम्	जाना गया है
बाह्वोः	बाह्वोः	हाथों में
हितः	स्थापितः	स्थापित (है)
वृश्च	अव+वृश्च,अवच्छिन्दि	काट कर पृथक करो

शत्रोः	शत्रोः	शत्रु के
अव	अव+	–
विश्वानि	सर्वाणि	सब
वृष्ण्या	वीर्य्याणि (शेर्लोपः)	वीर्य्यों को

संस्कृतार्थः।

(हे इन्द्र!) त्वयि सर्वं बलं सम्भूय स्थापितम् (अस्ति) दयालु र्भवान् सोमपानाऽर्थं हृष्यति, तव बाह्वोर्वज्रः स्थापितः(इति)ज्ञातम्-(अस्ति, तेन) शत्रोस्सर्वाणि वीर्य्याण्यवच्छिन्धि ॥ ७ ॥

भावार्थः।

(हे इन्द्र) आप में सारा बल इकट्ठा स्थापित है, कृपालु आप सोम पीने के लिये हर्षित होते हैं आप के हाथों में वज्र स्थापित (है, यह) प्रसिद्ध है (उस से) शत्रु के सम्पूर्ण वीर्य्यों को काट कर पृथक् करो ॥ ७ ॥

तात्पर्य्य यह है कि इन्द्र में सम्पूर्ण बल इकट्ठे हुए२ हैं और वह सोम के रसिक हैं इसलिए सोम अर्पण करने वाले हम पर उन की कृपा दृष्टि अवश्य है, वज्र भी उन के हाथों में सदा

रहता है इसलिये हमारे शत्रु के वीर्य युक्त पराक्रमोंको काट कर अलग किए जाने में क्या सन्देह है ॥

इन्द्रोदेवता जगती छन्दः ।१२।१२।१२।१२।

विजानीह्यार्य्यान्येचदस्यवो बर्हिष्मतेरन्धयाशासदव्रतान् । शाकीभवयजमानस्यचोदिता विश्वेत्तातेसधमादेषुचाकन ॥८॥

वि	वि+	—
जानीहि	वि+जानीहि	खूब पहचानो
आर्य्यान्	आर्य्यान्	आर्य्यों को
ये	ये	जो
च	च	और
दस्यवः	आर्य्य शत्रवः	आर्य्य शत्रु

बर्हिष्मते	बर्हिर्युक्ताय	कुशा बिछाने वाले के लिये
रन्धय	आयत्तीकुरु	वस में करो
शासत्	शासनंकुर्व्वन् (तुम्मावः)	ताड़ना करते हुए
१ अव्रतान्	व्रत रहितान्	व्रत से हीनों को
शाकी	शक्तियुक्तः	प्रबल
भव	भव	हो
यजमानस्य	यजमानस्य	यजमानके
चोदिता	प्रेरकः	प्रेरक
विश्वा	सर्वाणि (शेर्लोपः)	सब को
इत्	एव	ही
ता	तानि	उनको
ते	तव	तेरे ..

[१]सधऽमादेषु	सहमाद्यन्त्येषु स्थानेषु, (अर्थाद्यज्ञेषु) (अधिकरणेघञ्सहस्य-सधादेश)	इकट्ठे होकर आनन्द करनेके स्थान(अर्थात यज्ञों) में
२ चाकन	कामये (कनीकान्तौ, लङर्थेलिट्)	कामना करता हूं

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र !) (त्वम्) आर्य्यान् ये, चाऽऽर्य्यशत्रवः सन्ति तान् विजानीहि, व्रतहीनान् शासयन् बर्हिर्युक्ताय (आर्य्याय) आयत्तीकुरु, यजमानस्य (च) शक्तियुक्तः प्रेरको भव, (अहम्) तानि सर्व्वाण्येव तव (कर्म्माणि) यज्ञेषु कामये ॥ ८ ॥

भावार्थः ।

(हे इन्द्र !) आप आर्य्यों को और जो, आर्य्य शत्रु हैं उनको खूब पहचानो, व्रतहीनों को ताड़ना करते हुए कुशा बिछाने वाले (आर्य्य) के वश में करो (और) यजमान के प्रबल प्रेरक बनो, मैं आप के उन सब ही (कर्म्मों को) यज्ञों में कामना करता हूं ॥ ८ ॥

(१) व्रत हीन जो स्वेच्छाचारी नियम और शास्त्र की मर्य्यादा को न मानने वाले अनार्य्य लोग हैं।

(२) अर्थात् आप के ये सब कर्म मुझे यज्ञ में आनन्द देने वाले हैं ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

अनुव्रतायरन्धयन्नपव्रता नाभू-
भिरिन्द्रःश्नथयन्ननाभुवः। वृद्धस्य
चिद्वर्धतोद्यामिनक्षतः स्तवानो-
वम्रोविजघानसन्दिहः ।९।

अनुऽव्रताय	व्रताऽनुगाय	व्रत के अनकूल चलने वालेके लिये
रन्धयन्	आयत्ती कुर्वन्	वस में करता हुआ
अपऽव्रतान्	व्रत रहितान्	व्रत रहितों को
आऽभभिः	आभिमुख्येन भवन्ति,तैः (स्तोतृभिः)	स्तोताओं से
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
श्नथयन्	घातयन् (श्नथहिंसाया रस्यलत्व छान्दसम्)	नाश कराते हुए

अनाभुवः	स्तुतिहीनान्	स्तुति हीनों को
वृद्धस्य	वृद्धिंगतस्य	बढे हुए की
चित्	अपि	भी
वर्धतः	वर्धमानस्य	बढ़ते हुए की
द्याम्	द्युलोकम्	द्युलोक को
इनक्षतः	प्राप्नुवतः (नक्षगतौ,इकारोपजन श्छान्दसः)	पहुंचने वाले की
स्तवानः	स्तुतिं कुर्वाणः	स्तुति करता हुआ
वम्रः	वम्रः	वम्र ऋषि ने
वि.	वि+	–
जघान	वि+जघान	नाश किया
समऽदिहः	समृद्धीः (दिहउपचये,क्विप्)	सम्पत्तियों को

संस्कृतार्थः ।

इन्द्रो व्रतानुगाय व्रतरहितानाऽऽयत्ती कुर्वन् स्तोतृभिः (च) स्तुतिहीनान्घातयन् (वर्तते), वृद्धिं गतस्याऽपि वर्धमानस्य, द्युलोकं प्राप्नुवतः (च दस्योः) समृद्धीः स्तुतिं कुर्वाणो वम्रो विजघान ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

इन्द्र, व्रत रहितों को व्रत के अनुकूल चलने वालों के वस में करते हुए (और) स्तुति से हीनों को स्तुति करने वालों द्वारा मारते (रहते हैं) स्तुति शील वम्र (ऋषि) ने बढ़े हुए (और) और भी बढ़ते हुए द्युलोक को पहुंचने वाले (दस्यु) की सम्पत्तियों को नाश किया ॥ ९ ॥

वम्र ऋषि की स्तुति से बल को प्राप्त करके इन्द्र ने वम्र (या धूली) रूप दस्यु की जो बहुत बढ़ गया था और अब भी बढ़ रहा था संपत्तियों का नाश किया और उस को द्युलोक में नहीं पहुंचने दिया। इसी लिए ४ मील से ऊपर मेघ नहीं हैं ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

तक्षद्यत्तउशनासहसासहो वि-

रोदसीमज्मनाबाधतेशवः। आत्वा-

वातस्यनृमणोमनोयुजआपूर्यमाण

मवहन्नभिश्रवः ॥१०॥

तक्षत्	निर्मितवान्	रचा
यत्	यत्	जो
ते	तुभ्यम्	तेरे-लिये
उशना	उशना	उशना (ऋषि) ने
सहसा	बलेन	बल से
सहः	बलम्	बल को
वि	वि +	—
रोदसी०	द्यावापृथिव्यौ	द्युलोक (और) पृथिवी को
मज्मना	बलेन (निघं०२।९)	बल से
बाधते	वि+बाधते, विलोडितवान् ([illegible])	कंपा दिया

अवः	बलम्	बल
आ	आ +	–
त्वा	त्वाम्	तुझ को
वातस्य	वायोः	वायु के
नृऽमनः	नरेषुमनो यस्य तत्सम्बुद्धौ	हे मनुष्यों में मन रखने वाले
मनःऽयुजः	मनोमात्रेणयुक्ताः	मन से जोड़े गए
आ	आ+	–
पूर्यमाणम्	आ+पूर्यमाणम्	सब ओरसे पूर्णको
अवहन्	आ+अवहन् आवहन्तु (ग्रीडर्विल्ड)	लावें
अभि	प्रति	की ओर
अवः	(हवीरूपम्)अन्नम्	(हवि रूप) अन्न को

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र!) उशना (ऋषिः) स्तुति-बलेन यद्बलं त्वदर्थंनिर्मितवान्(तद्)बलं द्यावापृथिव्योसहसाविलोडितवान्, हेनृमनः! सर्वत आपूर्य्यमाणं त्वां वातस्य मनोयुजः(अश्वा हवीरूपम्)अन्नं प्रत्यावहन्तु॥१०॥

भाषार्थः।

(हे इन्द्र) उशना (ऋषि) ने स्तुति के बल से जो बल आपके लिये रचा था,उस बलने साहस से द्युलोक (और)पृथिवीको कंपादिया था,हेमनुष्यों में मन रखने वाले! सब ओर से पूर्ण आपको वायुके मन से जुड़ने वाले (घोडे हवि रूप) अन्नके प्रति लावें॥१०

जो काम उशना ऋषि ने पूर्व काल में किया था वह अब भी सम्भव है यदि हम भी स्तुति किया करें तो हमारी रक्षामें असमर्थ और निर्बल इन्द्र को फिर सबल कर सकते हैं॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

सन्दिष्टयदुशनेकाव्येसचाँ इन्द्रो

वङ्कूवङ्कुतराधितिष्ठति। उग्रोययिं

निरपःस्रोतसासृजद् विशुष्णस्य

दृंहिताऐरयत्पुरः ॥११॥

मन्दिष्ट	हृष्टवान्	हर्षित हुआ
यत्	यदा	जब
उशने	उशनसि	उशना पर
काव्ये	कवि पुत्रे	कवि के पुत्र पर
सचा	सह(भूत्वा)	साथ (होकर)
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
वङ्कू	अश्वौ (वकिकौटिल्ये)	घोड़ों को
वङ्कुऽतरा	अतिशयेनकुटिल गमनौ (विमकेराकार) अधि +	बहुत टेढ़े चलने वालों को

तिष्ठति	अधि+तिष्ठति, आरूढवान् (लडर्थेलट्)	चढ़ा
उग्रः	उग्रः	भयानक ने
यथिम्	मेघात् (पञ्चम्यर्थेद्वितीया)	मेघ से
निः	निः +	—
अपः	जलानि	जलों को
स्रोतसा	प्रवाहरूपेण	प्रवाह रूप से
असृजत्	निः+असृजत् मोचितवान्	छुड़ाया
वि	वि+	—
१ शुष्णस्य	शुष्णस्य	शुष्ण के
दृंहिताः	दृढानि	दृढ़
ऐरयत्	वि+ऐरयत् भेदितवान्	तोड़ दिया
पुरः	दुर्गाणि	दुर्गों को

संस्कृतार्थः ।

यदेन्द्रः सह (भूत्वा)कविपुत्रे उशनसि हृष्टवान् (तदा) कुटिलगमनावश्वावारूढवान् (आरुह्य च सः) उग्रो मेघात् प्रवाह रूपेण जलानि मोचितवान्, शुष्णस्य दृढानि दुर्गाणि (च) भेदितवान् ॥११॥

भापार्थः ।

जब इन्द्र साथ (हो कर) कविके पुत्र उशना पर हर्षित हुए (तब) तिर्छी गति वाले घोड़ों पर चढे (फिर) उस भयानक(इन्द्र)ने बादल में से प्रवाह रूप से जलों को छुडाया और शुष्ण के दुर्गों को तोड़ डाला ॥

जब इन्द्र उशना के अर्पण किए हुए सोम से हर्षित हुए तब यह घोर, शुष्ण को जो अनावृष्टि रूप असुर पृथिवी को सुका रहा था मारने के लिए इतरा कर चलने वाले तेज घोड़ों के रथ पर सवार हुए और बादलों में से प्रवाह रूप से जल को छुड़ा कर पृथिवी को सिञ्चन किया ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

आस्मारथंवृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्यप्रभृतायेषुमन्दसे । इन्द्र-

यथासुतसोमेषु चाकनो ऽनर्वाणंश्लो

कमारोहसेदिवि ॥१२॥

आ	आ+	–
स्म	(पूरणः)	–
रथम्	रथम्	रथ पर
वृषऽपानेषु	वृषस्य सेचन स-मर्थस्य(सोमस्य) पानेषु	वीर्ययुक्त(सोम) पानों में
तिष्ठसि	आ+तिष्ठसि, आरोहसि	चढ़ते हो
शार्य्यातस्य	शार्य्यातस्य (राजर्षेः)	शार्य्यात राजर्षि के
प्रऽभृताः	सम्पादिताः	सिद्ध हुए२
येषु	येषु	जिन में

मन्दसे	हृष्यसि	हर्षित होते हो
इन्द्र	हे इन्द्र!	हे इन्द्र
यथा	यथा	जैसे
सुतऽसोमेषु	सुता निष्पीडिता सोमा येषु(यज्ञेषु)	सोम निचोड़े जाने वाले (यज्ञों) में
चाकनः	कामयसे (कनीकान्तौ२ टिसिपि च्छान्दस.श्लुः)	तू कामनाकरताहै
अनर्वाणम्	अव्याहतम् (सा०वो०)	न रुकने वाले को
श्लोकम्	यशः	यश को
आ	आ+	—
रोहसे	आ + रोहसे प्राप्नोषि (सा०भा०)	प्राप्त करते हो
दिवि	द्युलोके	द्युलोक में

संस्कृतार्थः।

हे इन्द्र! (त्वम्) सेचन समर्थस्य (सोमस्य) पानेषु (प्राप्तुम्) रथमारोहसि, येषु (सोमेषु) हृष्यसि (ते) शार्य्यातस्य (राजर्षेः सम्बन्धिनः) सम्पादिताः (सन्ति), यथा (त्वम्) अभिषुत सोमेषु (यज्ञेषु) कामयसे (तथा) द्युलोकेऽव्याहतं यशः प्राप्नोषि ॥ १२ ॥

भावार्थः।

हे इन्द्र आप वीर्य युक्त (सोम) के पीने (के लिये जाने को) रथ पर चढ़ते हैं, जिन (सोमों में) आप मोद करते हैं (वे राजर्षि) शार्य्यातने सम्पादन किए हैं, ज्यूं २ आप सोम निचोडे जाने वाले (यज्ञों) की कामना करते हैं, त्यूं २ आप न रुकने वाले यश को द्युलोक में प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

जब राजा शार्य्यात ने सोम से इन्द्र को मदयुक्त किया तब उन्हों ने बड़े २ वीर्य्य युक्त कर्म किए, जिन से उनका यश द्युलोक में चढ़ा, ऐसे ही अब भी जब कोई इन्द्र को सोम अर्पण करता है तब वे रथ पर चढ़ कर दस्युवधादि वीरताके अनेक कर्म करते हैं।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः। १२।१२।१२।१२

अदर्दा॒ अभीम॑हते॒ वच॑स्यवे॒ कक्षी॒वते॑ वृच॒यामि॑न्द्र सुन्व॒ते। मेना॑भवो

वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३॥

अददाः	दत्तवान्	दी
अर्भाम्	अल्पाम् (युवती मित्यर्थः)	जवान को
महते	वृद्धाय	वृद्ध के ताईं
वचस्यवे	स्तुतिकुशलाय	स्तुति में चतुर के ताईं
कक्षीवते	कक्षीवते	कक्षीवानऋषि के ताईं
वृचयाम्	वृचयाख्याम्	वृचया नाम वाली को
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
सुन्वते	सोमनिष्पीडनं कुर्वते	सोम निचोड़ने वाले के ताईं
मेना	वाणी (निघं०१।११)	वाणी

अभवः	अभवः	हुए
वृषणश्वस्य	वृषणश्वस्य (राज्ञः)	वृषणश्व(राजा) की
सुऽक्रतो०	हे सुकर्म्मन्!	हे सुन्दर कर्म्मों से युक्त
विश्वा	सर्वाणि	सम्पूर्ण
इत्	एव	ही
ता	तानि	वह
ते	तव	तेरे
सवनेषु	सोमोत्सवेषु	सोमके उत्सवोंमें
प्रऽवाच्या	प्रकर्षेण वक्तव्यानि	खूब कथन करने योग्य हैं

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! (त्वम्) सोमनिष्पीडनं कुर्वते स्तुति कुशलाय वृद्धाय कक्षीवते वृचयाख्यां युवतिं दत्तवान् हे सुकर्म्मन् ! (त्वम्) वृषणश्वस्य (राज्ञः) वाणी

रूपोऽभवः, तानिसर्वाण्येव तव (कर्म्माणि) सोमोत्स-
वेषु प्रकर्षेण वक्तव्यानि ॥ १३ ॥

भाषार्थः।

हे इन्द्र (आपने) सोम निचोड़ने वाले स्तुति में चतुर वृद्धे कक्षीवान के ताईं वृचया नाम वाली युवता को दिया, हे सुन्दर कर्म्मों से युक्त, (आप) वृषणश्व (राजा के) वाणी रूप बने, ये सम्पूर्ण ही आपके (कर्म्म) सोम के उत्सवों में खूब कथन करने योग्य हैं ॥ १३ ॥

कक्षीवान ऋषि के वर्णनके लिए देखो पृ० ३६१, सोम निष्पीडन और स्तुति के पुण्य से इनको वृद्धावस्थामें वृचयानामी युवति स्त्री ने वरा और ये फिर युवा हुए।

वृषणश्व राजा सदा इन्द्र का नाम जपता था, इसलिए इन्द्र उस की वाणी रूप बने, नाम जपने का उपदेश ऋ०७।२२।५ में भी है "सद ते नाम स्वयशो विवक्मि"

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११॥

इन्द्रो॑ अश्रायि सु॒ध्यो॑ निरे॒के प॒ज्रेषु॒-

स्तोमो॒ दुर्यो॒ न यूपः॑ । अ॒श्व॒युर्ग॒व्यू र॑-

थयुर्वसूयु रिन्द्रइद्रायःक्षयतिप्रय-
न्ता ॥ १४ ॥

इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
अश्रायि	आश्रयति (लडर्थेलुङ्)	आश्रय देता है
सुऽध्यः	शोभन कर्म्मणः	सुकर्म्म करने वालों को
निरेके	नितरांरिक्तेजाते	भीड़ में
पज्रेषु	अङ्गिरस्सु (पज्रायामङ्गिरसइति शाट्यायनः)	अङ्गिरा वंशियों में
स्तोमः	स्तोमरूपः	स्तोत्ररूप
दुर्य्यः	द्वारिभवः	द्वारमें होने वाला
न	इव	न्याईं
यूपः	स्तम्भः	खंभा

अश्वऽयुः	अश्वानिच्छन् (क्यचउप्रत्ययः)	घोड़ों की कामना करता हुआ
गव्युः	गाइच्छन्	गौओं की इच्छा करता हुआ
रथऽयुः	रथानिच्छन्	रथों की इच्छा करता हुआ
वसुऽयुः	धनानीच्छन्	धनों की इच्छा करता हुआ
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
इत्	एव	ही
रायः	सम्पत्तेः	सम्पत्ति का
क्षयति	शास्ति (आ०को०)	राज्य करता है
प्रऽयन्ता	प्रदाता;	देने वाला

संस्कृतार्थः।

अङ्गिरस्सु स्तोमरूपो द्वारिभवःस्तम्भइव (स्थिरः) इन्द्रो नितरां रिक्तेजाने सुकर्मण आश्रयति, अश्वान् गा रथान् धनानि (च)कामयमान इन्द्र एव सम्पत्तेः शासिता प्रदाता (च) अस्ति ॥१४॥

भाषार्थः ।

अङ्गिरा वंशियों में स्तोत्र रूप (और) द्वार में होने वाले खंभे की न्याई (निश्चल) इन्द्र सुकर्म करने वाले को भीड़ में आश्रय देते हैं, घोड़े, गौ, रथ (और) धन की कामना करने वाले इन्द्र ही सम्पत्ति के स्वामी (और) देने वाले हैं ॥ १४ ॥

इन्द्र जो अङ्गिरा वंशियों में स्तोत्र रूप हैं, अर्थात् अङ्गिरा जिन की सदा स्तुति करते हैं पुण्यात्मा को भीड़में सदा शरण देते हैं और जैसे मनुष्य घरके द्वार के खंभेका निश्शङ्क होकर सहारा ले सकता है वैसे निश्शंक होकर पुण्यात्मा इन्द्रकी शरण ले सकता है ।

भक्त के लिए इन्द्र घोड़े, गौ, रथ और धन की कामना करते हैं, वही इन के देने वाले और वही इनके स्वामी हैं ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।१११११११११

इदंनमोवृषभायस्वराजे सत्यशुष्मायतवसेऽवाचि । अस्मिन्निन्द्र वृजनेसर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तवशर्मन्त्स्याम ॥१५॥

इदम्	इदम्	यह
नमः	नमः	नमस्कार
वृषभाय	श्रेष्ठाय	श्रेष्ठ के ताईं
स्वऽराजे	स्वकीयेन(तेजसा) दीप्यमानाय	अपने (तेजसे) प्रकाशमानकेताईं
सत्यऽशुष्माय	सत्यबलाय	सच्चे बली के ताईं
तवसे	प्रवृद्धाय	बढेहुए के ताईं,
अवाचि	कथितम्	कही गई है
अस्मिन्	अस्मिन्	इस से
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
वृजने	सङ्ग्रामे	युद्ध में

सर्वऽवीराः	सर्व वीर युक्ताः	सम्पूर्ण वीरों से युक्त
स्मत्	सुष्ठु	भली प्रकार
सूरिऽभिः	स्तोतृभिः (सह) (निघं० ३।१६)	स्तोताओं के (साथ)
तव	तव	तेरी
शर्मन्	शरणे	शरण में
स्याम	स्याम	हम होवें

संस्कृतार्थः।

श्रेष्ठाय, निज-(तेजसा) दीप्यमानाय, सत्यबलाय प्रवृद्धाय (च भवते) इदं नमोऽवाचि, हे इन्द्र! (वयम्) अस्मिन् सङ्ग्रामे सर्ववीरयुक्ताः,स्तोतृभिः (सह) तव शरणे सुष्ठु स्याम ॥ १५ ॥

भावार्थः।

श्रेष्ठ (और) अपने (तेजसे) प्रकाशमान सच्चे बली (और)बढे हुए (आपके) ताईं यह नमस्कार उच्चारण की गई है। हे इन्द्र हम इस युद्ध में सम्पूर्ण वीरोंसे युक्त(और) स्तोताओं के (साथ) भली प्रकार आप की शरण में होवें ॥ १५ ॥

"इस युद्ध में" जो उपस्थित है। युद्ध में सच्चे बली और बढ़े हुए इन्द्र की शरण लेने से भय नष्ट होजाता है और विजय प्राप्त होती है।

इत्येकपञ्चाशत्सूक्तम्

ऋ०मं०१ सू० ५२।

विनियोग—यह सूक्त गवामयन के विषुवत् नामी मध्यम दिन में मरुतों के शस्त्र में पढ़ा जाता है। (आ०श्रौ० सू०उ० २।१।१)

इस सूक्त में इन्द्र के पराक्रम और वीर कर्मों की स्तुति है जिन में वृत्र वधादि कई कर्म ऐसे हैं जिन के लिये मरुद्‌गण ने स्तुति द्वारा उत्साह बढ़ा कर उनकी सहायता की। जब इन्द्र भी अपने सहायक मित्रों के वचन से प्रोत्साहित होकर एक से बढ़कर दूसरा वीर कर्म करते हैं तो निर्बल मनुष्य को किसी बड़े कामके करनेमें मित्रोंके अनुमोदन की कितनी भारी आवश्यकता है॥

इन्द्रोदेवता सव्यआङ्गिरस ऋषिर्जगतीछन्दः।

१२।१२।१२।१२॥

त्यंसुमेषंमह्यास्वर्विदं शतंयस्य सुभ्वःसाकमीरते। अत्यंनवाजंहव-नस्यदंरथ मेन्द्रंववृत्यामवसेसुवृक्ति-भिः॥१॥

त्यम्	तम्	उसको
सु	सु+	–
मेषम्	सेकारम् (नरम्)	नर को
महय	सु+महय, सुष्ठु पूजय (महपूजायाम्)	खूब पूजो
स्वःऽविदम्	ज्योतिषो लम्भकम् (अन्तर्भावितण्यर्थः)	ज्योति के प्राप्त कराने वाले को
शतम्	शतम्	सैंकड़ों
यस्य	यस्य	जिसके
सुऽभ्वः	सुष्ठुभवन्ति ते, सौम्याः (उवङःप्राप्तौयणादेश श्छान्दसः)	भद्र
साकम्	सह	साथ २
ईरते	गच्छन्ति	चलते हैं

अत्यम्	अश्वम् (निघं० १।१४)	घोड़ा
न	इव	की न्याईं
वाजम्	बल रूपम्	बल रूप
हवनऽ-स्यदम्	हवने स्यदो वेगो यस्य,तम्	बुलाने पर शी आने वाले .
रथम्	रथिनम् (आ०को०)	रथी को
आ	आ +	—
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्रको
ववृत्याम्	आ + ववृत्याम् आवर्तयामि	फेरता हूं
अवसे	रक्षाऽर्थम्	रक्षा के लिये
सुवृक्तिऽभिः	सुष्ठुनमनैः (आवर्जनंनमनम्)	बहुत नमस्कारोंसे

संस्कृतार्थः।

तं ज्योतिपोलम्भकं नरं सुष्ठुपूजय, यस्य शतं सौम्याः (देवाः) साधंगच्छन्ति (अहम्) अश्वमिव

बलवन्तं . रथिनमिन्द्रं सुष्ठुनमनैः रक्षार्थम् (स्वाभिमुखम्) आवर्तयामि ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

उस ज्योति के प्राप्त कराने वाले नर (वीर) को खूब पूजो, जिस के साथ सैंकड़ों भद्र (वीर) चलते हैं, मैं घोड़े जैसे बलवान् - बुलाने पर शीघ्र आने वाले रथी इन्द्र को बहुत नमस्कारों से (अपनी ओर) फेरता हूं ॥ १ ॥

(१) भद्र वीरों से मरुद्गण का आशय है।

इन्द्रोदेवता, जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

सपर्वतोनधरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषुवावृधे। इन्द्रोयद्वृत्रमवधीन्नदीवृतं मुब्जन्नर्णांसिजर्हृषाणोअन्धसा।२।

सः	सः	वह
पर्वतः	पर्वतः	पर्वत

न	इव	की न्याईं
धरुणेषु	जलेषु (निघं०१।१२)	जलों में
अच्युतः	चलनराहित्येन स्थितः	निश्चल ठहरा हुआ
सहस्रम् ऽऊतिः	सहस्रमूतयोयस्य सः(लुगमायश्छान्दसः)	सहस्रों रक्षाओं से युक्त
तविषीषु	बलेषु	बलों में
ववृधे	ववृधे	बढ़ा
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
यत्	यदा	जब
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
अवधीत्	हतवान्	मारा
नदीऽवृतम्	उदकानामावरकम् (नदनान्नद्यआपः)	जलों के रोकने वाले को

उब्जन्	निष्पीडयन्	निचोड़ता हुआ
अर्णांसि	जलानि (निघं०१।१२)	जलों को
जर्हृषाणः	अतिशयेनहृष्यन्	अत्यन्त हर्षित होता हुआ
अन्धसा	सोमेन	सोम से

संस्कृतार्थः ।

जलेषु पर्वत इव निश्चलः सहस्ररक्षाभिर्युक्तः स इन्द्रो बलेषु ववृधे, यदा सोमेनाऽत्यन्तं हृष्यन् (मेघेभ्यः) जलानि निष्पीडयन्नुदकानामावरकं वृत्रं हतवान् ॥२॥

भावार्थः

जलों में पर्वत की न्याईं निश्चल ठैरे हुए सहस्रों रक्षाओं से युक्त वह इन्द्र बलों में बढे। जब सोम से अत्यन्त हर्षित हुए २ (और बादलों से) जलों को निचोड़ते हुए उन्हों ने जलों के रोकने वाले वृत्र को मारा॥ २ ॥

शत्रु से युद्ध प्रकट करने से पहले बलों में बढना, और सहस्रों रक्षाओं और अत्यन्त हर्ष से युक्त होना आवश्यक है। नहीं तो निस्सन्देह नाश होता है ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

सहिद्वरोद्वरिषुवव्रऊधनि चन्द्र-बुध्नोमदवृद्धोमनीषिभिः। इन्द्रंतम-ह्वस्वपस्ययाधिया मंहिष्ठरातिंस-हिपप्रिरन्धसः ।३।

सः	सः	वह
हि	खलु.	सचमुच
१ द्वरः	आवरकः (हृ आवरणे, अच्प्रत्ययः)	रोकने वाला
१ द्वरिषु	आवरकेषु कर्तरि इ प्रत्ययः)	रोकने वालों में
२ वव्रः	प्रच्छन्नः (वृञ्आवरणे, कर्मणि क-प्रत्ययो द्विर्भावश्छान्दस)	छिपा हुआ
२ ऊधनि	स्तने	थन में

[३] चन्द्रऽबुध्न:	आल्हादक मूलः	आनन्द देने वालों का मूल
मदऽवृद्ध:	मदाःसोमास्तै र्वर्धितः	सोमरसों से बढ़ाया हुआ
मनीषिऽभि:	मेधाविभिः	बुद्धिमानों से
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
तम्	तम्	उसको
ह्वे	आह्वयामि	मैं बुलाता हूं
[४] सुऽअपस्यया	शोभनकर्म्मेच्छा युक्तया	सुकर्मकी इच्छा वाली से
धिया	बुद्ध्या	बुद्धि से
मंहिष्ठऽरातिम्	मंहिष्ठाप्रवृद्धा रातिर्दानंयस्य, तम्	बढ़े हुए दान वाले को
सः	सः	वह
हि	यतः	क्योंकि

पप्रिः	पूरयिता	पूर्ण करने वाला
अन्धसः	अन्नस्य (निघं०२।७)	अन्न के

सस्कृतार्थः।

सः खलु आवरकेष्वावरकः (आकाश-)स्तने प्रच्छन्नः, आल्हादकमूलः, मेधाविभिः सोमैर्वर्धितः (चाऽस्ति) (अहम्) प्रवृद्धदानं तमिन्द्रं शोभनकर्मेच्छायुक्तया बुद्धचा आह्वयामि यतः सोऽन्नस्य पूरयिता (अस्ति) ॥ ३ ॥

भावार्थः।

सचमुच वह रोकने वालों में रोकने वाला, (आकाश के) थन में छिपा हुआ, आनन्द देनेवालों का मूल (और)बुद्धिमानों से सोम रसों द्वारा बढ़ाया गया (है) मैं उस बढ़े हुए दान वाले इन्द्र को सुकर्म की इच्छा करने वाली बुद्धि से बुलाता हूं, क्योंकि वह अन्न के पूर्ण करने वाले (हैं) ॥ ३ ॥

(१) "रोकने वालों में रोकने वाला" अर्थात् जो वृष्टि को रोकने वाले वृत्रादि असुर हैं इन्द्र उन को इस रोकने के कर्म से रोकने वाले हैं।

(२) आकाश का थन बादल हैं। इन्द्र उन बादलों में विद्युत रूप से छिपे हुए हैं।

(३) इन्द्र ही सच्चे आनन्द के देने वाले पदार्थों के मूल हैं। जो आनंद इन्द्र से भिन्न है वह दुःख का मूल है।

(४) सुकर्म की इच्छा वाली बुद्धि से ही उस बड़े दानी को बुलाना चाहिए। बुरे कर्म में लगाया हुआ उस का दान भी कल्याण को नहीं करता।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

आयंपृणन्तिदिविसद्मबर्हिषः स-

मद्रंनसुभ्व१:स्वाअभिष्टयः। तंवृ-

त्रहत्येअनुतस्थुरूतयः शुष्माइन्द्रम-

वाताअह्रुतप्सवः ॥४॥

आ	आ+	–
यम्	यम्	जिस को
पृणन्ति,	आ+पृणन्ति, सर्वतःपूरयन्ति	सब ओरसे भरतेहैं
दिवि	द्युलोके	द्युलोक में

सद्मऽब-र्हिषः	जलमेवबर्हिर्येषां ते (सद्मेत्युदक नाम निघ०१।१२)	जल रूपी कुशा वाले
समुद्रम्	समुद्रम्	समुद्र को
न	इव	की न्याई
सुऽभ्वः	सौम्याः	भद्र
स्वाः	स्वकीयाः	अपने
अभिष्टयः	सहायकाः (भा०को०)	सहायक
तत्	तम्	उसको
वृत्रऽहत्ये	वृत्रहनने (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः)	वृत्र के मारने में
अनु	अनु +	–
तस्थुः	अनु + तस्थुः,	पीछे ठहरे
ऊतयः	रक्षितारः	रक्षा करने वाले

शुष्माः	(शत्रूणाम्)शोष-यितारः	(शत्रुओं के) सुकाने वाले
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
अवाताः	चलन रहिताः (वातिर्गतिकर्मा निघं०२।१४)	न डिगने वाले
अह्रुतऽप्सवः	अह्रुतोऽकुटिलः प्सूरूपं येषां ते, ऋजुरूपाः	सीधे रूप वाले

संस्कृतार्थः ।

यं द्युलोक उदकबर्हिषः सोम्याः स्वकीयाः सहायकाः समुद्रमिव सर्वतः पूरयन्ति, तमिन्द्रं वृत्रहनने (शत्रूणाम्)शोषयितारश्चलन रहिता ऋजुरूपा रक्षितारः (मरुतः)अनुतस्थुः ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

जिस को द्युलोक में जल रूपी कुशा वाले भद्र अपने सहायक समुद्र की न्याईं सब ओर से भरते हैं, वृत्र को मारते समय (शत्रुओं के) सुकाने वाले न डिगने वाले, सीधे रूप वाले रक्षक (मरुत) उस इन्द्र के पीछे ठैरे ॥ ४ ॥

जैसे नदियां समुद्र को सब ओर से भरती हैं। इसी प्रकार इन्द्र के सहायक और भक्त मरुद्गण द्युलोक में जल रूपी कुशा बिछा कर इन्द्र को सोमरस से पूर्ण करते हैं। इन्हीं लोगों ने वृत्र को मारते समय इन्द्र के पीछे ठेर कर "प्रहर भगवो जहि वीरयस्व" इत्यादि वचनों से उन का उत्साह बढ़ाया था॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

अभिस्वर्वृष्टिंमदे अस्ययुध्यतो रघ्वीरिवप्रवणेसस्रुरूतयः। इन्द्रोयद्वज्रीधृषमाणोअन्धसा भिनद्बलस्य परिधीँरिवत्रितः ॥५॥

अभि	प्रति	की ओर,
स्वऽर्वृष्टिम्	स्वा अधीना वृष्टिं यस्य तम्(वृत्रम्)	वृष्टि को वश में करने वालेको
मदे	मदे (सति)	मद (होने पर)
अस्य	अस्य	इस के

वलस्य	वलस्य	वल के
परिधीन् ऽइव	परिधीनिव	जैसे घेरों को
त्रितः	त्रितः	त्रित ने

संस्कृतार्थः

(सोमस्य)मदे वृष्टिप्रतिबन्धकं प्रति युध्यतोऽस्य सहायकाः (मरुतः) निम्नदेशे वेगवत्यः (नद्यः) इव [इन्द्रम्]प्रतिजग्मुः,यदा वज्रयुक्त इन्द्रः(पीतेन)सोमेन प्रगल्भः सन् त्रित[रूपेण]वलस्य परिधीनिव (सम्पादितान् दुर्गान्) अभिनत् ॥५॥

भाषार्थः।

(सोम के) मद में वृष्टि रोकने वाले के साथ युद्ध करते हुए इसके सहायक (मरुत)(इन्द्र को) ऐसे प्राप्त हुए जैसे वेगवाली नदियां नीचे स्थान में (प्राप्त होती हैं) जब वज्रधारी इन्द्र ने सोम (पान करने से) वेधड़क होकर त्रित (रूप से) घेरों की न्याईं (बनाए हुए), वल के (गढ़ों) को तोड़ डाला ॥ ५ ॥

त्रित, द्वित और एकत ये तीनों पार्थिव अग्नि के पूर्व रूप हैं जो मनुष्य सृष्टि से पहले हो चुके हैं। इन में से त्रित विद्युत है जो इन्द्र का भी एक रूप है विद्युत रूप से ही इन्द्र 'बल' अर्थात् वृत्र के दुर्गों को तोड़ कर वर्षा करते हैं।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।।

परीं घृणाचरतितित्विषेशवो ऽपो
वृत्वीरजसोबुध्नमाशयत्। वृत्रस्यय
त्प्रवणेदुर्गृभिश्वनो निजघन्थहन्वो-
रिन्द्रतन्यतुम् ।६।

परि	परितः	चारों ओर से
ईम्	(पूरणः)	—
घृणा	तेजः (घृणुदीप्तौ)	तेज
चरति	व्याप्नोत् (लड्थेलट्)	व्याप्त हुआ
तित्विषे	दीप्तवान्	चमका

शव:	बलम्	बल
अप:	अप:+	—
वृत्वी	अप:+वृत्वी जलानामावरक:	जलों के रोकने वाला
रजस:	अन्तरिक्षस्य	अन्तरिक्ष के
बुध्नम्	मूलम्	पेंदे में
आ	आ+	—
अशयत्	आ + अशयत् (शीङ्स्वप्ने)	सोया
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
यत्	यदा	जब
वरी	निम्न प्रदेशे	नीचे के स्थान में
दुःऽगृभिप्रवन:	यस्य व्यापनं दु:खेन गृहीतुं शक्यते स: (ग्रहउपादाने,अशूङ् व्याप्तौ)	जिसके फैलने को रोकना कठिन है

नि ऽजघन्थ	प्रहृतवान्	मारा
हन्वोः	मुख पार्श्वयोः	दोनों जबड़ों के
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
तन्यतुम्	वज्रम् (आ०को०)	वज्र को

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (त्वाम्) तेजः परितोऽव्याप्नोत्, (तव) बलं (च) दीप्तवान्, जलानामावरकः (च) अन्तरिक्षस्य मूलप्रदेशे शयितवान् यदा (त्वम्) दुर्मह व्यापनस्य वृत्रस्य हन्वोः प्रवणदेशे वज्रप्रहृतवान् ।६

भावार्थः ।

हे इन्द्र (आप को) तेज सब ओर से व्याप्त हुआ, आप का बल चमका (और) जलों के रोकने वाला अन्तरिक्ष के पेंदे में सोया, जब आपने न रुकने वाले विस्तार युक्त वृत्र के जबड़ों के नीचे के स्थान में वज्र को मारा ॥ ६ ॥

(१) अन्तरिक्ष का पेंदा अर्थात् पृथिवी, जिस पर वृष्टि के रोकने वाला वृत्र धूलि के कण रूप से गिरा।

(२) जबड़े के नीचे का स्थान ग्रीवा (गर्दन) है

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

ह्रदंनहित्वान्यृषन्त्यूर्म्मयो ब्रह्मा-
णीन्द्रतवयानिवर्धना। त्वष्टाचित्ते
युज्यंवावृधेशव स्ततक्षवज्रमभिभू-
त्योजसम् ।७।

ह्रदम्	जलाशयम्	ताल को
न	इव	जैसे
हि	खलु	सचमुच
त्वा	त्वाम्	तुझ को
निऽऋषन्ति	प्राप्नुवन्ति	प्राप्त होते हैं
ऊर्म्मयः	जलप्रवाहाः (सा॰भा॰)	जल के प्रवाह
ब्रह्माणि	स्तोत्राणि	स्तुतियें

इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
तव	तव	तेरे
यानि	यानि	जो
वर्धना	वर्धयितॄणि (करणेल्युट्, शेर्लोपः)	बढ़ाने वाले
त्वष्टा	त्वष्टा	त्वष्टा ने
चित्	अपि	भी
ते	तव	तेरे
२ युज्यम्	स्वीयम्	निजके
ववर्ध	वर्धितवान् (अन्तर्भावितण्यर्थः)	बढ़ाया
शवः	बलम्	बल को
ततक्ष	तक्षितवान्	घड़ा
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को

अभिभूति ऽओजसम्	अभिभूयते परा- जीयते येन बलेन तम्	पराजय करनेवाले बलसे युक्त को

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! तववर्धयितॄणि यानि स्तोत्राणि(सन्ति, तानि) जलप्रवाहा ह्रदमिव त्वां खलु प्राप्नुवन्ति, त्वष्टाऽपि तव स्वीयं बलं वर्धितवान् अपराजितबलम् तव वज्रम् (च) तक्षितवान् ॥ ७ ॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र आपके बढ़ाने वाले जो स्तोत्र हैं वे सचमुच आपको (ऐसे) प्राप्त होते हैं जैसे ताल को जल के प्रवाह,त्वष्टा ने भी आपके निजके बलको बढ़ाया (और)पराजय करने वाले बलसे युक्त(आपके) वज्र को घड़ा ॥ ७ ॥

(१) जब वृष्टि होती है, तो ग्राम के समीप छोटी छोटी नालियां बह कर तलावों में पहुंचती हैं, और वह ताल बढ़ता आता है। इसी प्रकार हमारी स्तुतियों से इन्द्र बढ़ते हैं।

(२) बल इन्द्र में स्वयं विद्यमान है परन्तु त्वष्टा ने जो सृष्टि कर्त्ता की कारीगरी के अभिमानी देवता हैं वज्र को बना कर इन्द्र का बल और भी अधिक किया।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

जघन्वाँउ॒ हरि॑भिः सम्भृतक्रत

विन्द्र॑वृ॒त्रं मनु॑षे गातु॒यन्नपः। अयच्छ

था बा॒ह्वोर्वज्र॑मायस मधारयो दि॒व्या-

सूर्य॑ दृ॒शे ।८।

जघन्वान्	हतवान् (हन्लिंट क्वसु)	मारा
उम्०	(पूरण)	–
हरिऽभिः	अश्वै	घोडों से
सम्भृतऽक्रतो०	हे सम्पादित बल	हे बल को सपादन करने वाले
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को

मनुषे	मनुष्याय (व्यत्ययश्छान्दसः)	मनुष्य के लिये
गातुऽयन्	प्रापयन्	प्राप्त कराता हुआ
अपः	जलानि	जलों को
अयच्छथाः	धृतवान् (व्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदम्)	धारण किया
बाह्वोः	भुजयोः	भुजाओं में
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को
आयसम्	अयोमयम्	लोहे के(बने हुए) को
अधारयः	स्थापितवान्	धारण किया
दिवि	द्युलोके	आकाश में
आ	(समुच्चयाऽर्थः)	और
२ सूर्यम्	सूर्यम्	सूर्य्य को
२ दृशे	द्रष्टुम्	दर्शन के लिए

संस्कृतार्थ ।

हे अश्वैः सम्पादित बल ! इन्द्र ! (यदा) मनुष्याय जलानि प्रापयन् (त्वम्) वृत्रं हतवान् (तदा) *अयोमयं वज्रं बाह्वोर्धृतवान् (लोकानाम्) दर्शनाय* द्युलोके सूर्य्यम् (च) स्थापितवान् ॥ ८ ॥

भाषार्थ ।

हे घोड़ो द्वारा बलको सम्पादन करने वाले इन्द्र ! (जब) मनुष्य के लिए जलो को प्राप्त कराते हुए आपने वृत्र को मारा तब आपने लोहे के वज्र को भुजाओं में लिया (और लोकों के) दर्शन के लिए आकाश में सूर्य्य को स्थापन किया ॥ ८ ॥

(१) शत्रु के साथ युद्ध करने में घोडे भी बल की सामग्री में एक प्रधान अंग हैं ।

(२) सूर्य्य का दर्शन इस पृथिवी पर प्रथमतः वृत्र को मारने से ही हुआ है [देखो पृ० ७५६]

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्य१

मकृणवतभियसारोहणंदिवः। यन्मा

नुषप्रधनाइन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचोम-
रुतोऽमदन्ननु॥९॥

बृहत्	महत्	महान को
स्वऽचन्द्रम्	स्वतआह्लादकम्	स्वयं आनन्द देने वाले को
अमऽवत्	बलयुक्तम् (आ॰को॰)	बल युक्त को
यत्	यत्	जो
उक्थ्यम्	स्तुतियोग्यम्	स्तुति योग्य को
अकृण्वत	कृतवन्तः	किया
भियसा	भयेन (सुगागमश्छान्दस.)	भय से
रोहणम्	आरोहणहेतुभूतम्	प्राप्त कराने वालेको
दिवः	स्वर्गस्य	स्वर्ग के
यत्	यदा	जब

मानुषऽ-प्रधनाः	मनुष्य हित सङ्ग्रामाः	मनुष्यों के लिए युद्ध करने वाले
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
ऊतयः	सहायकाः	सहायक
स्वः	द्युलोके (अव्ययम्)	द्युलोक में
नृऽसाचः	मनुष्यान्सेवमानाः (षच सेवने)	मनुष्यों पर उपकार करने वाले
मरुतः	मरुतः	मरुतों ने
अमदन्	अनु + अमदन् अनुमोदितवन्तः	अनुमोदन किया
अनु	अनु +	

संस्कृतार्थः ।

(मनुष्याः) स्वतआह्लादकं बलयुक्तं स्तुतियोग्यं स्वर्गस्याऽऽरोहण भूत यन्महत् (स्तोत्रमस्ति तद्-वृत्र-) भयेन कृतवन्तः, यदा मनुष्यहिताय सङ्ग्रामे

प्रवृत्ता मनुष्यान्सेवमाना सहायका मरुतो द्युलोके इन्द्रमनुमोदितवन्तः ॥ ९ ॥

भावार्थः ।

(मनुष्यों ने) स्वयं आनन्द देनेवाला बलयुक्त स्तुति के योग्य स्वर्ग को प्राप्त करानेवाला जो महान (स्तोत्र है उसको वृत्र के) भय से बनाया, जब मनुष्यों के लिये युद्ध करने वाले मनुष्यों पर उपकार करने वाले, इन्द्र के सहायक मरुतों ने द्युलोक में इन्द्र को अनुमोदन किया ॥ ९ ॥

मनुष्यों के हित के लिये संग्राम करने वाले मरुतों ने मनुष्यों के उपकार के लिए इन्द्र को वृत्र के साथ युद्ध करने के लिये प्रेरण किया, जब देवता मनुष्यों के लिए ऐसेर हित के काम करते हैं तो यह लोक सुख रूप होने की जगह दुःख रूप क्यों है। इसका एक कारण यह है कि मनुष्य दुःख या भय के समय पर स्वयं आनन्द देने वाले, बल युक्त और सुख को प्राप्त कराने वाले स्तोत्र को नहीं गाते, जिस से दुःख के कारणों को जीतने के लिए देवताओं का बल बढ़े ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेःस्वना

दयोयवीद्भियसावज्र इन्द्रते । वृत्रस्य

यद्‌वद्‌वधानस्यरोदसी मदेसुतस्य

शवसाऽभिनच्छिरः ॥१०॥

द्यौः	द्युलोकः	द्युलोक
चित्	अपि	भी
अस्य	अस्य	इसके
अमऽवान्	बलवान्	बली
अहेः	वृत्रस्य	वृत्र के
स्वनात्	शब्दात्	शब्द से
१ अयोयवीत्	पुनःपुनःकम्पितवान् (युमिश्रणामिश्रणयोः)	बार बार कांपा
भियसा	भयेन	भय से
वज्रः	वज्रः	वज्र न

इन्द्र	हे इन्द्र	हे इन्द्र
ते	तव	तेरे
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
यत्	यदा	जब
बद्बधानस्य	बाधनशील्स्य (बाधृ विलोडने)	सताने वाले के
रोदसी०	द्यावापृथिव्यौ	द्युलोक (और) पृथिवी को
मदे	मदे	मद में
सुतस्य	निष्पीडितस्य (सोमस्य)	सोम के
शवसा	बलेन	बल से
अभिनत्	अच्छिनत्	काट दिया
शिरः	शिरः	शिर को

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! अस्य वृत्रस्य शब्दात् बलवान् द्यौरपि भयेन पुनः पुनः कम्पितवान् (यदा) सोमस्य मदे (सति) तव वज्रो द्यावापृथिव्यौ बाधन शीलस्य वृत्रस्य शिरो बलेनच्छेदितवान् ॥ १० ॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र ! इस वृत्रके शब्द से बलवाला द्युलोक भी डर से बार बार कांपा,जब सोमके मद में आप के वज्रने द्युलोक और पृथिवीको सताने वाले वृत्रके शिर को बल से काट दिया ॥ १० ॥

(१) वृत्रके शब्दसे आकाशका बारम्बार कांपना "भयोयचोत्" शब्द ठीक द्योतन करता है, प्रत्येक ध्वनि से आकाश के परमाणु बारबार मिलते और अलग होते हैं और यही कम्पनके लक्षण हैं ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

यदिन्विन्द्रपृथिवीदशभुजिरहा-
निविश्वाततनन्तकृष्टयः।अत्राहते
मघवन्विश्रुतंसहो द्यामनुशवसाव-
र्हणाभुवत्॥११॥

यत्	यदि	यदि
इत्	अपि	भी
नु	खलु	सचमुच
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी
दशऽभुजिः	दशगुणिता भोग वती	दस गुने भोग वाली
अहानि	दिनानि (सप्तम्यर्थे द्वितीया)	दिनों में
विश्वा	सर्वाणि (सप्तम्यर्थे द्वितीया)	सब
ततनन्त	विस्तृताभवेयुः (लिडर्थेलट् द्विर्भावश्छान्दसः)	फैलें
कृष्टयः	मनुष्याः (निघं०२।३)	मनुष्य
अत्र	अत्र	यहां
अह	खलु	सचमुच

ते	तव	तेरा
मघऽवन्	हे धनवन् !	हे धन वाले
विऽउतम्	विख्यातः	प्रसिद्ध
सह्नः	पराक्रमः	पराक्रम
द्याम्	द्युलोकम्	द्युलोक को
अनु	(साम्ये)	तुल्य
शवसा	बलेन (निघं०२।९)	बल से
बर्हणा	परितो वृद्धः (निघं०४।३)	चारों ओर बढ़ा हुआ
भुवत्	भवेत् (लेटयडागमउवडा देशादय)	होवे

संस्कृतार्थः।

हे इन्द्र ! यदि खलु पृथिवी दश गुणिता भोग वत्यपि स्यात् मनुष्याः (च) सर्वेषु दिनेषु विस्तृता भवेयुः,(तदापि)हे धनवन् तव पराक्रमोऽत्र विख्यातो द्युलोकवत् परितो वृद्धः (च) भवेत् ॥ ११ ॥

भावार्थः।

हे इन्द्र! जो सच मुच पृथिवी दसगुनी भोग वाली भी हो जावे (और) मनुष्य सब दिन बढ़ते रहें (तोभी) हे धनवाले! आपका पराक्रम यहां पर प्रसिद्ध और द्युलोक के सदृश चारों ओर बढ़ा हुआ हो ॥ ११ ॥

पृथिवी पर मनुष्यों की संख्या अन्नादि भोग पर निर्भर है यदि अब से दस गुना अन्न होने लगे और मनुष्य दिन दिन बढ़ने लगें तौ भी इन्द्र का पराक्रम इन सब मनुष्यों में फैल जावेगा ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

त्वमस्यपारेरजसोव्योमनः स्वभू-

त्योजाअवसेधृषन्मनः। चकृषेभूमिं-

प्रतिमानमोजसोऽपःस्वःपरिभूरेष्या

दिवम् ॥१२॥

त्वम्	त्वम्	तू ने

अस्य	अस्य	इस के
पारे	सीमायाम्	सीमा में
रजसः	लोकस्य (लोकारजांस्युच्यन्ते निरु०)	लोक की
विऽओमनः	अन्तरिक्षस्य (निघं० १।३)	अन्तरिक्ष की
स्वभूतिऽओजाः	स्वभूतबलः	स्वयं होने वाले बल से युक्त
अवसे	रक्षायै	रक्षा के लिए
धृषत्ऽमनः	धृषत्, प्रगल्भं मनो यस्य तत्सम्बुद्धौ	हे निडर मनवाले
चक्षे	कृतवान्	बनाया है
भूमिम्	पृथिवीम्	पृथिवी को
प्रतिऽमानम्	प्रतिरूपम्	नमूना
ओजसः	बलस्य	बल का

अपः	जलानि	जलों को
स्वः०	ज्योतिः	ज्योति को
परिऽभूः	परिगृहीता	घेरने वाला
एषि	प्राप्नोषि	पहुंचते हो
आ	(मर्य्यादायाम्)	तक
दिवम्	द्युलोकम्	द्युलोक को

संस्कृतार्थः ।

हे प्रगल्भमनः ! अस्याऽन्तरिक्षलोकस्य सीमायां स्वयम्भूतबल युक्तस्त्वम्(अस्मद्)रक्षार्थेपृथिवीं(निज) बलस्य प्रतिरूपां कृतवानसि (त्वम्) जलानि ज्योतिः (च) परिगृहीत्वा द्युलोक पर्य्यन्तं प्राप्नोषि ॥ १२ ॥

भावार्थः ।

हे निडर मनवाले ! इस अन्तरिक्ष लोक की सीमा में स्वयं होनेवाले बल से युक्त आपने हमारी रक्षा के लिये पृथिवी को अपने बल का नमूना बनाया है,आप जल और ज्योतिको घेर कर द्युलोक तक पहुंचते हो ॥ १२ ॥

इन्द्रके बल का एक छोटा सा नमूना पृथिवी है,इन्द्र तो आकाश में जल और ज्योति को बीच में ले कर द्युलोक ...

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्धम्
११९२	८	+धाध	+धधि,
,,	११	ल्युट	ल्यट्
११९५	७	घमिति	मघमिति
११९८	३	न्ता	न्तौ
,,	१७	यद	यद्द
१२०२	१०	गुणन्ति	गुणन्ति
१२०५	८	मस्माध	मस्मात्
१२०७	६	ददात	ददातु
१२०८	४	स्तोमां	स्तोमाँ
,,	५	लडिक्षान्द	लडिक्शान्द
,,	१३	पृथ	पृथु

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१२१२	१६	संघम्नेन	संघुम्नेन
१२१७	१३	दुहरं	दुष्करं
,,	१६	सऽपे	सुऽवे
,,	१७	सऽखम्	सुऽखम्
१२१८	१४	तरनु	तूरनु
१२२०	१३	गमनों का	गमनोंको
१२२२	११	तथः	तथा
१२२६	२	भप	भूप
,,	४	प्रसिद्ध:)	प्रसिद्धा:)
१२२८	१३	सष्ट	स्पष्ट

अंक ३१-३२]　　　　[चैत्र वैशाख १९६६

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुलतान निवासी प० शङ्करदत्त
शास्त्री की सहायता से शिवनाथ
आहिताग्नि ने सम्पादन किया

लाहौर
पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में प्रिण्टर लाला
लालमन के अधिकार से छपा।

१२ अङ्कों का अग्रिम मूल्य २)
पहले २४ अङ्कों का मूल्य ५॥)

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।१११११११११॥

त्वंभुवःप्रतिमानंपृथिव्या ऋष्व
वीरस्यबृहतःपतिर्भूः । विश्वमाप्रा-
अन्तरिक्षंमहित्वा सत्यमद्धानकि-
रन्यस्त्वावान् ॥१३॥

त्वम्	त्वम्	तू
भुवः	अन्तरिक्षस्य (निघं०१।३)	अन्तरिक्ष का
प्रतिऽमानम्	परिमाणम्	माप
पृथिव्याः	पृथिव्याः	पृथिवी का
ऋष्वऽ वीरस्य	ऋष्वामहान्तोवीरायस्मिन्-तथोक्तस्य (ऋष्वइतिमहन्नाम) (निघ०३।३)	जहां बडे शूरवीर हैं ऐसे का

बृहतः	महतः (द्युलोकस्य)	महान(द्युलोक)का
पतिः	स्वामी	स्वामी
भूः	अभूः (षड्भावः)	हुए हो
विश्वम्	सर्वम्	सम्पूर्ण को
आ	आ +	–
अप्राः	आ+अप्राः,आपूरितवानसि (प्रापूरणे)	पूर्ण किया है
अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
महिऽत्वा	महिम्ना	महिमा से
सत्यम्	सत्यम्	ठीक है
अद्धा	खलु	सच मुच
नकिः	नास्ति	नहीं है
अन्यः	अन्यः	और

त्वावान्	त्वत्सदृशः (सादृश्यार्थेवतुप्)	आपके तुल्य

संस्कृतार्थः।

(हे इन्द्र!) त्वमन्तरिक्षस्य पृथिव्याः (च) परिमाणं, महावीरवतो महतः(द्युलोकस्य) पतिः(च)अभूः (त्वं निज-) महिम्ना सर्वमन्तरिक्षमापूरितवान् त्वत्सदृशोऽन्यो नास्ति (इति) सत्यंखलु ॥ १३ ॥

भावार्थः।

(हे इन्द्र) आप अन्तरिक्ष(और)पृथिवी के माप (और) बड़े वीरों से युक्त महान (द्युलोक के) स्वामी हुए हैं (आपने अपनी) महिमा से सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को पूर्ण किया है आपके तुल्य और नहीं है (यह) सच मुच ठीक है ॥ १३ ॥

विनियोग—यह मन्त्र बृहस्पति सव में भू नाम वाले एकाह के मरुत्वतीय शास्त्र में पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू०उ० ३।५।१६)

(१) इन्द्र, अन्तरिक्ष और पृथिवी के माप हुए हैं, अर्थात् जैसे इन्द्र महान हैं वैसे ही उनकी बनाई हुई पृथिवी और अन्तरिक्ष भी महान हैं।

(२) बड़े वीर मरुत आदि देवताओं से तात्पर्य है।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२॥

नयस्यद्यावापृथिवीअनुव्यचो न

सिन्धवोरजसोअन्तमानशुः। नोत

स्ववृष्टिंमदेअस्ययुध्यत एकोअन्य-

च्चकृषेविश्वमानुषक् ।१४।

न	न	नहीं
यस्य	यस्य	जिसके
{ द्यावापृथिवी°	द्यावापृथिव्यौ	द्युलोक (और) पृथिवी
अनु	साम्ये (आ०को०)	तुल्य
व्यचः	विस्तारम् (आ०को०)	विस्तार को
न	न	नहीं

सिन्धवः	स्यन्दनशीलाः [आपः]	जल
रजसः	अन्तरिक्षस्य	अन्तरिक्ष के
अन्तम्	सीमाम्	सीमा को
आनशुः	प्राप्तवन्तः (व्यत्ययेनपरस्मैपदम्)	पहुंचे हैं
न	न	नहीं
उत	अपि च	और
स्वऽवृष्टिम्	स्वा,अधीनावृष्टिर्यस्य तम्	वर्षा रोकने वाले को
मदे	मदे (सति)	मद युक्त होने पर
अस्य	अस्य	इसके
युध्यतः	युध्यतः	युद्ध करते हुए के
एकः	एकः	एक

अन्यत्	अन्यत्	और
चकृषे	कृतवान् ।	किया
विश्वम्	सर्वम्	सम्पूर्ण को
आनुषक्	अनुषक्तम्	अनुक्रम से

संस्कृतार्थः ।

यस्य विस्तार साम्य द्यावा पृथिव्यौ न जग्मतुः। अन्तरिक्षस्याऽऽपः (यस्य) सीमां न प्रापुः अपि च मदे (सति) वृष्टि निवारकम् प्रति युध्यतोऽस्य (बलम्) न(कोऽपि प्रमातुमशकत् हे इन्द्र एकः त्वम् '(एव) अन्यत्सर्वमनुषक्त कृतवान् ॥ १४ ॥

भावार्थ ।

जिसके विस्तार की तुल्यता को आकाश (और) पृथिवी नहीं पहुचे है. अन्तरिक्ष के जल जिस की सीमा को प्राप्त नहीं हुए और मद युक्त होकर वर्षा रोकने वाले के प्रति युद्ध करते हुए जिसके (बल की कोई तुलना नहीं कर सकता) हे इन्द्र ! आप अकेले ने (ही) अन्य सब को क्रम पूर्वक रचा है ॥ १४ ॥

यहा इन्द्र परमात्मा के महत्त्व और रचना शक्ति के अभिमानी देवता हैं। सृष्टि की रचना क्रम पूर्वक हुई है। एक साथ नहीं हुई।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥११।११।११।११॥

आर्चन्नत्रमरुतःसस्मिन्नाजौ
विश्वेदेवासोअमदन्ननुत्वा । वृत्र-
स्ययद्भृष्टिमतावधेन नित्वमिन्द्र
प्रत्यानंजघन्थ ॥१५॥

आर्चन्	स्तुतवन्तः	स्तुति की
अत्र	अत्र	यहां
मरुतः	मरुतः	मरुतों ने
सस्मिन्	तस्मिन् (सा०भा०) (सत्वछान्दसम्)	उस में
आजौ	सङ्ग्रामे	युद्ध में
विश्वे	सर्वे	सब
देवासः	देवा॰	देवता

अमदन्	हर्षितवन्तः	हर्ष को प्राप्त हु
अनु	अनु (सृत्य)	पीछे
त्वा	त्वाम्	तुझ को
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
यत्	यदा	जब
भृष्टिऽमता	भृष्टिधारातद्वता	नोकीले से मद्दे ऊम्)
वधेन	वधसाधनेन (वज्रेण)	बध करने (वज्र)से
नि	नि+	–
त्वम्	त्वम्	तूने
इन्द्र	हे इन्द्र	हे इन्द्र
प्रति	प्रति	प्रति
आनम्	आननम् (वर्णलोपश्छान्दसः)	मुख पर

जघन्थ	नि+जघन्थ प्रहारंकृतवानसि	प्रहार किया

संस्कृतार्थः ।

तस्मिन्सङ्ग्रामे मरुतोऽत्र भवन्तम् स्तुतवन्तः विश्वेदेवाश्च त्वामनुसृत्य हर्षमाप्नुवन्, यदा हे इन्द्र ! त्वं धारा युक्तेन वज्रेण वृत्रस्य मुखम्प्रति प्रहारं कृतवान् ॥ १५ ॥

भाषार्थः ।

उस युद्ध में मरुतों ने आप की स्तुति की और सब देवता आपके साथ हर्ष को प्राप्त हुए, जब हे इन्द्र आपने नोकीले वज्र से वृत्र के मुख पर प्रहार किया ॥ १५ ॥

देवता और मनुष्यों के शत्रु के मारे जाने से मनुष्य हितकारी मरुद्गण और सब देवता हर्षित हुए । अब भी हमारे सुख को देख कर देवता सुखी और दुःख को देख कर दुःखी हैं परन्तु जब तक हम यज्ञ, स्तुति और देवानुकूल आचरण द्वारा उन का बल न बढ़ावें तब तक वे हमारे दुःख के कारण भूत असुरोंको नाश करने में असमर्थ हैं ॥

इति द्विपञ्चाशं सूक्तम्

ऋ० मं १ स० ५३

विनियोग—यह सूक्त अतिरात्र यज्ञके प्रथम पर्याय में ब्राह्मणाच्छंसी के शस्त्र में पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू० ६।४।८) .

इस सूक्में भी इन्द्रकी स्तुति है, वह सोनेवालों अर्थात् पुरुषार्थ न करने वालों को धन नहीं देते। वह गौ घोड़े, और यवादि धान्य के देनेवाले हैं, वह सदा से दान वीर हैं और कामना करने वालों को कभी हताश नहीं करते। जो उन से मित्रता रखता है उसके मित्र हैं, वह बुद्धिमान, बहुत काम करने वाले और सब धन के प्रसिद्ध स्वामी हैं, उपासक की दरिद्रता के हटाने वाले, और उसके द्वेषियों को छिन्न भिन्न करने वाले हैं। वह अपने बल द्वारा गढ़ से गढ़ को तोड़ते हुए निडर होकर एक युद्ध से दूसरे युद्ध की ओर जाने वाले हैं। इन्हों ने अपने भक्त नमी के लिए मायावी नमुचि को मारा और अतिथिग्व अर्थात् राजा दिवोदास के रस्ता रोकने वाले करंज और पर्णय नामी दस्युओं को मारा। इन्हों ने रिजिश्वा के शत्रु वंगृद के सैंकड़ों गढ़ों का तोड़ा, और बन्धुहीन अपने भक्त सुश्रवा के शत्रु कुत्स, दिवोदास, आयु, और अन्य सबह राजाओं को जो इस युवा राजा पर साठ हजार निन्नानवे सेना लेकर चढ़ आए थे, उसके वस में किया। ऐसे इन्द्र को सब प्रकार से अपना मित्र बनाने का यत्न करना चाहिये ॥

इन्द्रोदेवता सव्यऋषिर्जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर-

इन्द्राय सदने विवस्वतः। नू चिद्धि र-

त्नंससुतामिवाविद्न्नदुष्टुतिर्द्रविणोदेपुशस्यते ॥१॥

नि	नितराम्	खूब
ऊम्०	[पूरणः]	– · ·
सु	सु +	–
वाचम्	सु + वाचम्	सुन्दर वचन को
प्र	प्र +	–
मह्वे	महते	महान् के ताईं
भरामहे	प्र+भरामहे, अर्पयामः	हम अर्पण करते हैं
गिरः	स्तोतारः (ऋ०१।६।६)	स्तोता
इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के लिए
सदने	गृहे	घर में
विवस्वतः	यजमानस्य	यजमान के

नु	(प्रश्ने)	क्या
चित्	खलु	सचमुच
हि	यतः	क्योंकि
रत्नम्	रमणीयम्(धनम्)	धन को
ससताम् ऽइव	स्वपतामिव	सोते हुओं की न्याईं
अविदत्	लब्धवान्	पाया है
न	न	नहीं
दुःऽस्तुतिः	निकृष्टा स्तुतिः	निकृष्ट स्तुति
द्रविणःऽदेषु	धनदातृषु	धन देने वालों में
शस्यते	शस्यते	उचित है

संस्कृतार्थः।

(वयम्) स्तोतारो महत इन्द्राय यजमानस्य गृहे सुवाचमर्पयामः, यतः स्वपतामिव (आचरतां

मध्ये) कः खलु रमणीयम् (धनम्) लब्धवान्, धनदातृषु निकृष्टा स्तुतिः (च) न शस्यते ॥ १ ॥

भावार्थः ।

हम स्तोता लोग महान इन्द्र के लिये यजमान के घर में सुन्दर वचन को अर्पण करते हैं, क्योंकि सोते हुओं की न्याईं (आचरण करने वालों में) सच मुच किसने धन को पाया है (और) धन देने वालों में निकृष्ट स्तुति उचितनहीं है ॥१ ॥

हम को इन्द्र की खूब स्तुति करनी चाहिये इस लिये कि विना पुरुषार्थ के धन नहीं मिलता और स्तुति करना एक महान पुरुषार्थ है, स्तुति भी ऐसी होनी चाहिये जो धन देनेवालों के योग्य हो ॥

इन्द्रोदेवता भुरिग्जगतीछन्दः ।१२।१२।१३।१२।

दुरोअश्वस्यदुरइन्द्रगोरसि दुरो यवस्यवसुनइनस्पतिः । शिक्षानरः प्रदिवोअकामकर्शनः सखासखिभ्यस्तमिदंगृणीमसि ।२।

दुरः	दाता (ददातेर्बाहुलकादुरच्)	देने वाला
अश्वस्य	अश्वस्य	घोडे के
दुरः	दाता	देने वाला
इन्द्र	हे इन्द्र!	हे इन्द्र
गोः	गोः	गौ के
असि	असि	तू है
दुरः	दाता	देने वाला
यवस्य	यवस्य	जौ के
वसुनः	धनस्य	धन का
इनः	स्वामी	स्वामी
पतिः	पालक	रक्षा करने वाला
शिक्षानरः	दानस्यनेता (शिक्षतिर्दानकर्मा निघं०३।२०)	दान वीर

प्र॒ऽदिव॑:	प्रगता दिवो दिव सा यस्मिन् सः प्राचीन इत्यर्थः	प्राचीन काल से
अकाम॒ऽकर्शनः	कामान्कर्शयति नाशयतीतिकाम-कर्शनः,न काम-कर्शनः, अकाम कर्शनः	कामनाओं को न तोडने वाला
सखा॑	सखा	मित्र
स॒खिऽभ्य॑:	मैत्री युक्तेभ्यः	मैत्री वालोंके ताईं
तम्	तम्	उसको
इ॒दम्	इदम्	यह
गृ॒णी॒म॒सि॒	स्तुमः	हम स्तुति करते हैं

संस्कृतार्थः।

हे इन्द्र ! (त्वम्) अश्वस्य दाता, गोर्दाता, यव-(आदिधान्यस्य च)दाताऽसि (त्वम्) धनस्य स्वामी रक्षकः(चाऽस,त्वम्)प्राचीनो दानस्यनेता कामानाम

मोघयिता मैत्री युक्तेभ्यः सुहृत् (चाऽसि) तम् (भवन्तम्प्रति) इदं स्तुमः ॥ २ ॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र! (आप) घोड़े के देने वाले, गौ के देने वाले, (और) यव (आदि धान्य) के देने वाले हैं आप धन के स्वामी, (और) रक्षक (हैं) आप प्राचीन काल से दानवीर, कामनाओं को न तोड़ने वाले (और) मैत्री रखनेवालों के लिये मित्र (हैं) उस (आप के प्रति) हम यह स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

शचीवइन्द्रपुरुकृद्द्युमत्तम तवे-
दिदमभितश्चेकितेवसु। अतःसं-
गृभ्याऽभिभूतआभर मात्वायतोज-
रितुःकाममूनयीः ।३।

शचीऽवः	हे प्रज्ञावन् (शचीतिप्रज्ञानाम • निघं०३।९)	हे बुद्धिमान्
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
पुरुऽकृत्	हे बहूनाम्[कर्मणाम्] कर्तः !	हे बहुत (कामों के) करने वाले
द्युमत्ऽतम	हे अतिशयेन दीप्तिमन्	हे सब से अधिक दीप्ति वाले
तव	तव	तेरा
इत्	एव	ही
इदम्	इदम्	यह
अभितः	सर्वतः	चारों ओर
चेकिते	ज्ञायते (कितज्ञाने,अस्माद्यङ्न्ताद्वर्त्तमानेलिट्)	हम से जाना जाता है
वसु	धनम्	धन
अतः	अतः	इससे

सम्ऽगृभ्य	संगृह्य (ह्मग्रहोर्भश्छन्दसीति हस्यमत्वम्)	इकट्ठा करके
अभिऽभूते	हे अभिभवितः! (सुपामितिशेआदेशः)	हे जयशील
आ	आ+	–
भर	आ + भर, आहर,	ले आओ
मा	मा	मत
त्वाऽयतः	त्वामिच्छतः (क्यजन्ताल्लटःशतृ, भात्वंछान्दसम्)	तुझ को चाहते हुए की
जरितुः	स्तोतुः	स्तोता की
कामम्	अभिलाषम्	कामना को
ऊनयीः	ऊनं कुरु (लोडर्थेलुङ्)	हीन करो

संस्कृतार्थः।

हे प्रज्ञावन्! बहूनाम् (कर्मणाम्) कर्तः! अतिशयेन दीप्तिमन्! इन्द्र! सर्वत इदंधनं तवैव

ज्ञायते, अतः संगृह्य (अस्मभ्यम्) आहर,त्वामिच्छतः स्तोतुरभिलाषं मा हीनंकुरु ॥ ३ ॥

भावार्थः ।

हे बुद्धिमान बहुत (कर्मों) के करने वाले, सब से अधिक प्रकाश वाले इन्द्र, चारों ओर यह धन आपका ही जाना जाता है, इस में से इकट्ठा करके, हमारे लिये लाओ, आपको चाहते हुए स्तोता की कामना को हीन मत करो ॥ ३ ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

एभिर्द्युभिःसुमनाएभिरिन्दुभि
निरुन्धानोअमतिंगोभिरश्विना ।
इन्द्रेणदस्युंदरयन्तइन्दुभि र्युत-
द्वेषसःसमिषारभेमहि ।४।

एभिः	एभिः	इन से
द्युऽभिः	दीप्तैः	चमकते हुओं से

सुऽमनाः	प्रीतः	प्रसन्न
एभिः	एभिः	इन से
इन्दुऽभिः	सोमैः	सोमों से
निऽरुन्धानः	निवर्तयन्	हटाता हुआ
अमतिम्	दारिद्रयम्	दरिद्रता को
गोभिः	गोभिः	गौओं से
अश्विना	अश्ववता(धनेन)	घोड़ों से युक्त [धन] से
इन्द्रेण	इन्द्रेण	इन्द्र द्वारा
दस्युम्	शत्रुम्	शत्रु को
दरयन्तः	विदारयन्तः (आ०को०)	छिन्न भिन्न करते हुए
इन्दुऽभिः	सोमैः	सोमों से

युतऽद्वेषसः	पृथग्भूतद्वेषाः (यु-अमिश्रणे)	द्वेषसे रहितहुए २
सम्	सम्+	–
इषा	बलेन	बल से
रभेमहि	सम्+रभेमहि संयुक्ताभवेम	हम संयुक्त हों

संस्कृतार्थः ।

एभिर्दीप्तैः (हविर्भिः) एभिःसोमैः (च) प्रीतः (इन्द्रः)गोभिरश्वयुक्तेन (धनेन चाऽस्माकम्) दारिद्र्यं निवर्त्तयन् (तिष्ठतु) (यतोवयम्) सोमैः (प्रीतेनाऽनेन) इन्द्रेण शत्रुं विदारयन्तो द्वेष रहिताः(सन्तः) बलेन संयुक्ता भवेम ॥ ४ ॥

भावार्थः ।

(इन्द्र देव) चमकती हुई इन (हवियों और) इन सोमोंसे प्रसन्न होकर गौओं से (और)घोड़ों से युक्त (धन) से (हमारी) दरिद्रता को हटाते हुए (ठरें) (जिस से) हम (इस) इन्द्र के द्वारा शत्रु को छिन्न भिन्न करते हुए द्वेष से रहित (होकर) बलसे संयुक्त होवें ॥ ४ ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

समिन्द्ररायासमिषारभेमहि सं-
वाजेभिःपुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः। संदे-
व्याप्रमत्यावीरशुष्मया गोअग्रयाऽ-
श्वावत्यारभेमहि । ५ ।

सम्	सम्+	–
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
राया	धनेन	धन से
सम्	सम्(युक्ताभवेम)	हम सं(युक्त होवें)
इषा	अन्नेन	अन्न से
रभेमहि	सम्+रभेमहि संयुक्ताभवेम	हम संयुक्त होवें
सम्	सम्(युक्ताभवेम)	हमसं(युक्त होवें)

वाजेभिः	बलैः	बलों से
पुरुऽचन्द्रैः	बहूनामाह्लादकैः	बहुतों के प्रसन्न करने वालों से
अभिऽद्युभिः	अभितोदीप्यमानैः	चारों ओर प्रकाश वालों से
सम्	सम्+	–
देव्या	द्योतमानया	प्रकाश वाली से
प्रऽमत्या	प्रकृष्टयाबुद्ध्या	उत्तम बुद्धि से
वीरऽशुष्मया	वीरसम्बन्धिबलयुक्तया	शूर वीरों के बल वाली से
गोऽअग्रया	गावोऽग्रामुख्या यस्यांताहृश्या	जहां गौएं मुख्य हैं ऐसी से
अश्वऽवत्या	अश्वोपेतया	घोड़ों वाली से
रभेमहि	सम्+रभेमहि संयुक्ताभवेम	हम संयुक्त होवें

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (वयम्) धनेनाऽन्नेन (च) संयुक्ताभवेम (तथा) अभितोदीप्यमानैर्बहूनामाह्लादकैर्बलैः (च) सं-(युक्ताभवेम, अपि च) द्योतमानया, वीरसम्बन्धिबलवत्या, अश्वोपेतया, गोमुख्यया प्रकृष्ट बुद्धया(च) संयुक्ताभवेम ॥ ५ ॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र हम धन से (और) अन्न से संयुक्त होवें हम चारों ओर प्रकाशित बहुतों के प्रसन्न करने वाले बलों से(संयुक्त होवें और) प्रकाश वाली शूरवीरों के बल वाली,घोड़ों से युक्त,और जिसमें गौएं प्रधान हैं ऐसी उत्तम बुद्धि से संयुक्त होवें ॥ ५ ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

तेत्वामदाअमदन्तानिवृष्ण्या तेसोमासोवृत्रहत्येषुसत्पते । यत्कारवेदशवृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते निसहस्राणिबर्हयः ॥६॥

ते	ते	उन
त्वा	त्वाम्	तुझ को
मदाः	हर्षाः	आनन्दों ने
अमदन्	मदयुक्तंकृतवन्तः	मद युक्त किया
तानि	तानि	उन
वृष्ण्या	वीर्य्याणि	वीर्य्यों ने
ते	ते	उन
सोमासः	सोमाः	सोमों ने
वृत्रऽहत्येषु	वृत्रस्य हत्यायेषु	वृत्र हत्यावालों में
सत्ऽपते	हे सतां पते !	हे सज्जनों के पालक
यत्	यत्	जो
कारवे	[स्तुति-] कर्त्रे	[स्तुति]करने वाले के लिये

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (वयम्) धनेनाऽन्नेन (च) संयुक्ताभवेम (तथा) अभितोदीप्यमानैर्बहूनामाह्लादकैर्बलैः (च) सं-(युक्ताभवेम, अपि च) द्योतमानया, वीरसम्बन्धिबलवत्या, अश्वोपेतया, गोमुख्यया प्रकृष्ट बुद्ध्या(च) संयुक्ताभवेम ॥ ५ ॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र हम धन से (और) अन्न से संयुक्त होवें हम चारों ओर प्रकाशित बहुतों के प्रसन्न करने वाले बलों से(संयुक्त होवें और) प्रकाश वाली शूरबीरों के बल वाली,घोड़ों से युक्त,और जिसमें गौएं प्रधान हैं ऐसी उत्तम बुद्धि से संयुक्त होवें ॥ ५ ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

तेत्वामदाअमदन्तानिवृष्ण्या तेसोमासोवृत्रहत्येषुसत्पते । यत्कारवेदशवृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते निसहस्राणिवर्हयः ।६।

ते	ते	उन
त्वा	त्वाम्	तुझ को
मदाः	हर्षाः	आनन्दों ने
अमदन्	मदयुक्तंकृतवन्तः	मद युक्त किया
तानि	तानि	उन
वृष्ण्या	वीर्य्याणि	वीर्य्यों ने
ते	ते	उन
सोमासः	सोमाः	सोमों ने
वृत्रऽहत्येषु	वृत्रस्य हत्यायेषु	वृत्र हत्यावालों में
सत्ऽपते	हे सतां पते !	हे सज्जनों के पालक
यत्	यत्	जो
कारवे	[स्तुति-] कर्त्रे	[स्तुति]करने वाले के लिये

दश	दश+	–
वृत्राणि	शत्रून् (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः)	शत्रुओं को
अप्रति	नास्तिप्रतिद्वन्द्वी-यस्यसः (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः)	जिसका कोई सामना नहीं कर सक्ता
बर्हिष्मते	बर्हिर्युक्ताय	कुशा से युक्त के लिये
नि	नि +	–
सहस्राणि	दश + सहस्राणि	दश सहस्रों को
बर्हय:	नि+बर्हयः, हतवान् (लिङर्थङभावश्छांदसः)	मारा

संस्कृतार्थः ।

हे सत्पते ! (इन्द्र!) वृत्रहत्या सम्बन्धिषु (युद्धेषु) ते मदास्तानि वीर्याणि ते सोमाः (च) त्वां मदयुक्तं कृतवन्तो यत् प्रतिद्वन्द्विरहितः (त्वम्, स्तुति-)

कर्त्रे बर्हियुक्ताय (च यजमानाय)दश सहस्र संख्या-
काञ्छत्रून् हतवान् ॥ ६ ॥

भावार्थः ।

हे सज्जनों के पालक (इन्द्र) वृत्र की हत्या वाले (युद्धों) में उन आनन्दों ने उन वीर्य्यों ने (और) उन सोमों ने आप को मद युक्त किया, जिसका कोई सामना नहीं कर सकता ऐसे (आपने स्तुति) करने वाले (और) कुशा से युक्त (यजमान के.) लिए दस हजार शत्रुओं को मारा ॥ ६ ॥

उन आनन्दों और वीर्य्यों ने,जो इन्द्र में स्वभाव से ही विद्यमान हैं, और उन सोमों ने जो पृथिवी पर मनुष्य, और द्युलोक में देवता, इन्द्र को पान कराते हैं इन्द्र को वृत्र के मारने के लिए सदैव मदयुक्त किया है, जिस इन्द्र ने अपने उपासक के दसहजार शत्रुओं को मारा है ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२

युधायुधमुपघेदेषिधृष्णुया पुरा
पुरंसमिदंहंस्योजसा । नम्यायदि-
न्द्रसख्यापरावति निवर्हयोनमुचिं
नाममायिनम् ॥ ७ ॥

युधा	युद्धेन	युद्ध से
युधम्	युद्धम्	युद्ध
उप	प्रति	की ओर
घ	(पूरणः)	—
इत्	खलु	सचमुच
एषि	गच्छसि	जाते हो
धृष्णुऽया	प्रगल्भतया	बेधड़क होकर
पुरा	दुर्गेण (सह)	गढ़ के (साथ)
पुरम्	दुर्गम्	गढ़ को
सम्	सम्यक्	अत्यन्त
इदम्	इदम्	इसको
हंसि	विनाशयसि	नाश करते हो

ओजसा	बलेन	बल से
नम्या	नम्या(सह)	नमी के (साथ)
यत्	यत्	जो
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
सख्या	मित्रेण	मित्र से
पराऽवति	दूरदेशे	दूर देश में
निऽबर्हयः	हतवान्	मारा
नमुचिम्	नमुचिम्+	--
नाम	नमुचिम् +नाम नमुचिनामानम्	नमुचि नाम वाले को
मायिनम्	मायोपेतम्	कपटी को

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (त्वम्) युद्धेन (सह) युद्धं प्रति प्रगल्भतया खलु गच्छसि (त्वम्)बलेनेदं दुर्गं दुर्गान्तरेण

युधा	युद्धेन	युद्ध से
युधम्	युद्धम्	युद्ध
उप	प्रति	की ओर
घ	(पूरणः)	—
इत्	खलु	सचमुच
एषि	गच्छसि	जाते हो।
धृष्णुया	प्रगल्भतया	बेधड़क होकर
पुरा	दुर्गेण (सह)	गढ़ के (साथ)
पुरम्	दुर्गम्	गढ़ को
सम्	सम्यक्	अत्यन्त
इदम्	इदम्	इसको
हंसि	विनाशयसि	नाश करते हो।

त्वम्	त्वम्	तूने
करञ्जम्	करञ्जम्	करञ्ज को
उत	च	और
पर्णयम्	पर्णयम्	पर्णय को
वधीः	हतवान् (अडभावः)	मारा
तेजिष्ठया	अतिशयेन तेजस्विन्या	बहुत प्रकाशवाला से
अतिथिऽग्वस्य	अतिथिग्वस्य	अतिथिग्वनामी (राजा)के
वर्तनी	मार्गे (वर्तनी मार्गः, आ०को०) (विभक्तेर्लुक)	रस्ते में
त्वम्	त्वम्	तूने
शता	शतानि	सैकड़ों को

(सह) सम्यग्विनाशयसि यत् (त्वम्) मित्रेण नम्या मायोपेतं नमुचि नामानम् (असुरम्) दूर देशे विनाशितवान् ॥ ७ ॥

भाषार्थः।

हे इन्द्र, सच मुच (आप) युद्ध से युद्ध की ओर बेधड़क (होकर) जाते हैं आप बल से इस गढ को (दूसरे) गढ के (सहित) अत्यन्त नाश करते हैं, जो आपने नमी(नाम वाले अपने) मित्रके द्वारा मायावी नमुचि नामी [असुर] को दूर देश में मारा ॥ ७ ॥

सप्य का पुत्र 'नमी' इन्द्र का भक्त था, जिस की स्तुति और पूजा के बल से इन्द्र ने नमुचि को जो वृष्टि को रोकने वाला एक मायावी असुर था दूर अन्तरिक्ष में मार कर अपने मित्र नमी को वर्षा रूपी गौएं दीं(देखो। ऋ० ६।२०।६ और १०।४८।९।)

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२

त्वंक॒रञ्ज॑मु॒त प॒र्णयं॑वधी॒ स्तेजि॑-

ष्ठयाऽतिथि॒ग्वस्य॑व॒र्त्तनी॑।त्वंश॒ता-

वङ्गृ॑दस्याऽभिन॒त्पुरो॑ ऽना॒नु॒दः प-

रि॑षूता॒ऋजि॒श्वना॑। ८।

ऐसे आपने अतिथिग्व (नामी राजा) के रस्तेमें (वर्तमान) करञ्ज (और) पर्णय को बहुत प्रकाश वाली (विद्युत् वा बर्छीसे) मारा, आपने ऋजिश्वा (नामीराजा) से घिरे हुए वङ्गृदके सैंकड़ों गढोंको तोड़ा ॥८॥

अनार्य करंज, और पर्णय राजा, अतिथिग्व अर्थात् दिवोदास के शत्रु प्रतीत होते हैं, जो किसी की बर्छी से अथवा बिजली के गिरने से मारे गए, ऋजिश्वा (देखो ऋ० १।५१।५) के शत्रु वंगृद को जीतने में भी इन्द्र ने अपने आर्य्य उपासक की सहायता की थी॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

त्वमेताञ्जनराज्ञोद्विर्दशा ऽब-
न्धुनासुश्रवसोपजग्मुषः । षष्टिंस-
हस्रानवतिंनवश्रुतो निचक्रेणरथ्या
दुष्पदावृणक् । ९ ।

त्वम्	त्वम्	तूने
एतान्	एतान्	इन को

वङ्गृदस्य	वङ्गृदस्य	वङ्गृद के
अभिनत्	विदारितवान् (लङि सिपि हल्ङ्या भ्यहति सकारलोपः)	तोड़ दिया
पुरः	दुर्गाणि	गढ़ों को
अननुऽदः	नास्त्यनुदस्तुल्य दानीयस्यसः	जिसके तुल्य कोई और दानी नहीं है ऐसा
परिऽसूताः	परितोऽवष्टब्धाः	घिरे हुए
ऋजिश्वना	ऋजिश्वाख्यराज्ञा	ऋजिश्वानामी राजा से

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र!) तुल्य दातृ रहितस्त्वमतिथिग्वस्य (राज्ञः) मार्गे (वर्तमानम्) करञ्जं पर्णयञ्चाऽतितेजस्विन्या (विद्युता शक्त्या वा) हतवान्, त्वम्, ऋजिश्वना (राज्ञा) परितो ऽवष्टब्धानि वङ्गृदस्य शतानि दुर्गाणि विदारितवान् ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र!) जिसके तुल्य और कोई दानी नहीं है

नव	नवतिम्+नव नव नवतिसङ्ख्याकान्	निन्नानवे को
श्रुतः	विख्यातः	विख्यात
नि	नि+	–
२ चक्रेण	चक्रेण	पहिये से
रथ्या	रथसम्बन्धिना	रथ वाले से
दुःऽपदा	दुष्प्राप्येन	जिस को कोई नहीं पहुच सक्ता
अवृणक्	नि+अवृणक् निराकृतवान् (वृजी वर्जने)	हटाया

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र!) विख्यातस्त्वं बन्धु रहितेन सुश्रवसा (राज्ञा)समीपे प्राप्नुवतो विंशति सङ्ख्याकानेताञ्जना ऽधिपान्(तथैतेषाम्)नवनवत्यधिक षष्टिसहस्र संख्या कान्(अनुचरांश्च) दुष्प्राप्येन रथसम्बन्धिना चक्रेण [illegible] ॥ ९ ॥

जनऽराज्ञः	जनाधिपान् (समासान्तविधेरनित्यत्वाट्टजभाव)	राजाओं को
द्विः	द्विः+	–
दश	द्विः+दश,विंशति सङ्ख्याकान्	बीस को
अबन्धुना	बन्धुरहितेन	बन्धु हीन से
१ सुऽश्रवसा	सुश्रवसा (राज्ञा)	सुश्रवा नामी (राजा) से
उपऽजग्मुषः	समीपे प्राप्नुवतः	समीप आते हुओं को
षष्टिम्	षष्टिम्+	–
सहस्रा	षष्टिम् + सहस्रा, षष्टिसहस्रसङ्ख्याकान्	साठ हजार को
नवतिम्	नवतिम्+	–

त्वम्	त्वम्	तू ने
आविथ	ररक्षिथ	रक्षित किया
सुऽश्रवसम्	सुश्रवसम्	सुश्रवा को
तव	तव	तेरी
ऊतिऽभिः	रक्षाभिः	रक्षाओं से
तव	तव	तेरी
त्रामऽभिः	त्राणैः	पालनाओं से
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
तूर्वयाणम्	तूर्वयाणम्	तूर्वयाण को
त्वम्	त्वम्	तूने
अस्मै	अस्मै	इसके ताईं
कुत्सम्	कुत्सम्	कुत्स को

भावार्थः ।

[१] (हे इन्द्र !) विख्यात आपने वन्धु हीन सुश्रवा (राजा)के द्वारा,समीप आते हुए इन वीस राजाओंको (औरइनके) साठ,हजार निन्नानवे(अनुचरों)को किसी से न पहुंचने योग्य रथ के पहिये से हटाया ॥ ९ ॥

(१) राजा सुश्रवा ने वन्धु रहित होने पर भी इन्द्र की भक्ति के फल से वीस राजा और १००९९ सेना को पराजय किया इन वीस राजाओं में तीन का नाम अगले मन्त्रमें दिया है जिससे प्रतीत होता है कि यह युद्ध आर्य्य राजाओं में ही था ॥

(२) "किसी से न पहुंचने योग्य रथ का पहिया" अगले मन्त्र में और ऋ० ६ । १८ । १३ में " तूर्वयाण " राजा सुश्रवा का ही नामान्तर प्रतीत होता है, यह नाम इस लिये पड़ा होगा कि यह बहुत शीघ्र गामी थे, इन के रथ के पहिये ऐसे बने हुए थे कि कोई इनको पहुंच नहीं सकता था । तूर्वयाण का अर्थ शीघ्रगामी है (देखो आ०को०) ॥

इन्द्रोदेवता भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः १२।११।११।११

त्वमाविथसुश्रवसंतवोतिभि स्तव-
त्रामभिरिन्द्रतूर्वयाणम् । त्वमस्मै
कुत्समतिथिग्वमायुं महेराज्ञेयूने
अरन्धनायः ॥ १० ॥

(१) कुत्स, अतिथिग्व अर्थात् दिवोदास और आयु भी इन्द्र के उपासक थे, परन्तु इन्होंने अन्याय से सबह और राजाओं के साथ बन्धु रहित युवा राजा सुश्रवा पर चढ़ाई की इसलिए इन्द्र ने इन को दण्ड देने के लिए सुश्रवा के अधीन किया।

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः १०।११।११।११

यउदृचीन्द्रदेवगोपाः सखाय-
स्तेशिवतमाअसाम। त्वांस्तोषा-
मत्वयासुवीरा द्राघीयआयुःप्रतरंद-
धानाः ॥११॥

ये	ये	जो
उत्ऽऋचि	उदर्के	उत्तरकाल में
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
देवऽगोपाः	देवैरक्षिताः	देवताओं से रक्षा किये हुए

अतिथिऽ-ग्वम्	अतिथिग्वम्	अतिथिग्व को
आयुम्	आयुम्	आयु को
महे	महते	महान् के ताईं
राज्ञे	राज्ञे	राजा के ताईं
यूने	यूने	युवा के ताईं
अरन्धनायः	वशमनयः (रध्यतिर्वशगमनेऽपि दृश्यते, निरु०)	अधीन कराया

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र! त्वंनिजरक्षाभिःसुश्रवसं निज त्राणैः (च) तूर्वयाणम् रक्षितवान् त्वमस्मै महते यूनेराज्ञे कुत्स मतिथिग्वमायुम् (च) वशमनयः । १० ।

भाषार्थः ।

हे इन्द्र! आपने अपनी रक्षाओं से सुश्रवा को (और) अपनी पालनाओं से तूर्वयाणको रक्षित किया आपने इस महान् (और) युवा राजा के ताईं कुत्स, [illegible], (और) आयु को अधीन कराया ॥१०॥

संस्कृतार्थः

हे इन्द्र! ये (वयम्) देवैरक्षिताः स्तत्र सखायः (स्मः) ते (वयम्) उत्तर काले (अपि) अतिशयेन सुख रूपा भवाम, त्वया (सह) अतिवीरोपेता अतिदीर्घं मत्युत्कृष्टमायुः (च) धारयन्तस्त्वांस्तवाम ॥ ११ ॥

भाषार्थः।

हे इन्द्र! जो (हम) देवताओं से रक्षा किए हुए आप के मित्र (हैं) वे हम आगे (भी) बहुत सुखी रहें (और) आपके साथ अति वीरों से युक्त (और) बहुत लम्बी बहुत उत्तम आयु को धारण करते हुए आप की स्तुति करते रहें ॥ ११ ॥

इति त्रिपञ्चाशं सूक्तम्।

सखायः	सखायः	मित्र
ते	तव	तेरे
शिवऽतमाः	अतिशयेनसुख रूपाः	बहुत सुखी
असाम	भवाम	हम होवें
त्वाम्	त्वाम्	तुझ को
स्तोषाम	स्तवाम	हम स्तुति करें
त्वया	त्वया	तुझ से
सुऽवीराः	अति वीरोपेताः	अति वीरोंसे युक्त
द्राघीयः	अतिदीर्घम्	बहुत बड़ी को
आयुः	आयुः	आयु को
प्रऽतरम्	अत्युत्कृष्टम्	बहुत उत्तम को
दधानाः	धारयन्तः	धारण करते हुए

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२।

मानोअस्मिन्मघवन्पृत्स्वंहसि
नहितेअन्तःशवसःपरीणशे। अक्र-
न्दयोनद्यो३रोरुवद्वना कथानक्षो-
णीर्भियसासमारत ॥१॥

मा	मा	मत
नः	अस्मान्	हमको
अस्मिन्	अस्मिन्	इसमें
मघऽवन्	हे धनवन्!	हे धनवाले
१ पृत्ऽसु	सङ्ग्रामे (वचनव्यत्ययः)	युद्ध में
१ अंहसि	कष्ट (रूपे) (मा०को०)	कष्ट (रूप) में

ऋ० मं० १ सू० ५४।

सव्य ऋषिः

यह सूक्त अतिरात्र यज्ञ के प्रथम पर्याय में अच्छावाक के शस्त्र में पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू० ६।४।१०)

इस सूक्त में भी इन्द्र की स्तुति है और उन की भक्ति का फल दिखलाया है। जिस के भय से द्युलोक और पृथिवी कांपते हैं उस इन्द्र को हम अपना शत्रु न बनावें, जो शक्तिमान अपने बल से द्यावापृथिवी को सुशोभित करते हैं, उस सुनने वाले इन्द्र को हम आदर से नमस्कार करते हुए स्तुति करें, जो स्वतन्त्र इन्द्र निडर मन वाले हैं, उस महान के तांई हम बल करने वाला वेदमंत्र रूप वचन उच्चारण करें, जो इन्द्र पूर्वकाल में वृत्र को मार कर इस देश की अनावृष्टि को दूर करते रहे हैं, यदि वह अब भी ऐसा करें तो उन को कौन रोक सकता है। जिस इन्द्र ने हमारे प्राचीन मनुष्य हितकारी राजा तुर्वश, यदु, और तुर्वीति की रक्षा की और युद्ध में उन के शत्रुओं का नाश किया, वह अब भी हमारा परित्याग नहीं करेंगे॥

जो इन्द्र को हवि देता हुआ उन के शासन पर चलता है या जो उनके स्तोत्रों को सुन कर स्तोताओं को दान देता है उसके लिए संपत्ति आकाश से वर्षा को न्याईं बरसती है। जो सोम द्वारा दानी इन्द्र के महान बल और वीर्य्य को बढ़ाते हैं, उन का बल अतुल है, और उन की वृद्धि अतुल है। इन्द्र हमारे अर्पण किए हुए सोम को पीवें और फिर हम को धन देने के लिए मन करें, इन्द्र हम लोगों में सुख यश और मनुष्यों के दबाने वाले बड़े राज्य बल को स्थापन करें, हमारे धनिकों की और स्तोता ब्राह्मणों की रक्षा करें और हम को ऐश्वर्य, उत्तम सन्तान और बल के लिए प्रेरण करें॥

भियसा	भयेन	भय से
सम्	सम्+	–
आरत	सम् + आरत समगच्छत्	संगत होती

संस्कृतार्थः ।

हे धनवन् ! (इन्द्र ! त्वम्) अस्मिन् कष्ट रूपे युद्धेऽस्मान् मा (प्रेरय, यतोऽस्माभिः) तव बलस्य सीमा परितो व्याप्तु नहि (शक्यते त्वम्) जलानि शब्दयन्नदीरक्रन्दयः कथम् (पुनः) पृथिवी भयेन न समगच्छत् ॥ १ ॥

भावार्थः ।

हे धन वाले (इन्द्र) आप इस कष्ट रूप युद्ध में हम को मत (प्रेरण करो क्योंकि हम आपके बल के अन्त को नहीं पहुंच सके जलों को शब्द कराते हुए आपने नदियों को शब्द युक्त किया (फिर) कैसे पृथिवी भय युक्त न होती ॥ १ ॥

(१) कष्ट रूप युद्ध में, अर्थात् ऐसे युद्ध में जिस में इन्द्र हमारे शत्रु की ओर हो, ऐसे युद्ध में विजय असम्भव है और कष्ट ही कष्ट होता है ।

नहि	नहि	नहीं
ते	तव	तेरे
अन्तः	अन्तः	अन्त
शवसः	बलस्य	बलका
परिऽनशे	व्याप्तुम् (शक्यते) (नशतिर्व्याप्तिकर्म्मा तुमर्थे केन् प्रत्ययः)	पहुंचा जा सक्ता है
२ अक्रन्दयः	अशब्दयः	तूने शब्द कराया
२ नद्यः	नदीः (द्वितीयार्थे प्रथमा)	नदियों को
२ रोरुवत्	अत्यर्थं शब्दयन् (अन्तर्भावितण्यर्थः)	अत्यन्त शब्द कराता हुआ
२ वना	जलानि (निघं० १।१२, शेर्लोपः)	जलों को
कथा	कथम्	कैसे
न	न	नहीं
क्षोणीः	पृथिवी (निघं० १।१। सुलोपाऽभावश्छान्दसः)	पृथिवी

इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
१ मह्यन्	आद्रियन् (आ०को०)	आदर करता हुआ
अभि	अभि+	–
स्तुहि	अभि + स्तुहि	स्तुति कर
यः	यः	जो
धृष्णुना	धर्षकेण	प्रगल्भ से
शवसा	बलेन	बल से
रोदसी०	द्यावापृथिव्यौ	द्यौ(और) पृथिवीको
उभे	उभे	दोनोंको
२ वृषा	वृषा	नर
२ वृषऽत्वा	सेचनसामर्थ्येन (विभक्तेरात्वम्)	सेचनसामर्थ्य से
वृषभः	(कामानाम्) वर्षयिता	(कामनाओंके) बरसाने वाला

(२) जब वर्षाऋतु में जलों के खोंखाट से नदियां भी शब्द युक्त हो कर भय से पुकारती हैं तो पृथिवी के जीव कैसे भय युक्त न हों। मंत्र का तात्पर्य यह है कि जिस इन्द्र के भय से सब कांपते हैं उस को शत्रु बनाना बड़ी मूर्खता है॥

इन्द्रो देवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभिष्टुहि। यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते॥२॥

अर्च	नमस्कुरु (आ०को०	नमस्कार करो
शक्राय	समर्थाय	समर्थ के लिए
शाकिने	शक्तियुक्ताय	शक्तिमानके लिये
शचीऽवते	प्रज्ञावते	बुद्धिमान के लिये
१ शृण्वन्तम्	शृण्वन्तम्	सुनते हुए को

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

अर्चादिवेबृहतेशूष्यंवचः स्वक्ष-
त्रंयस्यधृषतोधृषन्मनः। बृहच्छ्रवा-
असुरोवर्हणाकृतः पुरोहरिभ्यांवृष-
भोरथोहिषः॥३॥

अर्च	आदरेणोच्चारय	आदर से कहो
दिवे	दीप्ताय	दीप्तिमानके ताईं
बृहते	महते	महान के ताईं
शूष्यम्	बलकरम् (तत्रसाधुरितियत्,शूष मितिबलनाम निघं०२।९)	बल करने वाले को
वचः	वचः	वचन को
स्वऽक्षत्रम्	स्वाधिपत्ययुक्तम्	स्वतन्त्र
यस्य	यस्य	जिसका

३	निऽऋष्टे- ऋजते	नितरां प्रसा- धयति	अत्यन्त शोभाय मान करता है

संस्कृतार्थः ।

(हे आर्य्यगण!) समर्थाय शक्तियुक्ताय प्रज्ञावते (इन्द्राय) नमस्कुरु शृण्वन्तमिन्द्रमाद्रियन् (सन्) अभिष्टुहि, यः सेचन सामर्थ्येन वृषा (कामानाम्) वर्षयिता धर्षकेण बलेन द्यावा पृथिव्यौ नितरां प्रसाधयति ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

(हे आर्य्यगण) समर्थ शक्तिमान, (और) बुद्धिमान (इन्द्र) के ताईं नमस्कार करो, (और) आदर करते हुए सुनने वाले इन्द्र की स्तुति करो, जो सेचन सामर्थ्य से नर और (कामनाओं को) बरसाने वाले (हैं ऐसे इन्द्र) प्रगल्भ बल द्वारा द्यौ (और) पृथिवी को अत्यन्त शोभा युक्त करते हैं ॥ २ ॥

(१) यह समझ कर कि इन्द्र सुनते हैं, आदर पूर्वक उन की स्तुति करो।

(२) जो सेचन सामर्थ्य से नर हैं, और मनुष्य की सब कामनाओं को पूर्ण करते हैं।

(३) ऐसे इन्द्र द्यौ और पृथिवी को अपने प्रबल बल द्वारा शोभायुक्त करते हैं।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

अर्चादिवेबृहतेशूष्यं१वचः स्वक्षत्रंयस्यधृषतोधृषन्मनः। बृहच्छ्रवा-असुरोबर्हणाकृतः पुरोहरिभ्यांवृषभोरथोहिषः ॥३॥

अर्च	आदरेणोच्चारय	आदर से कहो
दिवे	दीप्ताय	दीप्तिमानके ताईं
बृहते	महते	महान के ताईं
शूष्यम्	बलकरम् (तत्रसाधुरितियत्,शूष मितियलनाम निघ०२।९)	बल करने वाले को
वचः	वचः	वचन को
स्वक्षत्रम्	स्वाधिपत्ययुक्तम्	स्वतन्त्र
यस्य	यस्य	जिसका

धृषतः	धर्षणशीलस्य	शूरवीर का
धृषत्	धृष्टम्	निडर
मनः	मनः	मन
बृहत्ऽश्रवाः	महायशस्वी	बड़े यश वाला
२ असुरः	असुःप्राणस्तद्वान् (सोमत्सर्यीयः निरु०)	प्राण से युक्त
बर्हणा	बलवान् (आ०को० (विमकेर्डादेशः)	बलवान
कृतः	कृतः	किया गया
२ पुरः	पुरोवर्ती	अगवैया
३ हरिऽभ्याम्	अश्वाभ्याम्	घोड़ों द्वारा
वृषभः	सेचनसमर्थः	नर
४ रथः	रथरूपः	रथरूप
हि	यतः	जिससे
सः	सः	वह

संस्कृतार्थः।

धर्षणशीलस्य यस्य (इन्द्रस्य) धृष्टंमनः स्वाधिपत्य युक्तम् (अस्ति) दीप्ताय महते (तस्मै) वलकर वच आदरेणोच्चारय, यतो महायशस्वी प्राणवान्वलवानश्वाभ्यांपुरस्कृतः सेचनसमर्थः (सः) रथरूपः (अस्ति) ॥ ३ ॥

भावार्थः।

शूरवीर जिस (इन्द्र) का निडर मन स्वतंत्र(है) दीप्तियुक्त (उस) महान के ताईं वल करने वाले वचन को आदरपूर्वक कहो क्योंकि वडे यश वाला प्राण से युक्त, वलवान, घोड़ों द्वारा अगवैया किया गया (वह) नर रथरूप है ॥ ३ ॥

(१) "वल करने वाला वचन" वेद मंत्र रूप स्तुति जिस के करने से इन्द्र में वल उत्पन्न होता है।
(२) "प्राणसे युक्त"अर्थात् जीवन की चेष्टासे युक्त (Full of life)
(३) जिस के घोड़े सव से आगे रहते हैं।

(४) "रथरूप" अर्थात् इस संसार के दुःख और पाप से पार लंघाने वाला ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

त्वंदिवोबृहतःसानुकोपयो ऽव-

त्मनाधृषताशम्बरंभिनत् । यन्मा-
यिनोव्रन्दिनामन्दिनाधृष च्छितां-
गभस्तिमशनिंपृतन्यसि । ४ ।

त्वम्	त्वम्	तूने
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक के
बृहतः	महतः	महान के
सानु	शिखरम्	शिखर को
कोपयः	अव + कोपयः अकम्पयः	कंपाया है
अव	अव +	—
त्मना	निजसामर्थ्येन (मन्त्रेष्वित्याकारलोपः	अपनी सामर्थ्य से
धृषता	धृष्टेन	प्रगल्भ से
१ शम्बरम्	शम्बरम्	शम्बर को

भिनत्	विदारितवान् (पुरुषव्यत्ययोऽडभावश्च)	चीर डाला है
यत्	यत्	जो
२ मायिनः	मायोपेतान्	मायावियों को
१ अन्दिनः	समूहवतः	समूह वालों को
मन्दिना	हृष्टेन (मनसा)	हर्षित (मन) से
धृषत्	धृष्टः	बेधड़क
शितम्	तीक्ष्णेन (तृतीयार्थे द्वितीया)	तीखे से
गभस्तिम्	हस्तेन (तृतीयार्थे द्वितीया)	हाथ से
अशनिम्	वज्ररूपेण (तृतीयार्थे द्वितीया)	वज्ररूप से
पृतन्यसि	पृतनयेच्छसि सङ्ग्रामेहन्तु मिच्छसीत्यर्थः	युद्ध में मारने की इच्छा करते हो

संस्कृतार्थः।

(हे इन्द्र!) त्वं महतो द्युलोकस्य शिखरमकम्पयः,

धृष्टेन निज सामर्थ्येन शम्बरम्(च)विदारितवान् यद्-हृष्टेन (मनसा) धृष्टः(त्वम्) समूहवतो मायोपेतान् (वृत्रान्) तीक्ष्णेन वज्र रूपेण हस्तेन सङ्ग्रामे हन्तुमिच्छास ॥४॥

भाषार्थः।

(हे इन्द्र) आपने महान द्युलोक के शिखर को कंपाया है, आपने अपनी प्रगल्भ सामर्थ्य से शम्बर को चीर डाला, जो हर्षित (मन) से वेधड़क आप समूह वाले मायावी (वृत्रों को) तीक्ष्ण वज्र रूप हाथ से युद्ध में मारने की इच्छा करते हो ॥ ४ ॥

(१) शम्बर भी वृत्र का नामान्तर हैं। (देखो निघं० १।१०)

(२) समूह बांधे हुए मायावी वृत्र, जल को घेरने वाला धूलि का कण समूह है जिस को इन्द्र विद्युत रूपी तीक्ष्ण वज्र से जो इन्द्र का हस्त है मार कर जल को छुडाते हैं।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

नियद्वृणक्षिश्वसनस्यमूर्धनि
शुष्णस्यचिद्व्रन्दिनोरोरुवद्वना ।
प्राचीनेनमनसावर्हणावता यदद्या
चित्कृणवः कस्त्वापरि ॥५॥

नि	नि +	—
यत्	यत्	जो
वृणक्षि	नि+वृणक्षि, नितरांहिंसितवान् (लडर्थेलट्)	मार डाला
श्वसनस्य	वायोः	वायु के
मूर्धनि	उपरिप्रदेशे	ऊपर
शुष्णस्य	शुष्णम् (द्वितीयार्थेषष्ठी)	शुष्ण को
चित्	अपि	भी
व्रन्दिनः	समूहोपेतम् (द्वितीयार्थे षष्ठी)	समूह वाले को
रोरुवत्	गर्जयन्	गर्जाता हुआ
वना	जलानि (शेर्लोपः)	जलों को
प्राचीनेन	प्राचीनेन	प्राचीन से

मनसा	मनसा	मन से
बृहिणाऽवता	बलवता (भा०को)	बल वाले से
यत्	यत्	जो
अद्य	अद्य	आज
चित्	अपि	भी
कृणवः	करोषि (कृविकरणे, लेटिसि-प्यडागमः)	करते हो
कः	कः	कौन
त्वा	त्वाम्	तुझ को
परि	प्रति(बध्नाति)	रोक सक्ता है

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र!) यत् (त्वम्) वायोरुपरि प्रदेशे जलानि गर्जयन् (सन्) समूहोपेतमपि शुष्णं नितरांहिंसितवान् (स त्वम्) बलवता प्राचीनेन मनसा यदद्यापि (तत्कर्म) करोषि, कस्त्वां प्रति(बध्नाति) ॥५॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र) जो वायु के ऊपर देश में जलों

को गर्जते हुए आपने समूह बांधे हुए भी शुष्ण को मारा था (वह: आप) बल वाले प्राचीन मन से जो आज भी (उस कर्म को) करें तो कौन आपको रोक सक्ता है ॥ ५ ॥

मन्त्र का आशय यह है कि शोषण द्वारा प्रजा को पीड़ित करने वाले देव और मनुष्य के शत्रु को जैसे इन्द्र ने प्राचीनकाल में मारा था, यदि उस को मार कर अब भी हमारे देश में अनावृष्टि को दूर करें तो उन को रोकने वाला कौन है।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।१११।१११।१११।

त्वमाविथ नर्य्यंतुर्वशंयदुं त्वंतुर्वी-
तिंवय्यंशतक्रतो।त्वंरथमेतशंकृत्व्ये
धने त्वंपुरोनवतिंदम्भयोनव ॥६॥

त्वम्	त्वम्	तूने
आविथ	ररक्षिथ	रक्षित किया
नर्य्यम्	नृभ्योहितम् (हितार्थेयत्)	मनुष्यों के लिये हितकारी को

१ तुर्वशम्	तुर्वशम्	तुर्वश को
१ यदुम्	यदुम्	यदु को
त्वम्	त्वम्	तूने
१ तुर्वीतिम्	तुर्वीतिम्	तुर्वीति को
वय्यम्	वय्यकुलजम्	वय्यवंशी को
शतक्रतो०	हे बहु कर्म्मन्	हे बहुत कर्म वाले
त्वम्	त्वम्	तूने
रथम्	रथम्	रथ को
एतशम्	अश्वम् (निघं०१।१४)	घोडे को
२ कृत्व्ये	कर्मणि (निघं०२।१)	कर्म में
धने	धनसम्बन्धिनि	धन सम्बन्धी में
त्वम्	त्वम्	तू ने

पुरः	पुराणि	गढ़ों को
नवतिम्	नवतिम् +	—
दम्भयः	नाशितवान् (अडभावः)	नाश किया
नव	नवतिम् + नव नवनवतिसङ्ख्याकानि	निन्नानवे को

संस्कृतार्थः

हे बहुकर्म्मन् ! (इन्द्र !) त्वं मनुष्य हितकारिणं तुर्वशं रक्षितवान्, त्वं यदुम् (तथा) वय्यवंशोत्पन्नं तुर्वीतिम् (रक्षितवान्) (त्वम्) धन सम्बधिकर्मणि रथमश्वम् (च रक्षितवान्,त्वम्) नवनवति सङ्ख्याकानि पुराणि नाशितवान्। ६।

भावार्थः।

हे बहुत कर्म वाले (इन्द्र) आपने मनुष्योंके हितकारी तुर्वश की रक्षा की,आपने यदु की (और)वय्यवंशी तुर्वीति की (रक्षा की) आपने धन सम्बन्धी कर्म में रथ (और) घोड़ों की (रक्षा की) आपने निन्नानवें गढ़ों को नाश किया ॥ ६ ॥

(१) तुर्वश, यदु और तुर्वीति के लिये देखो पृ० ९४०

(२) धन सम्बन्धी कर्म युद्ध है जिस में शत्रु के धन की प्राप्ति होती है ॥

(३) निन्नानवे गढ़ जो वृत्र ने बादल रूप में अपनी रक्षा के लिए बनाए हुए थे अथवा तुर्वश, यदु और तुर्वीति, के शत्रु राजाओं के अनेक गढ़ जिन को इन्द्र ने नाश किया ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

सघाराजासत्पतिःशूशुवज्जनो
रातहव्यःप्रतियःशासमिन्वति। उ-
क्थावायोअभिगृणातिराधसा दान
रस्माउपरापिन्वतेदिवः। ७।

सः	सः	वह
घ	खलु	सचमुच
राजा	राजा	राजा
सत्ऽपतिः	सतांपालयिता	सत्पुरुषोंकापालक
शूशुवत्	वृद्धिप्राप्नोति (टियप्टौलइयेलट्, अडभावश्च)	वृद्धि को प्राप्त होता है

जनः	मनुष्यः	मनुष्य
रातऽहव्यः	दत्तहविष्कः(सन्)	हवि देकर
प्रति	प्रति +	–
यः	यः	जो
शासम्	शासनम्	नियम को
इन्वति	प्रति+इन्वति,अनु गच्छति (निघं०२।१४)	पीछे चलता है
उक्था	शस्त्राणि	स्तुति के गीतों को
वा	वा	अथवा
यः	यः	जो
अभिऽगृणाति	अभिनन्दयति (आ०को०)	सत्कार करता है
राधसा	धनेन	धन से
दानुः	समृद्धिः (आ०को०)	सम्पत्ति

अस्मै	अस्मै	इसके ताईं
उपरा	अधस्तात् (आ०को०)	नीचे की ओर
पिन्वते	परिस्रवति (आ०को०)	बहती है
दिवः	द्युलोकात्	द्युलोक से

संस्कृतार्थः।

स मनुष्यः खलु सतां पालयिता राजा (च भूत्वा) वृद्धिं प्राप्नोति यो दत्तहविष्कः (सन्) शासन मनुगच्छति अथवा यः शस्त्राणि धनेनाऽभिनन्दयति, अस्मै (पुरुषाय) द्युलोकादधस्तात् समृद्धिः परिस्रवति ॥ ७ ॥

भावार्थः।

सचमुच वह मनुष्य सत्पुरुषों का पालक (और) राजा (होकर) वृद्धि को प्राप्त होता है जो हवि देकर नियम पर चलता है, अथवा जो स्तुति के गीतों का धन से सत्कार करता है ऐसे (पुरुष) के लिये संपत्ति द्युलोक से नीचे की ओर बहती है ।७।

जो देवताओं को हवि देता हुआ उन के शासन पर चलता है, अथवा जो यज्ञ में वेद के स्तोत्रों को सुनकर पढ़ने वाले

ऋत्विजों का धन से सत्कार करता है वह मनुष्य सत्पुरुषों का पालक और राजा होकर वृद्धि को प्राप्त होता है और उसके लिये संपत्ति मूसलधार वर्षा की न्याई आकाश से नीचे को ओर बहती है ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

असमंक्षत्रमसमामनीषा प्रसोमपाअपसासन्तुनेमे। येतइन्द्रददुषोवर्धयन्ति महिक्षत्रंस्थविरंवृष्णयञ्च ॥८॥

असमम्	अनुपमम्	अतुल्य
क्षत्रम्	राज्यबलम्	राज्य का बल
असमा	अनुपमा	अतुल्य
मनीषा	बुद्धिः	बुद्धि
प्र	प्र+	-

सोमऽपाः	सोमपाः	सोम पीने वाले
अपसा	कर्म्मणा (निघं०२।१)	कर्म्म से
सन्तु	प्र + सन्तु अग्रे भवन्ति (लडर्थेलोट्)	आगे होते हैं
नेमे	एते (सा०मा०)	ये
ये	ये	जो
ते	तव	तेरे
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
दुदुषः	दत्तवतः	दानी के
वर्धयन्ति	वर्धयन्ति	बढ़ाते हैं
महि	महत्	बड़े को
क्षत्रम्	राज्य बलम्	राज्य के बल को
स्थविरम्	स्थिरम्	निश्चल को

वृष्ण्यम्	वृषत्वम्	पुंस्त्व को
च	च	और

संस्कृतार्थः ।

एते सोमपाः कर्मणा (सर्वेषाम्) अग्रे भवन्ति (एषाम्) राज्यबलमनुपमं बुद्धिः (च) अनुपमा (भवति), ये (सोमपाः) हे इन्द्र ! दत्तवतस्तव महत् राज्यबलं स्थिरं पुंस्त्वंच वर्धयन्ति ॥ ८ ॥

भावार्थः ।

ये सोम पीने वाले कर्मद्वारा(सब के) आगे होते हैं,(इनका)राज्य बल अतुल और बुद्धि अतुल (होती हैं),जो(सोम पीने वाले) हे इन्द्र ! आप दाताके बड़े राज्य बल और निश्चल पुँस्त्व को बढ़ाते हैं ॥८॥

" ये सोम पीने वाले" अर्थात् जो हम में से सोम यज्ञ करते हैं और उसके द्वारा दानी इन्द्र के बल और वीर्य्य को बढ़ाते हैं। वे सब के अगवैया होते हैं और उन का क्षत्र बल और बुद्धि अनुपम होती है ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।१।१।१।१।१।१।१।१।

तुभ्येदेतेबहुलाअद्रिदुग्धा प्रच-

मूषदश्चमसाइन्द्रपानाः । व्यश्नुहितर्पयाकाममेषा मथामनोवसुदेयायकृष्व ॥ ९ ॥

तुभ्य	तुभ्यम् (छान्दसोमलोपः)	तेरे लिये
इत्	एव	ही
एते	एते	ये
बहुलाः	प्रभूताः	बहुत
अद्रिऽदुग्धाः	ग्रावभ्योदुग्धाः	पथरों से दोहे हुए
चमूऽसदः	चमसेष्ववस्थिताः	चमस पात्रों में विद्यमान
चमसः	चम्यन्तेभक्ष्यन्त इतिचमसाःसोमाः	सोम

इन्द्रऽपानाः	इन्द्रस्यपान योग्याः	इन्द्रके पीने योग्य
वि	वि+	—
अश्नुहि	वि+अश्नुहि, भुङ्क्ष्व	भोगो
तर्पय	पूरय	पूर्ण करो
कामम्	अभिलाषम्	इच्छा को
एषाम्	एषाम्	इन की
अथ	अनन्तरम्	पीछे
मनः	मनः	मन को
वसुऽदेयाय	धनदानाय	धन देने के लिये
कृष्व	कुरुष्व (विकरणस्यलुक्)	करो

संस्कृतार्थः।

तुभ्यमेवैते प्रभृता ग्रावभ्यो दुग्धा, श्चमसेष्व-स्थिता इन्द्रस्यपानयोग्याः सोमाः (वर्त्तन्ते, तान्)

भुङ्क्ष्व (भुक्त्वा) एषाम् (सोमानाम्)अभिलाषं पूरय, अनन्तरम् (अस्मभ्यम्) धनंदातु मनः कुरुष्व ॥९॥

भावार्थः।

आपके लिए ही ये पत्थरों से दोहे हुए चमस पात्रों में रखे हुए इन्द्र के पीने योग्य, बहुत सोम (हैं, इनको) भोगो,भोग कर इन (सोमों) की इच्छा को पूर्ण करो, फिर (हम को) धन देने के लिए मन को (प्रवृत्त) करो ॥ ९ ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२॥

अपामतिष्ठद्धरुणह्वरंतमो ऽन्त

र्वृत्रस्यजठरेषुपर्वतः। अभीमिन्द्रो-

नद्योवव्रिणाहिता विश्वाअनुष्ठाःप्र-

वणेषुजिघ्नते ॥१०॥

अपाम्	जलानाम्	जलों की
अतिष्ठत्	अतिष्ठत्	ठैरा हुआ था

धरुणाऽह्वरम्	धारानिरोधकम्	प्रवाह के रोकने वाला
तमः	अन्धकारम्	अन्धकार
अन्तः	मध्ये	बीच में
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
जठरेषु	उदरेषु	उदरों में
पर्वतः	मेघः (निघं०१।१०)	बादल
अभि	अभि +	–
ईम्	(पूरणः)	–
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
नद्यः	(अपः नदनात्) (द्वितीयार्थेप्रथमा)	जलों को
वव्रिणा	आवरकेण	रोकने वाले से

हिताः	धृताः	पकडे हुए
विश्वाः	सर्वाः	सब को
१ अनुऽस्थाः	अनुक्रमेण तिष्ठन्तीः	अनुक्रम से ठहरे हुओं को
१ प्रवणेषु	निम्नप्रदेशेषु	नीचे स्थानों में
१ जिघ्नते	अभि+जिघ्नते प्रापितवान् (लिडर्थेलट्) (अन्तर्भावितण्यर्थः)	पहुंचा दिया

संस्कृतार्थः ।

(पूर्वं काले) जलानां धारा निरोधकमन्धकार-मतिष्ठत्, वृत्रस्योदर प्रदेशेषु मेघः (अभूत्) इन्द्रो ऽनुक्रमेण तिष्ठन्तीरावरकेण (वृत्रेण) धृताःसर्वा-अपो निम्नप्रदेशेषु प्रापितवान् ॥ १० ॥

भावार्थ ।

(पूर्वकाल में) जलों की धारा को रोकने वाला अन्धकार ठैरा हुआ था, (और) वादल वृत्र के उदर प्रदेशों में (थे), इन्द्र ने अनुक्रम से ठैरे हुए, रोकने वाले(वृत्र) से पकड़े हुए सब जलों को नीचे स्थानों में पहुंचा दिया ॥ १० ॥

इस मंत्र में ऋषि मनुष्यों की उत्पत्ति से पूर्व वृत्तान्तको देख रहे हैं, जिस का वर्णन सूक्त ३२ में है (देखो पृ० ७४७)

(१) अनुक्रम से ठैरे हुए अर्थात् जो बादलों की तह पर तह लगी हुई थी उन सब को इन्द्रने नीचे स्थान अर्थात् जहां पर अब समुद्र हैं वहां पहुंचा दिया।

(२) हमें अपनी समझ के लिये लट् का लिट् अर्थ करना पड़ताहै, ऋषि तो पूर्व वृत्तान्त को मन द्वारा उपस्थित की न्याईं देख रहे हैं इस लिये लट् का प्रयोग करते हैं।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुपूछन्दः ।११।११।११।११

सशेवृधमधिधाद्युम्नमस्मे महि
क्षत्रंजनाषाळिन्द्रतव्यम्। रक्षाचनो
मघोनःपाहिसूरीन् रायेचनःस्वप-
त्याइषेधाः ॥ ११ ॥

सः	सः	वह
शेऽवृधम्	सुखम् (निघं०३।६)	सुख को
अधि	अधि +	

धाः	अधि+धाः, स्थापय (लोडर्थेलुङ, अड भावश्च)	स्थापन करो
द्युम्नम्	यशः	यश को
अस्मे०	अस्मासु	हम में
महि	महत्	बड़े को
क्षत्रम्	राज्यबलम्	राज्य बल को
जनाषाट्	मनुष्याणामभिभावकम्	मनुष्यों के दबानेवाले को
इन्द्र	हे इन्द्र!	हे इन्द्र
तव्यम्	प्रवृद्धम् (तवतिर्वृद्ध्यर्थः)	बढे हुए को ,
रक्ष	रक्ष	रक्षा करो
च	च	और
नः	अस्माकम्	हमारे
१ मघोनः	धनवतः	धनवानों को

पाहि	पाहि	पालन करो
२ सूरीन्	स्तोतॄन् (निघं०३।१६)	स्तोताओं को
राये	ऐश्वर्याय (०को०)	ऐश्वर्य्यके लिये
च	च	और
नः	अस्मान्	हम को
सुऽअपत्यै	सुसन्तत्यै	उत्तम सन्तान के लिये
इषे	बलाय (आ०को०)	बल के लिये
धाः	स्थापय (डुधाञ्‌ धारणपोषणयोः)	स्थापन करो

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! सः (त्वम्) अस्मासु सुखं यशो मनुष्याणामभिभावकं प्रवृद्धं महत्क्षत्रबलम् (च) स्थापय अस्माकं धनवतो रक्ष स्तोतॄंश्च पाहि, अस्मानैश्वर्याय सुसन्तत्यै बलाय (च) प्रेरय ॥ ११ ॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र ! वह (आप) हम में सुख को, यश को, (और) मनुष्योंको दबाने वाले बढ़े हुए महान राज्य बल को स्थापन करो, हमारे धनवानों की रक्षा करो

और स्तोताओं का पालन करो,(और)हम को ऐश्वर्य्य उत्तम सन्तान और बल के लिए प्रेरण करो ॥११॥

(१) अपनी जाति के धनवानों की रक्षा के लिए भी प्रार्थना करनी चाहिये, क्योंकि ये विपत्ति के समय जाति की रक्षा करते हैं

(२)स्तोता ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिए भी प्रार्थना करनी चाहिए जो स्तुति द्वारा जाति के धन धर्म आदि सर्वस्व की रक्षा करते हैं।

इति चतुःपञ्चाशं सूक्तम्।

ऋ०मं०१ सू०५५

सव्य ऋषिः

विनियोग-यह सूक्त अतिरात्र यज्ञ के प्रथम पर्य्याय में मैत्रा वरुण के शस्त्र में पढ़ा जाता है (आ०श्रौ० सू०६।४।१०) और दशरात्रके द्वितीय छन्दोम के निष्केवल्यशस्त्र में भी पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू० ७।१।७।२३)

इस सूक्त में भी इन्द्र की स्तुति है—इन्द्र द्युलोक से भी चौड़े और पृथ्वीसे भी बड़े हैं जो उन की आज्ञा को उल्लंघन करता है, उसके लिये वह भयानक और सन्ताप कारी हैं,शूरवीर इन्द्र सदासे बलकर्म द्वारा स्तुति की इच्छा करते हैं,वह सब धनादि पदार्थों के धारण करने वालों के स्वामी हैं,और वीर्य्य द्वारा सब देवताओं से बढ़े हुये और सब के अगवैया हैं, जो इन्द्र से प्रेम करता है या जो उन की पूजा करता है उस की कामनाएं पूर्ण होती हैं, वानप्रस्थी भी इन्द्र की स्तुति करते हैं। इन्द्रही मनुष्यों को सग्राम में प्रेरण करते हैं, जिससे वे शूर होकर इन्द्र में श्रद्धा को धारण करें, मनुष्यों

को जल की प्राप्ति यश के चाहने वाले इन्द्र के ही वीर्य्ययुक्त कर्मों से हुई है, जब इन्द्र देने का मनसूबा करके अपने स्तोता की ओर अपना रथ फेरते हैं तो उनके चतुर सारथि कभी भूल नहीं करते और उन को शीघ्र भक्त के पास पहुंचाते हैं, इन्द्र दोनों हाथोंमें धन को और शरीर में असह्य बल को धारण किये हुए हैं, यह बल स्तुति करने वालों की स्तुति से उत्पन्न होता है, ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

दिवश्चिदस्यवरिमाविपप्रथ-
इन्द्रंनमह्नापृथिवीचनप्रति । भीम-
स्तुविष्माञ्चर्षणिभ्यआतपःशिशी-
तेवज्रंतेजसेनवंसगः ॥१॥

दिवः	द्युलोकात्	द्युलोक से
चित्	अपि	भी
अस्य	अस्य	इस की
वरिमा	पृथुता	चौड़ाई

वि	वि +	—
पप्रथे	वि+पप्रथेविशेषेण विस्तृता	विशेष फैली है
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
न	न	नहीं
मह्ना	महिम्ना	महिमा से
पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी
चन	अपि	भी
प्रति	(सादृश्ये) (आ०को०)	सदृश
भीमः	भयङ्करः	भयानक
तुविष्मान्	बलवान्	बली
चर्षणिऽभ्यः	मनुष्येभ्यः (निघ० २।३)	मनुष्यों के लिये
१ आऽतपः	सन्तापकारी	सन्ताप देने वाला

शिशीते	तनूकरोति (शो तनूकरणे व्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदम्, विकरणस्यश्लु-श्छान्दसः)	पैनाता है
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को
तेजसे	तैक्ष्ण्याय	तीखाकरनेकेलिये
न	इव	की न्याईं
वंसगः	वृषभः	वैल

सस्कृतार्थः ।

अस्य (इन्द्रस्य) पृथुता द्युलोकादपि विशेषेण विस्तृता, पृथिव्यपि महिम्नेन्द्र तुल्या न (अस्ति) भयङ्करो बलवान् मनुष्येभ्यः (च) सन्ताप कारी (इन्द्रः) वृषभ इव तैक्ष्ण्यार्थं वज्रं तनूकरोति । १ ।

भावार्थः ।

इस (इन्द्र) की चोडाई द्युलोक से भी विशेष फैली है, पृथिवी भी महिमा से इन्द्रके तुल्य नहीं (है) भयानक, बलवान (और) मनुष्यों के लिये सन्ताप देने वाला (इन्द्र) वैल की न्याईं वज्र को तीखा करने के लिए पैनाता है ॥१॥

(१) "मनुष्यों को संताप देने वाला" जो मनुष्य इन्द्र के शासन का उल्लंघन करते हैं उनके लिए वह ऐसे भयानक और संताप देने वाले हैं जैसे रुष्ट बैल सींगों को पैना कर संतापकारी होता है ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

सोअर्णवोननद्यःसमुद्रियः प्रति-
गृभ्णातिविश्रितावरीमभिः । इन्द्रः
सोमस्यपीतयेवृषायते सनात्सयु-
ध्मओजसापनस्यते ॥२॥

सः	सः	वह
अर्णवः	समुद्रः	समुद्र
न	इव	की न्याईं
नद्यः	नदीः (द्वितीयार्थे प्रथमा)	नदियों को
समुद्रियः	अन्तरिक्षे भवः	अन्तरिक्ष में रहने वाला

प्रति	प्रति+	–
गृभ्णाति	प्रति+गृभ्णाति प्रतिगृह्णाति	ग्रहण करता है
विऽश्रिता:	विसृताः (अपः)	फैले हुए [जलों] को
वरीमऽभिः	उरुत्वैः	विस्तारों से
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
सोमस्य	सोमस्य	सोम के
पीतये	पानार्थम्	पीने के लिये
वृषऽयते	वृषवदाचरति	बैल की तरह आचरण करता है
सनात्	चिरकालात्	सदा से
स:	सः	वह
युध्मः	योद्धा	योधा
ओजसा	बलकर्मणा	बल के कर्म से

पनस्यते	स्तुतिमिच्छति (पनस्तुतौ,व्यत्ययेना ऽऽत्मनेपदम्)	स्तुति की इच्छा करता है

संस्कृतार्थ ।

अन्तरिक्षेभवः स इन्द्रो विस्तृताः (अपः)समुद्रो नदीरिव (स्वकीयैः)विस्तारैःप्रतिगृह्णाति,पुनः सोमस्य पानार्थं वृषइवाऽऽचरति, स योद्धा चिरकालाद् बल कर्मणा स्तुतिमिच्छति ॥ २ ॥

भावार्थ

अन्तरिक्षमें रहने वाले वह इन्द्र फैले हुए (जलों) को (अपने) विस्तार द्वारा ग्रहण करते हैं जैसे समुद्र नदियों को, फिर सोम पीने के लिए बैल की न्याईं आचरण करते हैं वह जोधा सदा से बल कर्म द्वारा स्तुति की इच्छा करते हैं ॥ २ ॥

जो शक्ति सोमरस में है, वह अन्तरिक्ष के जलों से ही उतर कर सोमलता में प्रवेश हुई है । इसलिए कहा है कि इन्द्र अन्तरिक्ष में फैले हुए जलों को ग्रहण करके उन जलों में जो सोम है उसका बैल की न्याईं पी जाते हैं ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्द ।१२।१२।१२।१२॥

त्वंतमिन्द्रपर्वतंनभोजसे महो-

नृम्णस्यधर्म्मणामिरज्यसि। प्रवी-
र्य्येणदेवताऽतिचेकिते विश्वस्मा-
उग्रःकर्म्मणापुरोहितः ॥३॥

त्वम्	त्वम्	तू
तम्	तम्	उसके
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
पर्वतम्	मेघम् (निघं०१।१०)	मेघ को
न	इव	जैसे
१ भोजसे	भोगाय	भोग के लिये
मह:	महतः	महान के
नृम्णस्य	धनस्य (निघं०२।१०)	धन के
धर्म्मणाम्	धारयितृम् (द्वितीयार्थेषष्ठी)	धारण करने वालों को

इ॒र॒ज्यसि	राजाऽसि (इरज्यतिरैश्वर्य्यकर्म्मा) (निघं०२।२१)	राजा हो
प्र	प्रकृष्टम्	अत्यन्त
२ वी॒र्य्ये॑ण	वीर्य्येण	बलसे
दे॒वता॑	देवता	देवता
अति॑	अति+	—
चे॒कि॒ते॒	अति+चेकिते अतिरिच्यते (कितजीवने,अतिजीवति अतिरिच्यते। आ०को०)	बढ़कर है
विश्व॑स्मै	सर्वस्मै	सब के ताईं
उ॒ग्रः	भयानकः	भयानक
कर्म्म॑णे	कर्म्मणे	कर्म्म के ताईं
पु॒रः॑ऽहि॑तः	अग्रेनियुक्तः	अगवैया बनाया हुआ

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! त्वं तमेघमिव भोगाय महतो धनस्य धारयितृनिरज्यसि (सः) देवोवीर्य्येण प्रकृष्टमति रिच्यते, (सः) उग्रः सर्वस्मै कर्मणेऽग्रेनियुक्तः ॥३॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र आप जैसे उस मेघ के स्वामी हैं वैसेही भोग के लिए सब धन के धारण करने वालों के (भी) हैं (वह) देवता,बल द्वारा (सब से) अत्यन्त बढ़ कर हैं, (वह) भयानक सब कर्मों के लिए अगवैया बनाए हुए हैं ॥३॥

(१) भोग के लिए जो धनादि पदार्थों के धारण करने वाले हैं इन्द्र उन सबके स्वामी हैं जैसे जल रूपी धन को धारण करने वाले उस ऊपर दीखते हुए मेघ के (ज्योति रूपी धन को धारण करने वाले सूर्य्य के, सुवर्णादि धन को धारण करने वाले पृथिवी के इत्यादि)

(२) इन्द्र देवता अपने महान वीर्य्य द्वारा सब से अत्यन्त बढ़े हुए हैं ।

(३) जितने कठिन कर्म हैं, उन सब में बल द्वारा भयानक इन्द्र को ही देवता अपना अगवैया बनाते हैं ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः॥१२॥१२॥१२॥१२॥

सद्मनेनमस्युभिर्वचस्यते चा-

रुजनेषुप्रब्रुवाणइन्द्रियम् । वृषाछ-
न्दुर्भवतिहर्यतोवृषा क्षेमेणधेनां
मघवायदिन्वति ।४।

सः	सः	वह
इत्	एव	ही
१ वने	वने	वन में
नमस्युऽभिः	पूजयितृभिः (नमस्यतिःपरिचरण कर्मा निघ०३।५)	पूजने वालों से
वचस्यते	स्तूयते (सा० भा०)	स्तुति किया जाता है
चारु	शोभनम्	सुन्दर
जनेषु	मनुष्येषु	मनुष्यों में
प्रऽब्रुवाणः	प्रकटयन्	प्रकट करता हुआ

इन्द्रियम्	वीर्य्यम् (भा०को०)	बल को
वृषा	(कामानाम्) वर्षयिता	(कामनाओंके) बरसाने वाला
छन्दः	अर्चनीयः (छन्दतिरर्चतिकर्मा निघं०३।१४)	पूजने योग्य
भवति	भवति	होता है
हर्य्यतः	कामयितव्यः (हर्य्यकान्तौ)	कामना करने योग्य
वृषा	(कामानाम्) वर्षयिता	(कामनाओंके) बरसानेवाला
१ क्षेमेण	सुखेन	सुख से
धेनाम्	वाचम्	वाणी को
मघऽवा	धनवान्	धनवान
यत्	यदा	जब
इन्वति	प्राप्नोति (इन्वतिर्गतिकर्मा निघं० २।१४)	प्राप्त होता है

संस्कृतार्थः ।

सएव (इन्द्रः) मनुष्येषु शोभन वीर्य्यं प्रकटयन् वने (स्थितैः) पूजयितृभिः स्तूयते, अर्चनीयः (सः) (कामनाम्) वर्षयिता भवति, कामयितव्यः (सः) (कामानाम्) वर्षयिता (भवति) यदा धनवान् (इन्द्रः) सुखेन (स्तुति रूपाम्) वाचं प्राप्नोति ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

वह (इन्द्र) ही मनुष्यों में सुन्दर वीर्य्य को प्रकट करते हुए वन में पूजने वालों से स्तुति किए जाते हैं, पूजने योग्य वह (कामनाओं के) बरसाने वाले हैं, कामना करनेके योग्य वह (कामनाओं के) बरसाने वाले हैं जब धनवान (इन्द्र) सुख से स्तुति रूप वाणी को प्राप्त होते हैं ॥४॥

(१) वानप्रस्थी भी इन्द्र की ही स्तुति करते हैं, जैसे ग्राम में रहने वाले।

(२) जब इन्द्र को स्तुति प्राप्त होती है, तब पूजने और कामना करने के योग्य वह कामनाओं की वर्षा करते हैं।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

सइन्महानिसमिथानिमज्मना

कृणोतियुध्मओजसाजनेभ्यः । अ-

धाचनश्रद्दधतित्विषीमत इन्द्राय

वज्रंनिघनिघ्नतेवधम्॥५॥

सः	सः	वह
इत्	एव	ही
महानि	महतः	बड़ों को
समऽइथानि	सङ्ग्रामान् (निघ० २।१७)	युद्धों को
मज्मना	शोधकेन (टुमस्जो शुद्धौ)	शुद्ध करनेवाले से
कृणोति	करोति	करता है
युध्मः	योद्धा	जोधा
ओजसा	बलेन	बल से
जनेभ्यः	मनुष्येभ्यः	मनुष्यों के लिए
अध	अनन्तरम्	पीछे

चन	एव	ही
श्रत्	श्रद्धाम्	श्रद्धा को
दधति	धारयन्ति	धारण करते हैं
त्विषिऽमते	दीप्तिमते	दीप्तिमान के लिए
इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के लिए
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को
निऽघनिघ्नते	पुनःपुनःप्रहारं कुर्वते	वारवार मारने वाले के लिये
वधम्	वधरूपम्	वध रूप को

संस्कृतार्थः।

सएवयोद्धा (इन्द्रः) शोधकेन बलेन मनुष्येभ्यो महतःसङ्ग्रामान् करोति, अनन्तरमेव (मनुष्याः) दीप्तिमते वधरूपं वज्रं पुनः पुनः प्रहर्त्रे (तस्मै) इन्द्राय श्रद्धां धारयन्ति॥ ५ ॥

भाषार्थः।

वह ही योद्धा (इन्द्र) शुद्ध करने वाले बल से

मनुष्यों के लिए बड़े, युद्ध करते हैं इसके अनन्तरही (मनुष्य) दीप्तिमान (और) वध रूप वज्र से बार बार मारने वाले (उस) इन्द्र के ताईं श्रद्धा को धारण करते हैं ॥५॥

जब किसी मनुष्य जाति में अश्रद्धा रूपी अशुद्धि आजाती है तब इन्द्र उस को अपने शोधक बल द्वारा सग्राम में प्रेरण करते हैं, और जब उस जाति के लोग सग्राम में इन्द्र को मनुष्यों का वध करते हुए देखते हैं तब उन में श्रद्धा उत्पन्न होती है, और वह जाति फिर शुद्ध हो जाती है ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्द. ।१२।१२।१२।१२।

सहिश्रवस्युःसदनानिकृत्रिमा
क्ष्मयावृधानओजसाविनाशयन् ।
ज्योतींषिकृण्वन्नवृकाणियज्यवेऽव
सुक्रतुःसर्तवाअपःसृजत् ॥६॥

सः	स	वह
हि	एव	ही

श्रवस्युः	यशोऽभिलाषी	यशकाअभिलाष
सदनानि	गृहाणि	घरों को
कृत्रिमा	कृत्रिमाणि	कृत्रिमों को
क्ष्मया	पृथिव्या	पृथिवी से
वृधानः	वर्धमानस्य ("सुपांसुलुक्-" अ० ७।१।३९)	बढ़ते हुए के
ओजसा	बलेन	बल से
{ विऽनाशयन्	विनाशयन्	नाश करता हुआ
ज्योतींषि	ज्योतींषि	ज्योतियों को
कृण्वन्	कुर्वन्	करता हुआ
अवृकाणि	आवरकेण रहितानि	ढांपने वाले से रहितों को
यज्यवे	यष्ट्रे	यजमान के ताईं

अव	अव +	—
सुऽक्रतुः	सुकर्म्मा	सुकर्म्मा ने
सर्तवे	प्राप्तुम् (तुमर्थे तवे प्रत्यय)	प्राप्त होनेकेलिये
अपः	जलानि	जलों को
सृजत्	अव+सृजत् विसृष्टवान्	छोड़ा

संस्कृतार्थः।

सएव यशोऽभिलाषी सुकर्म्मा (इन्द्रः) पृथिव्या वर्धमानस्य कृत्रिमाणि गृहाणि वलेन विनाशयन् ज्योतींषि (च) आवरण रहितानि कुर्वन् यजमानाय प्राप्तुं जलानि विसृष्टवान् ॥ ६ ॥

भावार्थः।

उस ही यश के अभिलाषी सुकर्मा (इन्द्र ने) पृथिवी से बढ़ने वाले के कृत्रिम घरों को तोड़ते हुए (और) ज्योतिओं को आवरण रहित करते हुए, यजमान के ताईं प्राप्त होने के लिए जलों को छोड़ा ।६।

(१) पृथिवी से बढ़ने वाला धूलि का पुञ्ज है जिसके कृत्रिम घरों को तोड़ कर इन्द्र मनुष्य के लिए बहने को वर्षा रूपी जल छोड़ते हैं।

(२) इसी वृत्रने सूर्य चन्द्र और नक्षत्रादि ज्योतियों का प्रकाश पृथिवी तक पहुंचने से रोका हुआ था। (देखो पृ० ७१६)

इन्द्रोदेवताजगती छन्दः ।१२।१२।१२।१२।

दानायमनःसोमपावन्नस्तुते ऽर्वाञ्चाहरीवन्दनश्रुदाकृधि । यमिष्ठासःसारथयोयइन्द्रते नत्वाकेताआदभ्नुवन्तिभूर्णयः ॥७॥

दानाय	दानाय	देने के लिये
मनः	मनः	मन
सोमऽपावन्	हे सोमस्यपातः!	हेसोमकेपीने वाले
अस्तु	अस्तु	हो
ते	तव	तेरा
अर्वाञ्चा	अभिमुखौ (विभक्तेरात्वम्)	सामने

हरी॰	अश्वौ	घोड़ों को
वन्दनऽश्रुत्	हे स्तुतीनां श्रोतः!	हे स्तुतियोंके सुनने वाले
आ	आ+	–
कृधि	आ + कृधि, परिवर्तस्व	फेरो
यमिष्ठासः	अतिशयेन यन्तार अश्वनियमने कुशला इत्यर्थः	घोड़ों को रोकने में चतुर
सारथयः	सारथयः	सारथी
ये	ये	जो
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
ते	ते	वे
न	न	नहीं
त्वा	त्वाम्	तुझ को
केताः	ज्ञातारः (कित ज्ञाने)	जानने वाले
आ	आ +	–

दभ्नुवन्ति	आ + दभ्नुवन्ति भ्रमयन्ति	भरमाते हैं
भूर्णय:	शीघ्रकारिण: (ऋ०१।७३।४)	शीघ्रकारी

संस्कृतार्थः ।

हे सोमस्यपातः ! तवमनोदानायाऽस्तु,हे स्तुतीनांश्रोतः ! (निज-)अश्वौ (अस्मद्-) अभिमुखीकुरु, हे इन्द्र ! ये (अश्व-) नियमन कुशलाः तव सारथयः (सन्ति, अश्वविद्यायाः) ज्ञातारः शीघ्र कारिणः (च) ते त्वाम् (मार्गे) न भ्रमयन्ति ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे सोम के पीने वाले ! आपका मन दान के लिये हो, हे स्तुतियों के सुनने वाले ! (अपने) घोड़ों को (हमारे) सामने फेरो, हे इन्द्र ! घोड़ों को रोकने में चतुर जो (आपके) सारथी हैं (अश्व विद्या के)जानने (और)शीघ्रकारी वे आपको(रस्ता) नहीं भुलाते ।७

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

अप्रच्छितंवसुबिभर्षिहस्तयो रषा-
ह्ळंसहस्तन्विश्रुतोदधे । आवृता

सोऽवतासोनक्तृभि स्तनूषुतेक्रत

वइन्द्रभूरय: ॥८॥

अप्रऽच्चितम्	प्रक्षयरहितम्	क्षय से रहित को
वसु	धनम्	धन को
बिभर्षि	धारयसि	धारण करते हो
हस्तयो:	हस्तयो.	हाथों में
अषाह्ळम्	असह्यम् (षहमर्षणे)	न सहारे जाने वाले को
सह:	बलम्	बल को
तन्वि	शरीरे	शरीर में
श्रुत:	विख्यात:	विख्यात
दधे	धारयति (लडर्थेलिट्)	धारण करता है

आऽवृतासः	आविष्टानि (आ०को०) (जसोऽसुगागमः)	भरे हुए
अवतासः	जलाशयाः (आ०को०)	सरोवर
न	इव	जैसे
कर्तृऽभिः	(स्तुति-)कर्तृभिः	(स्तुति)करनेवालों से
तनूषु	शरीरेषु	अंगों में
ते	तव	तेरे
क्रतवः	बलानि	बल
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
भूरयः	बहूनि	बहुत

संस्कृतार्थः

हे इन्द्र ! (त्वम्) हस्तयोःक्षयरहितं धनं धारयसि विख्यातः(भवान्) शरीरेऽसह्यं बलं धारयति, (अपिच)

ऋ०मं०२९-३० अङ्कयोः शुद्धयशुद्धि पत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१२३१	११	द्रष्टुम	द्रष्टुम्
१२३३	४	भुरण्यन्तम्	भुरण्यन्तम्
१२३७	१८	यक्तिभिः	युक्तिभिः
१२३८	१६	पुचि	पुची
१२३९	८	सूर्य्यं	सूर्य्यां
१२४०	३	उत्ऽत॰	उत्ऽत
,,	११	ज्योतिरुपम्	ज्योतीरूपम्
१२४१	८	यथया	यथथा
,,	१०	दानादा।	दानाऽदा।
१२४२	१२	द्युलाकम्	द्युलोकम्
,,	१६	द्यलोक	द्युलोक
१२४३	८	यायुकी	यायुका
१२४४	२	स्थापन	समस्थापन
,,	१४	सारिकापु	सारिकासु
,,	१८	मनार्भो	मेनार्भो
१२४३	१८	मत्सूक्तम्	संसूक्तम्
१२५०	१९	इन्द्रं	इन्द्रं
१२५१	२	बल	बलै
१२५७	६	दृष्ये	दृष्ये
१२६२	९	मायाभ	मायाभि
१२६२	१६	शुष्णाऽ	शुष्णऽ
१२६४	२	रक्षा को	रक्षा की
१२६५	२२	करदयुक्ते	करक्षेयुक्त
१२६६	१२	पत्वम)	रात्वम्)
,,	१६	,,	,,
१२७०	६	मायो	मायो
,,	१९	उनका	उनको
१२७२	११	ग्राऽभभिः	ग्राऽभूमि
१२७८	२	स्रोतसा	स्रोतसा
,,	१०	वह्॰	वहू॰
१२८१	७	तुष्पय	तुष्णः
१२८२	११	श्लाकम्	श्लोकम्
,,	१३	रोदसे	रोदसे
१२८४	१४	कुर्वंत	कुर्वंत
१२८७	१५	यपः	यूपः
१२९०	११	इसमे	इसमें

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१२८२	५	गत्सूक्तम्	गंसूक्तम्
१२८३	१३	सुऽभ्व॑	सुऽभ्वः
१२८७	[illegible]	जर्हृषाणः	जर्हृषाणः
१२८८	२	वत्र	वत्र
,,	४	वृऽनी	वृऽनी
१३०१	८	मद्रन्	मुद्रन
१३०२	७	ऽमप	अपने
,,	१४	जतयः	छातयः
३०४	३	मरुदण	मरुदगण
१३०८	७	वृऽनम्	वृऽनम्
१३०८	१३	वणे	प्रवणे
१३१२	३	येन	यस्य
,,	२१	दन्द्व	द्वन्द्व
१३१४	११	थारथ	स्थापन
१३१६	१२	(सुगा	(असुगा
१३१८	१४	वज्रम	वज्रने
१३२३	४	विऽऽ	विऽष्णु
,,	८	मघसी	मघसा

ऋ०सं० अष्ट २७ २८ ।

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१२२३	१७	गत्सूक्तम	गंसूक्तम्

पुस्तक मिलने का पता–

मुन्शी जयराम, मैनेजर

ऋग्वेद संहिता मुलतान

अंक २३-२४]　　[ज्येष्ठ-आषाढ़ १९६६

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर व्याख्यान से युक्त

जिसको मुलतान निवासी पं० रुद्रदत्त शास्त्री की सहायता से शिवनाथ आहिताग्नि ने सम्पादन किया

लाहौर

पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में प्रिण्टर बाबा बालमन के अधिकार से छपा।

१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)

पहले २४ अंकों का मूल्य ५॥)

तव शरीरेषु बहूनि बलानि (स्तुतिं) कर्तृभिराविष्टानि (सन्ति) यथा जलाशयाः (बहुभिर्मनुष्यैराविष्टा भवन्ति) ॥८॥

भावार्थः॥

हे इन्द्र ! आप दोनों हाथों में क्षय रहित धन को लिए हुए हो, विख्यात (आप) शरीर में असह्य बल को धारण करते हैं (और) आपके शरीरों में बहुत बल (स्तुति) करने वालों द्वारा भरे हुए (हैं) जैसे सरोवर (बहुत मनुष्यों से घिरे हुए होते हैं) ।८।

अनेक स्तोताओं की स्तुति द्वारा इन्द्र के शरीरावयव इतने बलों से भरे हुए हैं जैसे सरोवरों के तट मनुष्यों से भरे हुए होते हैं। यह प्राचीन समय की वार्ता है आज कल तो स्तोताओं के अभाव से इन्द्र बलों से ऐसे शून्य हैं जैसे शुष्क सरोवर मनुष्यों से शून्य होता है।

इति पञ्चपञ्चाशं सूक्तम् ।

ऋ०मं०१ सू० ५६ ।

सव्य ऋषि ।

विनियोग—यह सूक्त विषुवत् के निष्केवल्यशस्त्र में पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू० उ० २ । ६ । १३) ।

इस सूक्त में भी इन्द्र की स्तुति है। जब इन्द्र का भक्त उन के लिये सोम को चमस पात्र में रखता है, तो वह अत्यन्त कामना पूर्वक उसके घर पर आते हैं और अपने रथको ठहरा कर सोमपान

करते हैं। जैसे धन की इच्छा करने वाले को समुद्रयात्रा में उद्योग करना पड़ता है वैसेही इन्द्रकी इच्छाकरने वालेको स्तुतिऔर पूजन में उद्योग करना पड़ता है। इन्द्र लोहे के शरीर वाले हैं और युद्ध में प्रहार करते हुए उनका बल पर्वत के शिखर की न्याई प्रकाशित होता है, इन्हों ने पृथिवी को सुखाने वाले शुष्ण को बेल से बांध कर कारागारमें रक्खाथा,जिस से फिर अनावृष्टि न हो। जब भक्त की स्तुति से इन्द्र का बल बढ़ता है तब वह अपने तीव्र प्रकाश से अन्धकार को नाश करते हैं और मेघों की उत्पत्ति के लिए धूलिको आकाश में उठाते हैं। आकाश की दिशाओं में जलों के धारण करने वाले इस अन्तरिक्ष को इन्द्र ने ही स्थापन किया है और वही वृत्र को मार कर जलों को बाढ़ को पृथिवी पर छोड़ते हैं। इन्द्र सोमके मद में वृत्र के पथरीले कोटों को तोड़ते हैं और उस से घिरे हुए जलों को छुड़ाते हैं ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

एषप्रपूर्वीरवतस्यचम्रिषो ऽत्यो-
नयोषामुदयंस्तभुर्वणिः । दक्षंमहे
पाययतेहिरण्ययं रथमावृत्याहरि-
योगमृभ्वसम् ।१।

एषः	एषः	यह
प्र	प्रकर्षेण	अत्यन्त
पूर्वीः	पूर्णानि (पृ पूरणे कु प्रत्यय.)	पूर्ण
अव	अव +	–
तस्य	तस्य	उसके
चम्रिषः	चमूषु चमसेष्ववस्थिताइषः,सोम रूपाणिहवींषि (चकारस्यरेफश्छां०)	चमसों में रखेहुए सोमरूप हवियों को
अत्यः	अश्वः (निघं० १।१४)	घोड़ा
न	इव	जैसे
योषाम्	(निज)पत्नीम् (वडवाम्)	घोड़ी को
उत्	उत्+	–
अयंस्त	उत्+अयस्त उत्तिष्ठति (लडर्थे लड)	उठता है

भुर्वणिः	शीघ्रकारी (भुरण्युरिति क्षिप्र नाम नि० २।१५)	शीघ्रता करने वाला
दक्षम्	बलरूपम् (सोमम्)	बलरूप (सोम) को
मंहे	महते (स्वात्मने)	महान (अपने) ताईं
पाययते	पाययते	पिलाता है
हिरण्ययम्	सुवर्णमयम्	सुवर्णमय को
रथम्	रथम्	रथ को
आऽवृत्य	अवस्थाप्य	ठैरा कर
हरिऽयोगम्	हर्य्योरश्वयोर्योगो योजनं यस्मिंस्तम्	दो घोड़ों से जुडे हुए को
ऋभ्वसम्	उरुभासम् (पृषोदरादित्वादभ्यसता देश॰)	विस्तीर्ण दीप्ति वाले को

संस्कृतार्थः ।

एषः(इन्द्रः)तस्य(यजमानस्य)चमसेष्ववस्थितानि प्रकर्षेण पूर्णानि सोमरूपाणि हवींषि(प्रति)शीघ्रकारी

(सन्) उत्तिष्ठति यथा वड़वाम्(प्रति) अश्वः[शीघ्रतयो त्तिष्ठति] (तदनन्तरं तस्य गृहे) अश्वाभ्यां युक्तं सुवर्णमयमुरुभासं रथमवस्थाप्य महते [स्वात्मने] बल रूपम्(सोमम्) पाययते ॥१॥

भावार्थः।

यह [इन्द्र]इस[यजमान]के चमस पात्रोंमें रखे हुए अत्यन्त पूर्ण सोमरूप हवियों के प्रति [ऐसी] शीघ्रता करते हुए उठते हैं जैसे घोड़ा घोडी(के प्रति शीघ्रतासे उठता है)[फिर उसके घर पर]दो घोड़ों से जुडे हुए सुवर्णमय विस्तृत दीप्ति वाले रथ को ठहरा कर महान्[अपने]को बलरूप(सोम) पान कराते हैं॥१॥

यह मन्त्र इन्द्र की सोमप्रियता को वर्णन करता है॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

तंगूर्तयोनेमन्निषःपरीणसः स-

मुद्रंनसञ्चरणेसनिष्यवः। पतिंद-

क्षस्यविदथस्यनूसहो गिरिंनवेना-

अधिरोहतेजसा।२।

तम्	तम्	उस को
गूर्तयः	स्तोतारः (गृणन्तिस्तुवन्ति)	स्तुति करनेवाले
नेमन्ऽइषः	नीत हविष्काः	जिन्हों ने हवियें पहुंचाई हैं
परीणसः	वहवः (निघं० ३।१)	वहुत
१ समुद्रम्	समुद्रम्	समुद्र को
न	इव	जैसे
सम्ऽचरणे	प्रवासे	परदेस यात्रा में
१ सनिष्यवः	धनमिच्छन्तः	धन की इच्छा करते हुए
पतिम्	स्वामिनम्	स्वामी को
दक्षस्य	वलस्य (निघं० २।९)	वलके
विदथस्य	यज्ञस्य (निघं० ३।१७)	यज्ञ के
नु	क्षिप्रम्	शीघ्र

सहः	बल रूपम्	बलरूप को
२ गिरिम्	पर्वतम्	पर्वत को
न	इव	जैसे
१ वेनाः	मेधाविनः (निघ० ३।१५)	बुद्धिमान
अधि	अधि+	–
रोह	अधि + रोह	चढ़
तेजसा	ओजसा	बल से

संस्कृतार्थः।

नीतहविष्का बहवः स्तोतारो बलस्य यज्ञस्य(च) स्वामिनंतम् (इन्द्रं प्राप्नुवन्ति) यथा धनमिच्छन्तः प्रवासे समुद्रम् (प्राप्नुवन्ति) [त्वमपि तम्] बल रूपं क्षिप्रमोजसाऽधिरोह यथा मेधाविनः पर्वतम् (अधिरोहन्ति) ॥ २ ॥

भाषार्थः।

जिन्हों ने हवियें दी हैं ऐसे बहुत स्तोता लोग बल (और) यज्ञ के स्वामी उस (इन्द्र) को (प्राप्त

होते हैं) जैसे धनको चाहनेवाले परदेसकी यात्रा में समुद्र को (प्राप्त होते हैं) (तू भी उस) बल रूप को शीघ्र बल पूर्वक चढ़ कर प्राप्त हो जैसे बुद्धिमान पर्वत को (प्राप्त होते हैं) ॥ २ ॥

(१) जैसे धन की इच्छा करने वालों की शरण समुद्र है (बहुत धन की प्राप्ति तभी होती है जब समुद्र के पार जा कर परदेसों में व्यवहार किया जावे) वैसे ही हवि देने वाले स्तोताओं की शरण इन्द्र हैं ॥

(१) बल रूप इन्द्र की प्राप्ति बल पूर्वक प्रयत्न से ही हो सक्ती है जैसे पहाड़ की चढ़ाई को बुद्धिमान बल पूर्वक प्रयत्न द्वारा तय कर लेते हैं

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ॥१२।१२।१२।१२॥

सतुर्वणिर्महाँअरेणुपौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्नभ्राजतेतुजाशवः । येनशुष्णंमायिनमायसोमदे दुध्रआभूषुरामयन्निदामनि ॥३॥

सः	सः	वह
तुर्वणिः	शीघ्रकारी (निघ० ४।२)	शीघ्रकारी
महान्	महान्	बड़ा
अरेणु	अनवद्यम्	दोष रहित
पौंस्ये	सङ्ग्रामे (निघ०२।१७)	युद्ध में
गिरेः	पर्वतस्य	पर्वत के
भृष्टिः	शिखरम्	शिखर
न	इव	की न्याईं
भ्राजते	दीप्यते	चमकता है
तुजा	प्रहारेण (आ०को)	प्रहार से
शवः	बलम्	बल
येन	येन	जिस से
शुष्णम्	शुष्णम्	शुष्ण को

मायिनम्	मायोपेतम्	मायावी को
आयसः	लोहमयः	लोहे के शरीर वाला,
मदे	मदे (सति)	मद के होने पर
दुध्रः	(शत्रूणाम्) अवरोधकः	(शत्रुओं को) रोक रखने वाला
आभुषु	कारागृहेषु	कारागारों में
रमयत्	नि+रमयत् व्यवासयत्	रखा था
नि	+नि	—
दामनि	बन्धके निगडे	बांधने की बेल में

संस्कृतार्थ।

सः शीघ्रकारी महान् [चास्ति] संग्रामे प्रहारेण [तस्य] अनवद्यं बलं पर्वतस्य शिखरमिव दीप्यते, येन[बलेन]लोहमयः [शत्रूणाम्] अवरोधकः [इन्द्रः] मायोपेतं शुष्णं कारागृहेषु बन्धके निगडे न्यवासयत् ॥ ३ ॥

भापार्थः।

वह (शीघ्रकारी) (और) महान हैं, युद्ध में प्रहार से (उनका) निर्दोष बल पर्वत के शिखरकी न्याई चमकता है जिस (बल)से लोहे के शरीर वाले (शत्रुओं को) रोक कर रखने वाले (इन्द्र ने) मायावी शुष्ण को कारागारों में बेल से (बांध कर) रक्खा था॥ ३॥

शुष्ण के लिए देखो पृ० २४९—शुष्णको बेल में बांध कर कारागार में रखना ऋषि की कल्पना है जिसका आशय पढ़ने या सुनने वाले के मन पर शत्रु को सब प्रकार से दबाने का संस्कार दृढ़ करने का है, वास्तव में न इन्द्र ने कोई युद्ध किए हैं न कोई उनका शत्रु हुआ है देखो ऋ० १०।५४।२।

"मायेत्साते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं न पुरा विवित्से"

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

देवीयदितविषीत्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसंनसूर्य्यः। योधृष्णुना शवसाबाधतेतम इयर्तिरेणुंबृहदर्हरिष्वणिः ।४।

दिवी	दीप्यमानम्	चमकता हुआ
यदि	यदा	जव
तविषी	वलम्	वल
त्वाऽवृधा	त्वयावर्धितम् (विभक्तेरात्वम्)	तुझसे वढाये हुए को
ऊतये	रक्षाऽर्थम्	रक्षा के लिए
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
सिसक्ति	सेवते (यास्कः)	सेवन करता है
उषसम्	उषसम्	उषा को
न	इव	जैसे
सूर्यः	सूर्यः	सूर्य
यः	यः	जो
धृष्णुना	धर्षकेण	दवाने वाले से
शवसा	वलेन	वल से

बाधते	नाशयति	नाश करता है
तमः	अन्धकारम्	अन्धकार को
इयर्ति	प्रेरयति	उठाता है
रेणुम्	धूलिम्	धूलि को
बृहत्	प्रभूतम्	बहुत
अर्हरिऽस्वनिः	अरो गच्छन्तो हरन्तीत्यर्हरयः शत्रवः तेषां व्यथोत्पादनेन स्वनयिता शब्दयिता	शत्रुओं में आर्त नाद को उठाने वाला

संस्कृतार्थः ।

(हे स्तोतः!) रक्षाऽर्थं त्वया वर्धितं दीप्यमानं वलं यदा सूर्यंउपसमिवेन्द्रं सेवते (तदा सः) शत्रूणां शब्दयिता धर्षकेण बलेन अन्धकार नाशयति प्रभूतं धूलिम् [च] प्रेरयति ॥४॥

भावार्थ ।

[हे स्तोता] रक्षा के लिए तुझ से बढ़ाया हुआ दीप्यमान बल जब इन्द्र को सेवन करता है जैसे

सूर्य उषा को, [तव वह] शत्रुओं में आर्तनाद को उठाने वाले दबाने वाले बल से अन्धकार का नाश करते हैं [और] बहुत धूलि को प्रेरण करते हैं ॥ ४ ॥

जब स्तोता की स्तुति से इन्द्र में बल होता है, तब वह उस बल से अन्धकार को नाश करके तीव्र प्रकाश से वायु के वेग को बढ़ा कर बहुत धूलि को आकाश में प्रेरण करते हैं, जिससे बादलों की उत्पत्ति होकर वृष्टि हो ॥

इन्द्रो देवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

वियत्तिरोधरुणमच्युतंरजोऽतिष्ठिपोदिवआतासुबर्हणा ॥ स्वर्मीह्ळेयन्मदइन्द्रहर्ष्याऽहन्वृत्रंनिरपामौब्जोअर्णवम् ।५।

वि	वि+	
यत्	यत्	जो
तिरः	तिरः	आर पार

धरुणम्	धारकम्	धारण करने वाले को
अच्युतम्	दृढम्	दृढ को
रजः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
अतिस्थिपः	वि+अतिस्थिप स्थापितवान्	स्थापन किया
दिवः	आकाशस्य	आकाश के
आतासु	दिक्षु (निघ० १।६)	दिशाओं में
बर्हणा	बलवान् (आ०को०) (विभक्तेर्डादेशः)	बलवान्
स्वः॒ऽमीह्ळे	ज्योतिषेकृते सङ्ग्रामे (मीह्ळे इतिसङ्ग्रामनाम निघ०२।१७)	ज्योति के लिए किये हुए युद्ध में,
यत्	यत्	जो
मदे	मदे (सति)	मद के होने पर
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र

हर्ष्या	हर्षेण (सा०भा०)	हर्ष से
अहन्	हतवान्	तूने मारा
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
निः	निः+	—
अपाम्	अपाम्	जलों के
औब्जः	निः+औब्जः अधः पातितवान् (आ० को०)	नीचे गिराया
अर्णवम्	आप्लावम् (आ०को०)	बाढ को

संस्कृतार्थः।

हे इन्द्र ! यद्बलवान् [त्वम्] आकाशस्य दिक्षु [जलानाम्] धारकं दृढमन्तरिक्षं तिरः स्थापितवान् यन्मदे [सति] ज्योतिषे कृते संग्रामे हर्षेण वृत्रं हतवान्, जलाप्लावम् [च] अधः पातितवान् ॥ ५ ॥

भाषार्थः।

हे इन्द्र! जो बलवान (आपने) आकाश की दिशाओं में (जलों के) धारण करने वाले दृढ़ अन्तरिक्ष को

ओर पार स्थापन किया, जो मद के होने पर, ज्योति के निमित्त किए हुए युद्ध में हर्ष से वृत्र को मारा और जलों की बाढ को नीचे गिराया ॥ ५ ॥

(१) "आर पार" अर्थात पृथिवी के चौफेरे ॥

(२) ज्योति के निमित्त किया हुआ युद्ध जो प्रथमज वृत्र से करके सूर्य्य के प्रकाश को पृथिवी तक पहुंचाया था ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

त्वंदिवोधरुणंधिषओजसा पृ-

थिव्याइन्द्रसदनेषुमाहिनः। त्वं-

सुतस्यमदेअरिणाअपो विवृत्रस्यस-

मयापाष्यारुजः।६।

त्वम्	त्वम्	तूने
दिवः	द्युलोकात्	आकाश से
धरुणम्	उदकम् (निघ० १।१२)	जल को

धिषे	स्थापितवान्	स्थापन किया
ओजसा	बलेन	बल से
पृथिव्याः	पृथिव्याः	पृथिवी के
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
सदनेषु	प्रदेशेषु	प्रदेशों में
माहिनः	प्रवृद्धः	बढ़ा हुआ
त्वम्	त्वम्	तूने
सुतस्य	निष्पीडितस्य (सोमस्य)	सोम के
मदे	मदे	मद में
अरिणाः	वि+अरिणाः, विमोचितवान्	छुड़ाया
अपः	जलानि	जलों को
वि	वि +	–

वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
समया	सीमारूपाणि (आ को०) (शेर्लोप)	सीमारूप
पाष्या	पाषाणवेष्टनानि (शेर्लोप)	पत्थर के कोटोंको
अरुजः	खण्डितवान् (रुजोभङ्गे)	तोड दिया

संस्कृतार्थः

हे इन्द्र ! प्रवृद्धस्त्वं बलेन द्युलोकात् पृथिव्याः प्रदेशेषु जलं स्थापितवान् त्वं निष्पीडितस्य [सोमस्य] मदे [वृत्र सकाशात] जलानि विमोचित वान् वृत्रस्य सीमा [रूपाणि] पाषाणवेष्टनानि [च] खण्डितवान् ॥ ६ ॥

भावार्थ ।

हे इन्द्र ! बढे हुए आपने बल द्वारा द्यो से पृथिवी के स्थानों में जल को स्थापन किया, आपने निचोड़े हुए(सोम) के मद में(वृत्र)से जलोंको छुडाया और वृत्र के सीमा रूप पत्थर के कोटों को तोड़ दिया ॥ ६ ॥

इति षट् पञ्चाशं सूक्तम् ।

ऋ० मं०१ सू०५७।

सव्यऋषिः।

विनियोग—यह सूक्त विषुवत् के निष्केवल्य शस्त्र में पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू० उ० २।६।१३)

इस सूक्त में भी इन्द्र की स्तुति है। इन्द्र सब से अधिक दानी सब से अधिक धन वाले और सच्चे बल वाले हैं हम उन्हीं को अपनी बुद्धि भेंट करें। इन्द्र के ही धन दान से सब मनुष्यों को बल मिलता है। जब से इन्द्र का वज्र वृत्र को प्रहार करने में कटिबद्ध है तब से लोग उनके पूजने में प्रवृत्त हुए हैं। इन्द्र का नाम, स्थान, बल और दीप्ति दूसरों के उपकार के लिए हैं, जिनको सुन कर मनुष्य बल को प्राप्त करें। हम इन्द्र के हैं और उन्हीं के आश्रय पर विचरते हैं उन से दूसरा लौकिक राजादि हमारी स्तुति को नहीं प्राप्त हो सकता, हमारी वाणी उन को प्रिय हो। इन्द्र में बहुत वीर्य है, वह अपने उपासक की कामना को पूर्ण करेंगे, महान द्युलोक ने भी इन्द्र के वीर्य को माना है और पृथिवी उन के बल के सामने झुकी है"। सचमुच इन्द्र का बल अद्वितीय है।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः। १२।१२।१२।१२

प्रमंहिष्ठायबृहतेबृहद्रये सत्य-

शुष्मायतवसेमतिंभरे। अपामिव-

प्रवणेयस्यदुर्धरं राधोविश्वायुशवसे
अपावृतम् ।१।

प्र	प्र+	–
मंहिष्ठाय	अतिशयेनदान युक्ताय (मंहतिर्दानकर्मा निघ०३।२०)	अत्यन्त दानी के ताईं
बृहते	महते	महान के ताईं
बृहत्ऽरये	महाधनिने	महाधनी के ताईं
सत्यऽशुष्माय	सत्यबलाय	सच्चे बली के ताईं
तवसे	प्रवृद्धाय	बहुत बढ़े हुए के ताईं
मतिम्	बुद्धिम्	बुद्धि को
भरे	प्र+भरे, निवेदयामि	भेंट करता हूं

अपाम्ऽइव	उदकानामिव	जैसे जलों का
प्रवणे	निम्नप्रदेशे ।	नीचे स्थान में
यस्य	यस्य	जिसका
दुःऽधरम्	धर्तुमशक्यम्	धारण करने को अशक्य
राधः	धनम्	धन
विश्वऽआयु	सर्वमनुष्यसम्बन्धि (आयुरितिमनुष्यनाम निघं०२।३)	सब मनुष्यों सम्बन्धी
शवसे	बलाय	बल के लिए
अपऽवृतम्	आवरणरहितं कृतम्	प्रकाशित किया गया

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) अतिशयेन दानयुक्ताय महाधनिने सत्यबलाय महते प्रवृद्धाय(चेन्द्राय) बुद्धिं निवेदयामि यस्य (बलम्) निम्नप्रदेशे (गच्छताम्) उदकानाम् (वेगः) इव धर्तुमशक्यम् (येनच) सर्वमनुष्य सम्बन्धि धनं बलायाऽऽवरणरहितं कृतम्।१।

भावार्थः ।

अत्यन्त दानी महाधनी सच्चे बली महान (और) बढ़े हुए (इन्द्र के) ताईं मैं बुद्धि को भेंट करता हूं, जिस का (बल) नीचे स्थान में (जाते हुए) जलों के (वेग) की न्याईं धारण नहीं किया जा सकता और जिस ने सब मनुष्यों के धन को बल के लिये प्रकाशित किया है ॥१॥

१ जो सब से अधिक धन वाले, सब से अधिक बल वाले और सब से अधिक दानी हैं। ऐसे इन्द्र को अपनी बुद्धि समर्पण करने में क्या भय है, भय तो दूसरे मनुष्य को अपनी बुद्धि भेंट करने में है, चाहे वह कैसा ही विद्वान और महात्मा क्यों न हो, इन्द्र को श्रद्धा पूर्वक ऐसा कहने से कि 'हे देव मैं अपनी बुद्धि आप को समर्पण करता हूं मुझे आदेश दें मैं उस पर चलूंगा, अवश्य शनैः शनैः ज्ञान की स्फुर्ति होती है उसी पर चलना मनुष्यके लिए श्रेयस्कर है, चाहे वह ज्ञान लौकिकबुद्धि से विपरीत भी हो।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

अधते विश्वमनुहासदिष्टय आ-

पोनिम्नेवसवनाहविष्मतः। यत्पर्व-

तेनसमशीतहर्यत इन्द्रस्यवज्रःश्न-

थिताहिरण्ययः ।२।

अध	अथ,अनन्तरम् (यस्यधत्वंछान्द०)	पीछे
ते	तुभ्यम्	तेरे लिये
विश्वम्	जगत्	जगत
अनु	अनु +	–
ह	खलु	सचमुच
असत्	अनु + असत्, प्रवृत्तोऽभवत्	प्रवृत्त हुआ
इष्टये	यागाय	यज्ञ के ताईं
आपः	आपः	जल
निम्नाऽइव	अधोदेशंगच्छन्त्यइव शेर्लोपः) ;	नीचे जाते हुए जैसे
सवना	यज्ञाः (शेर्लोपः)	यज्ञ

हविष्मतः	हविर्युक्तस्य	हवि से युक्त के
यत्	यदा	जब
पर्वते	वृत्रे (निघ० १।१०).	वृत्र पर
न	न	नहीं
सम्ऽअशीत	संसुप्तोऽभवत्	सोया
हर्यतः	शोभनः (सा०भा०)	सुन्दर
इन्द्रस्य	इन्द्रस्य	इन्द्र का
वज्रः	वज्रः	वज्र
श्नथिता	हिंसकः	मारने वाला
हिरण्ययः	सुवर्णमयः	सुवर्ण मय

संस्कृतार्थः।

(हे इन्द्र!)यदा हिंसकः सुवर्णमयःशोभनस्तववज्रो वृत्रे(प्रहाराय) संसुप्तोनाऽभवत् (तद्-)अनन्तरं जगत्

त्वंदर्थं यागाय प्रवृत्तो बभूव. हविर्युक्तस्य (यजमान समूहस्य) यज्ञाः (च) अधोदेशं गच्छन्त्य आप इव (त्वां प्राप्नुवन्) ॥ २ ॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र! जब आपका मारने वाला सोने का सुन्दर वज्र वृत्र पर (प्रहार के लिये) नहीं सोया (तिससे) पीछे जगत् आपके लिए यज्ञ में प्रवृत्त हुआ, (और) हवि से युक्त (यजमानों) के यज्ञ नीचे की ओर जाते हुए जलों की न्याईं (आप को प्राप्त हुए) ॥२॥

जब से इन्द्र का वज्र वृत्र पर प्रहार करने के लिये नहीं सोया अर्थात् जागृत रह कर प्रहार करता रहा है तब से अर्थात सृष्टिके आदि से ही लोग इन्द्र के पूजन में प्रवृत्त हुए हैं। क्योंकि इन्द्र का वज्र मनुष्य सृष्टि से पहले ही वृत्र पर पड़ने लगा है। (देखो पृष्ठा७४७)

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

अस्मैभीमायनमसासमध्वर उ-
षोनशुभ्रआभरापनीयसे । यस्यधा-
मश्रवसेनामेन्द्रियं ज्योतिरकारिह-
रितोनायसे ।३।

अस्मै	अस्मै	इसके लिये
भीमाय	भयङ्कराय	भयानक के लिये
नमसा	नमस्कारेण	नमस्कारके साथ
सम्	सम्+	–
अध्वरे	यज्ञे	यज्ञमें
१ उषः	हे उषः!	हे उषा
न	सम्प्रति (अस्त्युपमार्थस्य सम्प्रत्यर्थप्रयोगइतियास्कः)	अब
शुभ्रे	हे उज्ज्वल रूपे!	हे उज्ज्वल रूप वाली
आ	आ+	–
भर	आ+भर,सम्पादय	सम्पादन करो
पनीयसे	अतिशयेन स्तोतव्याय	अतिशय करके स्तुतिके योग्य के लिये

यस्य	यस्य	जिसका
धाम	स्थानम्	स्थान
श्रवसे	श्रवणाय (भा०को०)	सुनने के लिये
नाम	नाम	नाम
इन्द्रियम्	बलम्	बल
ज्योतिः	दीप्तिः	प्रकाश
अकारि	अकारि	किया गया
हरितः	अश्वाः	घोड़े
न	इव	जैसे
अयसे	गमनाय	जाने के लिये

संस्कृतार्थः ।

हे उज्ज्वलरूपे ! हे उषः ! अतिशयेन स्तोतव्याय भयङ्करायाऽस्मै (इन्द्राय) सम्प्रति यज्ञे नमस्कारेण

(हविः) सम्पादय, यस्य नाम, स्थानं बलं दीप्तिः (च) श्रवणार्थ मकारि यथाऽश्वा गमनाय (कृताः) ॥३॥

भावार्थः ।

हे उज्ज्वल रूप वाली उषा ! अतिशय करके स्तुति के योग्य इस भयानक (इन्द्र के) ताईं अत्र यज्ञ में नमस्कार के साथ (हवि को) सम्पादन करो, जिस का नाम स्थान, बल (और) दीप्ति सुनने के लिये बनाए गए हैं जैसे घोड़े चलने के लिये ॥३॥

१ उषःकाल में हमारी हवि को उषादेवी इन्द्र के लिए सम्पादन करें, अर्थात् हमें नित्य हविः सम्पादन करने के लिए प्रेरण करें ।

२ इन्द्र का स्थान, नाम, बल और दीप्ति ये सब दूसरों के उपकार के लिये बनाए गए हैं जिससे मनुष्य इन को सुन कर दैवी गुणों से युक्त हों। जैसे घोड़े इसलिये बनाए गए हैं कि मनुष्य उनके द्वारा गमन करें, और जैसे घोड़ों को यात्रा का फल चढ़ने वालों के लिए है वैसे ही इन्द्र के गुण इस लिए हैं कि उनके श्रवण और कीर्तन से मनुष्य लाभ उठावें ।

इन्द्रो देवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२

इमंतइन्द्रतेवयंपुरुष्टुत येत्वा-

रभ्यचरामसिप्रभूवसो । नहित्वद-

यस्य	यस्य	जिसका
धाम	स्थानम्	स्थान
श्रवसे	श्रवणाय (आ०को०)	सुनने के लिये
नाम	नाम	नाम
इन्द्रियम्	बलम्	बल
ज्योतिः	दीप्तिः	प्रकाश
अकारि	अकारि	किया गया
हरितः	अश्वाः	घोड़े
न	इव	जैसे
अयसे	गमनाय	जाने के लिये

संस्कृतार्थः ।

हे उज्ज्वलरूपे ! हे उषः ! अतिशयेन स्तोतव्याय भयङ्करायाऽस्मै (इन्द्राय) सम्प्रति यज्ञे नमस्कारेण

प्रभुऽवसो॰	हे प्रभूतधन !	हे बहुत धन वाले
नहि	नहि	नहीं
त्वत्	त्वत्तः	तुझसे
१ अन्यः	अन्यः	और
गिर्वणः	हे स्तुतिभिः सं-सेव्य !	हे स्तुतियों से सेवन करने योग्य
गिरः	स्तुतीः	स्तुतियों को
सघत्	प्राप्नोति (सघतेर्लेटिरूपंविकरण-स्यचलुक्)	प्राप्त होता है
१ क्षोणीःऽइव	पृथिवीव (सुलोपाऽभाव श्छान्दसः)	पृथिवी की न्याईं
प्रति	प्रति+	–
नः	अस्माकम्	हमारे
हर्य	प्रति+हर्य काम यस्व	प्यार करो

न्योगिर्वणोगिरःसघत् क्षोणीरिव-

प्रतिनोहर्य्यतद्वचः ।४।

इमे	इमे	ये
ते	तव	तेरे
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
ते	ते	वे
वयम्	वयम्	हम
पुरुऽस्तुत	हे बहुभि-स्तुत !	हे बहुतों से स्तुति किये गए
ये	ये	जो
त्वा	त्वाम्	तुझ को
आऽरभ्य	आश्रित्य	आश्रय बनाकर
चरामसि	विचरामः (इदन्तोमसीतिमस-इकारऽऽगमः)	विचरते हैं

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ॥१२॥१२॥१२॥१२,

भूरितइन्द्रवीर्य्यं१तवस्मस्य स्य-
स्तोतुर्मघवन्काममापृण । अनुते-
द्यौर्बृहतीवीर्य्यंमम इयंचतेपृथिवी-
नेमओजसे ॥४॥

भूरि	प्रभूतम्	बहुत
ते	तव	तेरा
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
वीर्यम्	वीर्य्यम्	वीर्य्य
तव	तव	तेरे
स्मसि	स्मः (मसइकाराऽऽगमः)	हम हैं

तत्	तत्	उसको
वचः	वचः	वचन को

संस्कृतार्थः।

हे बहुभिःस्तुत ! प्रभूतधन ! इन्द्र ! ये [वयम्] त्वामाश्रित्य विचरामस्तइमे वयं तव(स्मः)हे स्तुतिभिः संसेव्य ! त्वत्तोऽन्यः (अस्मत्-) स्तुतीर्नहि प्राप्नोति (त्वम्). अस्माकंतत् (स्तुतिरूपम्)वचः कामयस्व, यथापृथिवी (स्वकीयानि भूतानि कामयते) ॥ ४ ॥

भावार्थः।

हे बहुतों से स्तुति किये गये, बहुत धन वाले इन्द्र ! जो हम आपको आश्रय बना कर विचरते हैं वे ये हम आप के हैं हे स्तुतियों से सेवन करने योग्य ! आपसे दूसरा (हमारी) स्तुतियों को नहीं प्राप्त होता आप उस (स्तुतिरूप) हमारे वचन को प्यार करो जैसे पृथिवी (अपने जीवों को प्यार करती है) ॥ ४ ॥

(१) पृथिवी अपने जीवों को प्यार करती है, इसीलिए उनको अपने ऊपर धारण करती है और उनके पोषण के लिए अन्न आदि को उत्पन्न करती है।

(२) दूसरा अर्थात लौकिक राजा आदि।

इयम्	इयम्	यह
च	च	और
ते	तव	तेरे
पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी
नेमे	प्रह्वीबभूव	झुकी है
ओजसे	बलाय	बल के सामने

हे धनवन् ! (वयम्) तव स्मः (त्वम्) अस्य स्तोतुरभिलाषं पूरय, हे इन्द्र ! तव बलं प्रभूतम् (अस्ति, यतः) महान् (अपि) द्युलोकस्तव बलमन्वमंस्त, इयं पृथिवी च तव बलाय प्रह्वीबभूव॥५॥

भावार्थः।

हे धनवाले ! हम आपके हैं, आप इस स्तोता की कामना को पूर्ण करो हे इन्द्र ! आपका बल बहुत (है क्योंकि) महान द्युलोक ने (भी) आपके बल को माना है, और पृथिवी आपके बलके सामने झुकी है॥५॥

अस्य	अस्य	इसकी
स्तोतुः	स्तोतुः	स्तोता की
मघऽवन्	हे धनवन् !	हे धनवाले
कामम्	अभिलाषम्	कामना को
आ	आ+	–
पृण	आ+पृण,पूरय	पूर्ण करो
अनु	अनु+	–
ते	तव	तेरे
द्यौः	द्युलोकः	द्युलोक ने
बृहती	महान्	महान
वीर्यम्	पराक्रमम्	पराक्रम को
ममे	अनु+ममे, अन्वमस्त	माना है

वज्रेण	वज्रेण	वज्र से
वज्रिन्	हे वज्रिन्	हे वज्रधारी
पर्वऽशः	पर्वणि पर्वणि	प्रत्येक जोड़ में
चकर्तिथ	छेदितवान् (कृती छेदने)	काट डाला
अव	अव+	—
असृजः	अव+असृजः, विसृष्टवान्	छोड़ा है
निऽवृताः	निरुद्धाः	रुके हुओं को
सर्तवै	(अधः) गमनाय (सृगतौ तवै प्रत्ययः)	गिरने के लिए
अपः	अपः	जलों को
सचा	वस्तुतः	सच मुच
विश्वम्	सर्वम्	सम्पूर्ण को
दधिषे	धारितवानसि	तूने धारण किया

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२।

त्वंतमिन्द्रपर्वतंमहामुरुं वज्रेण-
वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ। अवासृजो-
निवृता:सर्तवाअपः सत्राविश्वंदधि
षेकेवलंसहः।६।

त्वम्	त्वम्	तूने
तम्	तम्	उसको
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
पर्वतम्	वृत्रम् (निघं०१।१०)	वृत्र को
महाम्	महान्तम् (नकारतकारयोर्लोपश्छान्दसः)	महान को
उरुम्	विस्तीर्णम्	फैले हुए को

ऋ० मं० १ सू० ५८।

नोधा ऋषिः।

विनियोग—यह सूक्त अभिप्लवपडह के पांचवें दिन आग्नि मारुत शस्त्र में पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू० उ० १।७।८)

पहले पांच मंत्र प्रातरनुवाक में आग्नेय क्रतु के आश्विन शस्त्र सम्बन्धी जगतीछन्द में भी पढ़े जाते हैं (आ० श्रौ० सू० ४।१३।७)

इस सूक्त में अग्नि की महिमा और उन की भक्ति के फल का वर्णन है। जब यजमान अग्नि को यथाविधि स्थापन करके उन को होता और दूत रूप से वरचुका, तो उसके लिये क्लेश में पड़ना असम्भव है। अग्निही सूर्यरूपमें अन्तरिक्ष को प्रत्यक्ष करते हैं,वही यजमान के लिए देवताओं का पूजन करते हैं। उत्पन्न होतेही अग्निदेव तृणआदि भोजनसे बल को प्राप्त करके काष्ठोंमें प्रवेश करते हैं, और घी से सींची हुई इन की चिकनी पीठ घोड़े की पीठ की न्याईं चमकती है यह अग्निदेव, वसु रुद्रआदि सब देवताओं के अगवैया होकर यज्ञ में होता बन कर बैठते हैं, और जैसे प्रजाओं में राजा का रथ दौड़ कर सब से कर इकट्ठा करता है इसी प्रकार अग्निदेव मनुष्यों से उत्तम हवियों को प्राप्त करते हैं। जब अग्निदेव वायु से प्रेरित होकर वन में प्रवेश करते हैं, तो बड़ा शब्द करते हुए दांतों रूपी जिह्वाओं से सारे वन को भक्षण कर जाते हैं और जहां पहले वन था वहां एक काला रस्ता रह जाता है। गौओं में सांड की न्याईं जब अग्निदेव वन में पैरते हैं तो स्थावर और जंगम सब भयभीत होजाते हैं। देवताओं के इस सुखकारी मित्र और मनुष्यों के पूज्य अतिथि को भृगुओं ने एक सुन्दर धन के कोश की न्याईं मनुष्यों में स्थापन किया है। जिस अग्नि को सात ऋत्विज यज्ञ में वरते

केवलम्	अद्वितीयम्	अद्वितीय को
सहः	बलम्	बल को

संस्कृतार्थः

हे वज्रिन् ! इन्द्र ! त्वं तं विस्तीर्णं महान्तं वृत्रं पर्वणि पर्वणिच्छेदितवान् (तेन) निरुद्धा अपः (चाऽधो देशे) गमनाय विसृष्टवान्, वस्तुतः (त्वमेव) सर्वमद्वितीयं बलं धारितवानसि ॥६॥

भाषार्थः ।

हे वज्रधारी इन्द्र ! आपने फैले हुए उस महान वृत्र को प्रत्येक जोड़ में काट डाला (और उस से) रुके हुए जलों को गिरने के लिए छोड़ा सच मुच (आपने ही) सम्पूर्ण अद्वितीय बल को धारण किया हुआ है ॥ ६ ॥

इति सप्त पञ्चाशं सूक्तम्।

नि	नि+	–
तुन्दते	नि+तुन्दते, व्यथयति	क्लेश देता है
होता	होता	होता
यत्	यदा	जब
दूतः	दूतः	दूत
अभवत्	अभवत्	हुआ
विवस्वतः	परिचरतः (यजमानस्य)	यजमान का
वि	वि +	–
साधिष्ठेभिः	समीचीनैः (निश्चयेनसमाधकैः)	उत्तमों से
पथिऽभिः	मार्गैः	रस्तों से
रजः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
ममे	वि + ममे, साक्षात्कृतवान्	प्रत्यक्ष किया
आ	समन्तात	चारों ओर से

हैं उस धनके प्राप्त कराने वाले को पूजा कर उस से रमणीय धन मांगने चाहियें । बल के पुत्र मित्रनन्दन अग्नि हमको छिद्र रहित शरण देवें और दृढ रक्षा करते हुए हम को पाप से बचावें अग्नि हमारे स्तोताओं और धनियों के आश्रय दाता हों स्तुति करने वाले को पापसे रक्षा करें और प्रातःकालमें शीघ्र नित्य अपने सेवकों को प्राप्त हों ।

अग्निर्देवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

नूचित्सहोजाअमृतोनितुन्दते
होतायद्दूतोअभवद्विवस्वतः । वि-
साधिष्ठेभिःपथिभीरजोमम आदे-
वताताहविषाविवासति ॥ १ ॥

१ नु	किम्	क्या
१ चित्	खलु	सचमुच
सहः॑ऽजाः	बलेन जातः	बल से प्रकट हुआ २
अमृतः	मरणरहितः	मरण से रहित

नि	नि+	—
१ तुन्दते	नि+तुन्दते, व्यथयति	क्लेश देता है
होता	होता	होता
यत्	यदा	जब
दूतः	दूतः	दूत
अभवत्	अभवत्	हुआ
विवस्वतः	परिचरतः (यजमानस्य)	यजमान का
वि	वि +	—
१ साधिष्ठेभिः	समीचीनैः (भिसऐसभावश्छान्दसः)	उत्तमों से
१ पथिऽभिः	मार्गैः	रस्तों से
१ रजः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
ममे	वि + ममे, साक्षात्कृतवान्	प्रत्यक्ष किया
आ	समन्तात्	चारों ओर से

देवऽताता	यज्ञे (निघं० ३।१७) (विमकेडों)	यज्ञ में
हविषा	हविषा	हविसे
विवासति	परिचरति	सेवा करता है

संस्कृतार्थः ।

वलेनजातो मरण रहितः (अग्निः) व्यथयति किं खलु ? यदा (सः) होता (हविर्वहनाय) यजमानस्य दूतोऽभवत्,(सएव)समीचीनैर्मार्गैरन्तरिक्षं साक्षात्कृतवान्(सएवसाम्प्रतमस्मद्-) यज्ञे (देवान्) समन्ताद् हविषा परिचरति । १ ।

भाषार्थः ।

बल से प्रकट हुए२ मरण रहित (अग्नि) क्या सचमुच क्लेशकारी हो सकते हैं?जब (वह) होता(हवि पहुंचाने के लिए)यजमानके दूत बन चुके,उन्होंने ही उत्तम मार्गों से अन्तरिक्ष को प्रत्यक्ष किया,(वह ही अब हमारे) यज्ञ में (देवताओं की) चारों ओर हवि से सेवा करते हैं । १ ।

(१) जब अग्नि देव अरणि द्वारा भये और किसी यजमान के लिये देवताओं के बुलाने वाले बन चुके, तो क्या वह उस को क्लेश दे सकते हैं ! अर्थात् ऐसा होना असम्भव है।

(२) अन्तरिक्ष को जो पूर्वकाल में अन्धेरे में था अग्नि ने ही आदि सृष्टि में प्रवेश करके प्रत्यक्ष किया, और वही सूर्य रूप में उस को अब भी प्रत्यक्ष करते हैं ॥

अग्निर्देवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

आस्वमद्मयुवमानोअजर स्तृष्व-
विष्यन्नतसेषुतिष्ठति। अत्योन-
पृष्ठंप्रुषितस्यरोचते दिवोनसा
स्तनयन्नचिक्रदत् ।२।

आ	आ +	–
स्वम्	स्वकीयम्	अपने को
अद्म	अदनीयम्	भक्षण करने योग्य को
यवमानः	अर्जयन् (मा०को०)	इकट्ठा करता हुआ
अजरः	जरारहितः	बुढापे से रहित

तृषु	क्षिप्रम् (निघं० २।१५)	शीघ्र
अविष्यन्	भक्षयन् (निघं० २।८)	भक्षण करता हुआ
अतसेषु	काष्ठेषु (अजाऽतसशब्दश्चा-ष्टाध्यायी, 'अतसं शुष्कम्' इति ऋ० ५।४।५ दर्शनात्)	काष्ठों में
तिष्ठति	आ+तिष्ठति, आरोहति	चढ़ता है
अत्यः	अश्वः (निघं० १।१४)	घोड़ा
न	इव	जैसे
पृष्ठम्	पृष्ठम्	पीठ
प्रुषितस्य	स्निग्धस्य (प्रुषस्नेहने)	चिकने की
रोचते	दीप्यते	चमकती है
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक के
न	इव	जैसे

सानु	मस्तकम्	मस्तक को
स्तनयन्	शब्दयन्	गर्जाता हुआ
२ अचिक्रदत्	गम्भीरशब्द-मकरोत्	गम्भीर शब्द को किया है

संस्कृतार्थः ।

जरा रहितः (अयमग्निः) स्वकीयमदनीय-मर्जयन् क्षिप्रं भक्षयन्(च) काष्ठेष्वारोहति (घृतसेचनेन) स्निग्धस्य (अस्य) पृष्ठमश्व इव दीप्यते (अयम्) द्युलोकस्य मस्तकं शब्दयन्निव गम्भीरशब्द मकरोत् । २ ।

भावार्थः ।

बुढापे से रहित (यह अग्नि) अपने भोजन को इकट्ठा करके शीघ्र भक्षण करते हुए काष्ठों पर चढ़ते हैं (घी सींचनेसे) चिकनी हुई२ (इन) की पीठ घोडे की न्याइं चमकती है (इन्हों ने) द्युलोक के मस्तक को गर्जाते हुए की न्याइं गम्भीर शब्द को किया है । २ ।

भरणो द्वारा मथन किए जाने पर शुष्क गोमय वा तृण आदि भोजन को खा कर अग्निदेव काष्ठों में प्रवेश करते हैं और जब

उन पर घी की आहुति डाली जाती हैं, तब अग्नि की पीठ घोड़े की पीठ की न्याई चमकती है।

(२) अग्नि का गम्भीर शब्द को करना यजमान के लिये जय ध्वनि को सूचन करता है।

अग्निर्देवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२॥

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः। रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति॥२॥

क्राणा	कुर्वाणः (निघं०४।१)	करता हुआ
रुद्रेभिः	रुद्रैः	रुद्रों से
वसुऽभिः	वसुभिः	वसुओं से
पुरःऽहितः	पुरस्कृतः	आगे किया हुआ

होता	होता	होता
निऽसत्तः	निषण्णः	बैठा हुआ
रयिषाट्	(शत्रु-)धनाना-मभिभविता	(शत्रुओं के)धनों को दबाने वाला
अमर्त्यः	मरण रहितः	मरण रहित
१ रथः	रथः	रथ
न	इव	की न्याईं
विक्षु	प्रजासु	प्रजाओं में
ऋञ्जसानः	धावन् (आ०को०)	दौड़ता हुआ
१ आयुषु	मनुष्येषु (निघं०२।३)	मनुष्यों में
वि	वि+	–
आनुषक्	सततम्	निरन्तर
वार्या	वरणीयानि	वरने योग्यों को
देवः	देवः	देव=

ऋण्वति	वि + ऋण्वति प्राप्नोति निघं२।१४)	प्राप्त करता है

संस्कृतार्थः।

(शब्दम्) कुर्वाणो रुद्रैर्वसुभिः (च) पुरस्कृतः (यज्ञशालायाम्) निषण्णो होता (शत्रु-)धनानामभिभविता मरण रहितः (अग्निः-) देवः प्रजासु रथ इव मनुष्येषु धावन् वरणीयानि (हवींषि) सततं प्राप्नोति ॥ २ ॥

भावार्थः।

(शब्द को) करते हुए, रुद्र (और) वसुओं से आगे किये हुए, (यज्ञ शालामें) बैठे हुए होता (शत्रुओं के) धनों को दबाने वाले (और) मरण रहित (अग्नि), देव प्रजाओं में रथ की न्याईं मनुष्यों में दौड़ते हुए वरने योग्य (हवियों) को निरंतर प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

(१) जैसे प्रजाओं में राजा का रथ दौड़ता हुआ कर को लेता है इसी प्रकार अग्निदेव मनुष्यों से उत्तम उत्तम हवि को लेते हैं ॥

अग्निर्देवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

विवातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा

जुहूभिःसृण्यातुविष्वणिः। तृषुयद-
ग्नेवनिनोवृषायसे कृष्णंतएमरुश-
दूर्मेअजर ।४।

वि	वि+	—
वातऽजूतः	वायुना प्रेरितः	वायु से प्रेरणा किया हुआ
अतसेषु	काष्ठेषु	काष्ठों में
तिष्ठते	वि + तिष्ठते, व्याप्नोति	फैल जाता है
वृथा	अनायासेन	सहज से
जुहूभिः	जिह्वाभिः	जिह्वाओं से
सृण्या	दात्ररूपाभिः (वचनव्यत्ययः)	दरांती रूपों से
तुविऽस्वनिः	महास्वनः	बड़े शब्द वाला
तृषु	क्षिप्रम्	शीघ्र

यत्	यदा	जब
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
वनिनः	वनसम्बन्धिनो वृक्षान्	वन के वृक्षों को
वृषऽयसे	वृषइवाऽऽचरसि	बैलकी न्याईं आचरण करते हो
कृष्णम्	कृष्णवर्णः	काले रंगवाला
ते	तव	तेरा
एम	गमनमार्गः (सा०की०)	जाने का रस्ता
रुशत्ऽऊर्मे	हे दीप्तोर्मे !	हे चमकती हुई लहरों वाले
अजर	हे जरारहित !	हे बुढ़ापेसे रहित

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने ! वायुना प्रेरितो महास्वनः (भवान्) दात्ररूपाभिर्जिह्वाभिः काष्ठेष्वनायासेन व्याप्नोति, हे जरा रहित ! हे दीप्तोर्मे ! यदा (त्वम्) शीघ्रतया वनसम्बन्धिनो वृक्षान् (प्रति) वृषइवाऽऽचरसि

(तदा) तत्र गमनमार्गः कृष्णवर्णः (भवति) ॥ ४ ॥

भावार्थः

हे अग्नि,वायुसे प्रेरित हुए २ बडे शब्द वाले (आप) दरांती रूप जिह्वाओं से सहज ही काष्ठों में फैल जाते हैं, हे बुढापे से रहित! हे चमकती हुई लहरों वाले! जब आप शीघ्रता से वन के वृक्षों (के-प्रति) बैलकी न्याईं आचरण करते हो (तब) आप के चलने का रस्ता काले रंग वाला (होजाता है)।४।

इस मन्त्र में ऋषि अग्नि की वनको जलाने की शोभा को देख रहे हैं। "वृषायसे" का यह तात्पर्य्य है कि जैसे सांढ बैल गौओं में पैर जाता है,इसी प्रकार अग्निदेव वृक्षों में पैर जाते हैं। इसी बात को अगले मन्त्र में स्पष्ट किया है ॥

अग्निर्देवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

तपुर्जम्भोवनआवातचोदितो यूथेनसाह्वाँअववातिवंसगः । अभिव्रजन्नक्षितंपाजसारजः स्थातुश्चरथं भयतेपतत्रिणः ।५।

तपुःऽजम्भः	तपूंषिज्वालाएव जम्भादन्तायस्य सः	ज्वालारूपी दांतों वाला
वने	वने	वन में
आ	समन्तात्	चारों ओर से
वातऽचोदितः	वायुना प्रेरितः	वायु से प्रेरित हुआ २
यूथे	(गो-) समूहे	[गोओं के] समूह में
न	इव	की न्याईं
सह्वान्	जयशाली (निपातनात्साधुः, हस्वश्छान्दसः)	जीतने वाला
अव	अव+	–
वाति	अव+वाति, व्याप्नोति	पैरता है
वंसगः	वृषः	बैल
अभिऽव्रजन्	अभिमुखंगच्छन्	सामने जाता हुआ

अ॒क्षि॒तर्	अक्षीणम्	न छीजने वाले को
पा॒जसा	बलेन (निघ०२।९)	बल से
र॒जः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
स्था॒तुः	स्थावरात्	स्थावर से
च॒रथ॑म्	जङ्गम (पर्य्यन्तम्)	जङ्गम (पर्य्यन्त)
भ॒य॒ते	बिभेति (व्यत्ययेनाऽऽत्मन पदम् इलोरभाव)	डरता है
प॒त॒त्रिणः	पतनवत.	उड़ने वाले से

संस्कृतार्थ ।

ज्वालारूपदन्तयुक्तो जयशाली (अग्निः) वायुना प्रेरित (सन् यदा) अक्षीणमन्तरिक्ष प्रति गच्छन् (गो) यूथे वृषइव वने व्याप्नोति (तदा) पतनवतः (अस्मादग्ने) स्थावरात् (आरभ्य) जङ्गम-(पर्य्यन्त सर्वंभूतजातम्) विभेति ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

ज्वालारूप दांतों से युक्त, जीतने वाले (अग्नि- देव) वायुसे प्रेरित(होकर जब) न छीजने वाले अन्त•

रिक्ष के प्रति वल से जाते हुए वन में पैरते हैं, जैसे बैल (गौओं के) समूह में (पैर जाता है) (उस समय) उड़ने वाले (इस अग्नि से) स्थावर से (लेकर) जंगम (तक सब प्राणी) डरते हैं ॥ ५ ॥

अग्नि का भयानक रूप वन को जलाते समय प्रतीत होता है।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

दधुष्ट्वाभृगवोमानुषेष्वा रयिं-
नचारुंसुहवंजनेभ्यः। होतारमग्ने
अतिथिंवरेण्यं मित्रंनशेवंदिव्याय-
जन्मने ।६।

दधुः	आ+दधुः, स्थापितवन्तः	स्थापन किया है
त्वा	त्वाम्	तुझ को
भृगवः	भृगवः	भृगुओं ने
मानुषेषु	मनुष्येषु	मनुष्यों में

आ	+आ	–
रयिम्	धनम्	धन को
न	इव	जैसे
चारुम्	शोभनम्	सुन्दर को
सुऽहवम्	सुखेनाऽऽह्वातुं-शक्यम्	सहज से बुलाए जाने वाले को
जनेभ्यः	मनुष्येभ्यः	मनुष्यों के लिये
होतारम्	होतारम्	होता को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
अतिथिम्	अतिथिम्	अतिथि को
वरेण्यम्	वरणीयम्	बरने योग्य को
मित्रम्	मित्रम्	मित्र
न	इव	की न्याईं
शेवम्	सुखकरम्	सुखदेने वाले को।

दिव्याय	दिव्याय+	–
जन्मने	दिव्याय+जन्मने देवजातये	देवजातिके लिए

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने! मनुष्येभ्यो सुखेनाऽऽह्वातुंशक्यं होतारं वरणीयमतिथिं देवजातये मित्रमिव सुखकरं त्वां भृगवो मनुष्येषु शोभनं धनमिव स्थापितवन्तः ॥ ६ ॥

भावार्थः।

हे अग्नि! मनुष्यों के लिए सुख से बुलाएजाने वाले, होता,वरने योग्य अतिथि [और] देव जाति के लिए मित्रकी न्याईं सुखके देने वाले आपको भृगुओं ने मनुष्योंमें सुन्दर धनकी न्याईं स्थापन किया है॥६

भृगुओं ने आर्यजाति में अग्नि को एक धन के कोश की न्याईं स्थापन किया है जिससे उनका ऐश्वर्य पूर्वकाल में सब जातियोंसे बढ़ कर रहा है ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः।११।११।११।११।

होतारंसप्तजुह्वो३यजिष्ठं यंवाघ-

तोवृणतेअध्वरेषु। अग्निंविश्वेषा-

मर्तिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ।७।

होतारम्	होतारम्	होता को
सप्त	सप्त	सात
जुह्वः	आह्वातारः	बुलाने वाले
यजिष्ठम्	यष्टृतमम्	सब से अधिक पूजने वाले को
यम्	यम्	जिस को
वाघतः	ऋत्विजः (निघ० ३।१८)	ऋत्विज
वृणते	वृण्वन्ति	वरते हैं
अध्वरेषु	यज्ञेषु	यज्ञों में
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को
विश्वेषाम्	सर्वेषाम्	सब के

दिव्याय	दिव्याय+	–
जन्मने	दिव्याय+जन्मने देवजातये	देवजातिके लिए

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! मनुष्येभ्यो सुखेनाऽऽह्वातुंशक्यं होतारं वरणीयमतिथिं देवजातये मित्रमिव सुखकरं त्वां भृगवो मनुष्येषु शोभनं धनमिव स्थापितवन्तः ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि ! मनुष्यों के लिए सुख से बुलाएजाने वाले, होता,वरने योग्य अतिथि [और] देव जाति के लिए मित्रकी न्याईं सुखके देने वाले आपको भृगुओं ने मनुष्योंमें सुन्दर धनकी न्याईं स्थापन किया है॥६

भृगुओं ने आर्यजाति में अग्नि को एक धन के कोश की न्याईं स्थापन किया है जिससे उनका वैदर्य पूर्वकाल में सब जातियोंसे बढ़ कर रहा है ॥

अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

होतारंसप्तजुह्वोऽयजिष्ठं यंवाघ-

तोवृणतेअध्वरेषु। अग्निंविश्वेषा-

अन्न से मैं सेवा करता हूं (और) रमणीय धनको मांगता हूं । ७ ।

(१) सात होता ऋत्विज अर्थात् होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक, ब्राह्मणाच्छंसी, आग्नीध्र, पोता और नेष्टा ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

अच्छिद्रासूनोसहसोनोअद्य स्तोतृभ्योमित्रमहःशर्मयच्छ । अग्ने गृणन्तमंहसउरुष्यो र्जोनपात्पूर्भिरायसीभिः ।८।

अच्छिद्रा	छिद्ररहितम (विमर्देरारम्)	छिद्र रहित को
सूनो०	हे पुत्र !	हे पुत्र
सहसः	बलस्य	बलके
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताईं

अरतिम्	प्रापयितारम् (ऋप्रापणे-औणादि-कोऽतिप्रत्ययः)	प्राप्त कराने वाले को
वसूनाम्	धनानाम्	धनों के
सपर्यामि	परिचरामि	मैं सेवा करता हूं
प्रयसा	[हवी रूपेण] अन्नेन	[हवि रूप] अन्न से
यामि	याचामि (वर्णलोपश्छान्दसः)	मांगता हूं
रत्नम्	रमणीयं धनम्	रमणीय धन को

संस्कृतार्थः।

आह्वातारः सप्तर्त्विजो यज्ञेषु यष्टृतमं होतारं यमग्निं वृणन्ति सर्वेषां धनानां प्रापयितारम् [तमहं हवीरूपेण] अन्नेन परिचरामि रमणीयं धनम् (च) याचामि ॥ ७ ॥

भाषार्थः।

बुलाने वाले सात ऋत्विज यज्ञों में सब से अधिक पूजने वाले जिस होता अग्नि को वरते हैं सब धनों के प्राप्त कराने वाले (उस की हविरूप)

पूःऽभि	रक्षाभिः	रक्षाओं से
आयसीभिः	लोहमयीभिः, दृढाभिरित्यर्थः	दृढों से

संस्कृतार्थः।

हे बलस्य पुत्र ! हे मित्रनन्दन ! हे अग्ने ! अद्याऽस्मभ्यं स्तोतृभ्यश्छिद्ररहितं शरणं देहि, हे बलस्य पुत्र ! स्तुवन्तम् (माम्) दृढाभीरक्षाभिः पापाद्रक्ष ॥८॥

भावार्थः।

हे बल के पुत्र ! हे मित्रों को आनन्द देने वाले हे अग्नि ! आज हम स्तोताओं के ताईं छिद्र रहित शरण को दीजिए, हे बल के पुत्र ! स्तुति करते हुए मुझ को दृढ रक्षाओं के द्वारा पाप से बचाइये ॥ ८ ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म । उरुष्याऽग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ।९।

अद्य	अद्य	आज
स्तोतृऽभ्यः	स्तोतृभ्यः	स्तोताओं के ताईं
मित्रऽमहः	हे मित्रनन्दन !	हे मित्रों को आनन्द देने वाले
शर्म	शरणम्	शरण को
यच्छ	देहि	दीजिए
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
गृणन्तम्	स्तुवन्तम्	स्तुति करतेहुएको
अंहसः	पापात्	पाप से
उरुष्य	रक्ष (उरुष्यतीरक्षाकर्मेति-यास्कः,निरु०५।२३)	बचाओ
ऊर्जः	बलस्य	बलको
नपात्	हे पुत्र !	हे पुत्र

पू:ऽभि	रक्षाभिः	रक्षाओं से
आयसीभिः	लोहमयीभिः, दृढाभिरित्यर्थः	दृढों से

संस्कृतार्थः ।

हे बलस्य पुत्र ! हे मित्रनन्दन ! हे अग्ने ! अद्याऽस्मभ्यं स्तोतृभ्यश्छिद्ररहितं शरणं देहि, हे बलस्य पुत्र ! स्तुवन्तम् (माम्) दृढाभीरक्षाभिः पापाद्रक्ष ॥८॥

भावार्थः ।

हे बल के पुत्र ! हे मित्रों को आनन्द देने वाले हे अग्नि ! आज हम स्तोताओं के ताईं छिद्र रहित शरण को दीजिए, हे बल के पुत्र ! स्तुति करते हुए मुझ को दृढ रक्षाओं के द्वारा पाप से बचाइये ॥ ८ ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

भवावरूथंगृणतेविभावो भवामघवन्मघवद्भ्यःशर्म्म । उरुष्याऽग्ने अंहसोगृणन्तं प्रातर्मक्षूधियावसुर्जगम्यात् ।९।

भव	भव	तू हो
वरूथम्	गृहस्, आश्रय इत्यर्थः निघ०३।४)	आश्रय
गृणते	स्तुवते	स्तोताके लिए
विभाऽवः	हे प्रकाश युक्त !	हे प्राकश वाले
भव	भव	तू हो
मघऽवन्	हे धनवन् !	हे धनवाले
मघवत् ऽभ्यः	धनवद्भ्यः	धनवानोंके लिये
शर्म	शरणम्	शरण
उरुष्य	रक्ष	बचाये
अग्ने	हे अग्ने !	हे आग्न
अंहसः	पापात्	पाप से

गृणन्तम्	स्तुवन्तम्	स्तुति करते हुए को
प्रातः	प्रातःकाले	प्रातःकाल में
मक्षु	शीघ्रम्	शीघ्र
१ धियाऽवसुः	ध्यानेन धनवान्	ध्यान द्वारा धन वाला
जगम्यात्	आगच्छतु (शपःश्लुः)	प्राप्त हो

संस्कृतार्थः

हे प्रकाशयुक्त! (त्वम्) स्तुवत आश्रयोभव हे धनवन्! धनवद्भ्यः शरणं भव, हे अग्ने! स्तुवन्तम् (माम्) पापाद्रक्ष, ध्यानेन धनवान् (भवान्) शीघ्रं प्रातरागच्छतु ॥ ९ ॥

भावार्थः

हे प्रकाश से युक्त ! आप स्तोताके लिए आश्रय हों हे धनवाले ! आप धनवानों के लिए शरण हों हे अग्नि ! आप(मुझ) स्तोता को पापसे बचावें ध्यान से धन वाले (आप) प्रातःकाल में शीघ्रप्राप्त हों ॥ ९ ॥

(१) अग्नि देवता को मनुष्यों की न्याईं धन के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं है वह ध्यान मात्र से धन को प्राप्त करने वाले हैं ॥

इत्यष्टपञ्चाश सूक्तम्

ऋ० मं० १ सू० ५९

नोधा ऋषिः ।

विनियोग—दूसरा मन्त्र अर्थात् "मूर्द्धा दिवो "इत्यादि मन्त्र के विषुवत दिन में अग्नि मारुत शास्त्रमें स्तोत्रियानुरूप है—(आ०श्रौ० सू०उ०२ । ६ । २३) अर्थात् स्तोत्रिय तृच के पीछे पढ़ा जाता है ॥

इस सूक्त में भी अग्नि की स्तुति है—पार्थिव अग्निसे अन्य जो अग्नियां हैं वे सब इसी की शाखा हैं, यही अग्नि वैश्वानर रूप में मनुष्यों को सहारे हुए हैं, द्युलोक के मस्तक स्थानीय जो सूर्य भगवान हैं वह भी अग्नि हैं पृथिवी के गर्भमें भी यही अग्नि हैं ऐसे अग्नि देव को देवताओं ने आर्य के लिए ज्योतिरूप बनाया है और देवताओं ने सब धन अग्नि में स्थापन किये हैं जो धन पर्वतों में, औषधियों में, जलों में, और मनुष्यों में है उन सब धनों के अग्नि राजा हैं ऐसे सच्चे बड़े वैश्वानर अग्नि के तांईं महान स्तुतियां उच्चारण करो, अग्नि देव मनुष्य मात्र के राजा हैं और देवताओं की समृद्धि के कारण भी यही हैं इन्हीं ने वृत्र को मार कर दिशाओंको बरसाया और शम्बर को छिन्न भिन्न किया, मनुष्य मात्र के स्वामी भरद्वाजों के पूज्य वैश्वानर अग्नि शातवनि के पुत्र राजा पुरुणीथके घर में सब्जों स्तोत्रों से स्तुति किये जाते थे ॥

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः॥११।११।११।११॥

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे
विश्वे अमृता मादयन्ते । वैश्वानर
नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उ-
पमिद्ययन्थ ॥१॥

वयाः	शाखाः (यास्क०)	शाखा
इत्	एव	ही
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
अग्नयः	अग्नयः	अग्नियां
ते	तव	तेरी
अन्ये	अन्ये	और
त्वे०	त्वयि	तुझ में

विश्वे	सर्वे	सब
अमृताः	मरण रहिताः	मरण रहित
मादयन्ते	हृष्यन्ति	हर्षित होते हैं
वैश्वानर	विश्वेषु नरेषु भव-स्तत्सम्बुद्धौ (मघार्थमण्)	हे सब मनुष्यों में होने वाले
नाभिः	नाभिः	नाभि
असि	असि	तू है
क्षितीनाम्	मनुष्याणाम् (निघं०२।३)	मनुष्यों का
स्थूणाऽइव	(गृह-) स्तम्भइव	(घरके) खंबे की न्याई
जनान्	मनुष्यान्	मनुष्यों को
उपऽमित्	निखातः	गडे हुए
ययन्थ	आधारयः (यमउपरमे)	सहारा है

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने! अन्येऽग्नयस्तव शाखा एव (सन्ति)

त्वयि सर्वे मरणरहिताः (देवाः)हृष्यन्ति हे वैश्वानर! (त्वम्) मनुष्याणां नाभिरसि (त्वमेव) निखातः (गृह-) स्तम्भइव मनुष्यानधारयः ॥१॥

भावार्थः।

हे अग्नि, और अग्नियां आपकी शाखा ही हैं आपके कारण मरण रहित सब (देवता) हर्षित हैं, हे सब मनुष्यों में होने वाले! आप मनुष्यों के नाभि हैं, गडे हुए (घर के) खंबे की न्याईं आप (ही) मनुष्यों को सहारे हुए हैं ॥१॥

और अग्नियां जैसे मनुष्यआदि जीवों में रहने वाली, सूर्य और पृथिवी के गर्भ में रहने वाली, अन्तरिक्ष और तारागण में रहने वाली इत्यादि सब अग्नियां पार्थिव अग्नि की ही शाखा हैं, सब देवता अग्नि के कारण हर्षित हैं, जैसे चन्द्रमा की छवि का कारण, वायु के वेग का कारण और नदियां के खोंवाट का कारण भी सूर्य की किरणें हैं, जो समुद्र से जल को उठा कर पर्वत पर गिराती हैं इसी प्रकार आकाश में तारागण की प्रभा के और पृथिवी में वृक्ष, पशु, पक्षी, और मनुष्यों की सम्पूर्ण चेष्टाओं के कारण अग्नि हैं मनुष्य का जीवन उस के भीतर रहने वाले वैश्वानर अग्नि पर ही निर्भर है, जसे घर की छत खमों पर निर्भर होती है ॥

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११ ११।१११११।

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या

अथाभवदरतीरोदस्योः। तंत्वादेवासोऽजनयन्तदेवं वैश्वानरज्योतिरिदार्य्याय।२।

मूर्धा	मूर्धा	मस्तक
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक का
नाभिः	नाभिः ·	नाभि
अग्निः	अग्निः	अग्नि
पृथिव्याः	पृथिव्याः	पृथिवी का
अथ	अनन्तरम्	पीछे
अभवत्	अभवत्	हुआ
अरतिः	अधिपतिः	स्वामी

रोदस्योः	द्यावापृथिव्योः	द्यौ और पृथिवी का
तम्	तम्	उसको
त्वा	त्वाम्	तुझ को
देवासः	देवाः (असोऽसुगागमः)	देवताओं ने
अजनयन्त	उत्पादितवन्तः	उत्पन्न किया
देवम्	दीप्यमानम्	दीप्तिमान को
वैश्वानर	हे वैश्वानर !	हे सब मनुष्यों में होने वाले
ज्योतिः	ज्योतिः	ज्योति को
इत्	(पूरणः)	—
आर्याय	आर्याय	आर्य्य के लिए

संस्कृतार्थः ।

द्युलोकस्य मूर्धा पृथिव्या नाभिः (चाऽयमग्निः) अनन्तरं द्यावापृथिव्योरधिपतिरभवत्, हे वैश्वानर !

तं दीप्यमानं त्वां देवा आर्य्याय ज्योतीरूपमुत्पादितवन्तः ॥२॥

भावार्थः।

इस के अनन्तर द्युलोक के मस्तक (और) पृथिवी के नाभि (यह अग्नि) द्यौ और पृथिवी के स्वामी बने, हे सब मनुष्यों में होने वाले, उस दीप्तिमान् आपको देवताओं ने आर्य्य के लिये ज्योति रूप उत्पन्न किया है॥ २॥

अग्नि सूर्यरूप में द्युलोक के मस्तक हैं और पृथिवी के गर्भ में रहने से पृथिवी के नाभि या केन्द्र हैं, तथा पृथिवी के शासक भी अग्निदेव ही हैं क्योंकि पृथिवी पर जो कुछ होता है उस का कारण भूगर्भअग्नि या सूर्य की किरणें है इसी प्रकार आकाश में भी जो कुछ घटनाएं होती हैं जैसे आंधी, वर्षा, धुंध इत्यादि सब का हेतु अग्नि है इस लिये आकाश के शासन कर्ता भी अग्नि हैं॥

आर्य के लिये देवताओं ने अग्नि को ज्योतिरूप बनाया, अर्थात आर्यों की सारी उन्नति और सभ्यता परमात्माको अग्नि या ज्योति रूप में मनन और पूजन करने से हुई है॥

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥१॥१॥१॥१॥

आ सूर्य्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि। या पर्वतेष्वो-

षधीष्वप्सु यामानुषेष्वसितस्य-
राजा ।३।

आ	आ+	–
सूर्य्ये	सूर्य्यें	सूर्य्य में
न	इव	जैसे
रश्मयः	किरणाः	किरणें
ध्रुवासः	निश्चलाः	निश्चल
वैश्वानरे	वैश्वानरे	वैश्वानर में
दधिरे	आ + दधिरे, स्थापितवन्तः	स्थापन किया है
अग्ना	अग्नौ (सुपामितिविभक्तेर्डा)	अग्नि में
वसूनि	धनानि	धनों को
या	यानि (शेर्लोपः)	जो

पर्वतेषु	पर्वतेषु	पर्वतों में
ओषधीषु	ओषधीषु	ओषधियों में
अप्ऽसु	अप्सु	जलोंमें
या	यानि	जो
मानुषेषु	मनुष्येषु	मनुष्यों में
असि	असि	तू है
तस्य	तस्य	उसका
राजा	राजा	राजा

संस्कृतार्थः ।

(देवाः) वैश्वानरेऽग्नौ सूर्ये निश्चलाःकिरणाइव धनानि स्थापितवन्तः (हे अग्ने !) यानि (धनानि) पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु यानि(च) मनुष्येषु(विद्यन्ते) तस्य (धनसमूहस्य त्वमेव) राजाऽसि॥३॥

भाषार्थः ।

(देवताओं ने) सूर्य्य में निश्चल किरणों की न्याई वैश्वानर अग्नि में धनों को स्थापन किया है

(हे अग्नि) जो (धन) पर्वतों में ओषधियों में जलों में (और) जो मनुष्यों में (विद्यमान हैं) आप(ही) उनके राजा हैं ॥३॥

जो सब धनों के राजा हैं उन्हीं से सब धन मांगने चाहियें ॥

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

बृहतीइवसूनवेरोदसी गिरोहो-
तामनुष्यो३नदक्षः । स्ववंतेसत्य-
शुष्मायपूर्वी वैश्वानरायनृतमाय-
यह्वीः ॥४॥

बृहतीऽइव०	महत्याविव	बड़ों की न्याईं
सुनवे	पुत्राय	पुत्र के लिए
रोदसी०	द्यावापृथिव्यो	द्युलोक और पृथिवी
गिरः	स्तुतयः	स्तुतियां

होता	होता	होता
मनुष्यः	मनुष्यः	मनुष्य
न	इव	की न्याई
दक्षः	कर्म्मकुशलः	कार्य्य में चतुर
स्वः॑ऽवते	ज्योतिष्मते	प्रकाश वाले के लिए
सत्यऽशुष्माय	सत्यबलाय	सच्चे बली के लिए
पूर्वीः	पुरातनीः	प्राचीनों को
वैश्वानराय	वैश्वानराय	वैश्वानर के लिए
नृऽतमाय	नरोत्तमाय	सर्वोत्तम नर के लिए
यह्वीः	महतीः (निघ० ३।३)	महानों को

संस्कृतार्थः।

महत्यौ द्यावापृथिव्याविव (तयोः) पुत्राय स्तुतयः

(अपि महत्यः सन्ति, सः) होता (अग्निः) मनुष्य इव कर्म कुशलः (अस्ति) ज्योतिष्मते सत्यबलाय नरोत्तमाय(तस्मै) वैश्वानराय पुरातनीर्महतीः (स्तुतीः कुरुत) ॥ ४ ॥

भाषार्थः।

महान द्यावा पृथिवी की न्याईं (उनके) पुत्र के लिये स्तुतियां(भी महान हैं वह)होता(अग्नि)मनुष्य की न्याईं कर्म में चतुर (है) प्रकाश वाले, सच्चे-बली सर्वोत्तम नर (उस) वैश्वानर के लिए प्राचीन और महान (स्तुतियों को करो) ॥४॥

जैसे द्यावापृथिवी महान हैं वैसे ही उनके पुत्र अग्नि के लिये स्तुतियां भी महान हैं मनुष्य की अपेक्षा अत्यन्त अधिक महान होनेपर भी अग्नि देवताओं के लिए होतृकर्म को मनुष्य होता की न्याईं चतुराई से करते हैं, उन्हीं नरोत्तम सच्चे बली वैश्वानर अग्नि के लिये प्राचीन अर्थात वेद विहित और महान स्तुतियों का उच्चारण करना चाहिये।

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

दिवश्चित्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम्। राजा कृष्टी-

नामसिमानुषीणां युधादेवेभ्योवरि-
वश्चकर्थ ।५।

दिवः	द्युलोकात्	द्युलोक से
चित्	अपि	भी
ते	तव	तेरी
बृहतः	महतः	महान से
जातऽवेदः	हेजातानां वेदितः!	हे उत्पन्न हुओंके जानने वाले
वैश्वानर	हे वैश्वानर!	हे सब मनुष्यों में होने वाले
प्र	प्र+	–
रिरिचे	प्र+रिरिचे,ववृधे	बढी
महिऽत्वम्	महत्त्वम्	महिमा
१ राजा	राजा	राजा

क्षष्टीनाम्	प्रजानाम् (निघं०२।१)	प्रजाओं का
असि	असि	तू है
मानुषीणाम्	मनोर्जातानाम्	मनु से उत्पन्न हुई का
२ युधा	युद्धेन	युद्ध से
देवेभ्यः	देवेभ्यः	देवताओं के लिये
वरिवः	धनम् (निघं०२।१०)	धन को
चकर्थ	कृतवान्	किया

संस्कृतार्थः।

हे जातानावेदितः! हे वैश्वानर! तव महत्त्वं महतो द्युलोकादपि ववृधे(त्वम्) मनोर्जातानां प्रजानां राजाऽसि (त्वम्) युद्धेन देवभ्यो धनम् (प्रादुः॰) कृतवान् ॥५॥

भाषार्थः।

हे उत्पन्न हुओं के जानने वाले! हे सब मनुष्यों में होने वाले! आपकी महिमा महान द्युलोक से भी बढ़ी हुई है आप मनु से उत्पन्न हुई प्रजाओं के

राजा हैं, आपने युद्ध से देवताओं के लिए धन को उत्पन्न किया है ॥ ५ ॥

(१) अग्निदेव मनुष्य मात्र के राजा हैं, वह राजाओं के भी राजा हैं इसलिये हमारी राजनिष्ठा अग्नि में ही होनी चाहिये।

(२) जो वृत्र के साथ इन्द्र के युद्ध हैं, ये अग्नि के भी हैं जैसे अगली ऋचा में स्पष्ट वर्णन किया है, क्योंकि जो कुछ अन्तरिक्ष में विद्युत शक्ति का प्रभाव है उस का हेतु सूर्य की अग्नि ही है, इसलिए वृत्र से जलों को छुडा कर पृथिवी पर गिराना और उस के द्वारा देवताओं के हर्ष के हेतुरूप सोम, और हविरूप अन्नादि को उत्पन्न करना अग्नि का ही कर्म है ॥

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

प्रनूमहित्वंवृषभस्यवोचं यंपरवो-
वृत्रहणंसचन्ते । वैश्वानरोदस्युम-
ग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठाअवशं-
म्बरंभेत् ।६।

प्र	प्र+	–
नु	इदानीम् (आ०फो०)	अव

म॒हि॒ऽत्वम्	महत्त्वम्	महिमा को
वृ॒ष॒भस्य॑	नरश्रेष्ठस्य	नर श्रेष्ठ की
वो॒च॒म्	प्र+वोचम्, प्रब्रवीमि (लडर्थेलुङ्, अडभावः)	वर्णन करता हूं
यम्	यम्	जिसको
पू॒रवः॑	मनुष्याः (निघ०२।३)	मनुष्य
वृ॒त्र॒ऽहन॑म्	वृत्रस्यहन्तारम्	वृत्र के मारने वाले को
स॒च॑न्ते	सेवन्ते	सेवन करते हैं
वै॒श्वा॒न॒रः	वैश्वानरः	वैश्वानर
दस्यु॑म्	चोरम्	चोर को
अ॒ग्निः	अग्निः	अग्नि ने
ज॒घ॒न्वान्	हतवान्	मारा

अधूनोत्	अकम्पयत्	कंपाया
काष्ठाः	दिशः (निघं०१।६)	दिशाओं को
अव	अव+	—
शम्बरम्	शम्बरम्	शम्बर को
भेत्	अव+भेत्,व्यदारयत्	चीर डाला

संस्कृतार्थः।

इदानीम् (अहम्) नरश्रेष्ठस्य महत्त्वं प्रब्रवीमि, वृत्रस्य हन्तारं यं मनुष्याः सेवन्ते, (सः) वैश्वानरोऽग्निः (जलानाम्)चोरं हतवान् दिशोऽकम्पयत्,शम्बरम् (च) व्यदारयत् ॥ ६ ॥

भावार्थः।

अब मैं नरों में श्रेष्ठ की महिमा का वर्णन करता हूं, वृत्र के मारने वाले जिस को मनुष्य सेवन करते हैं, (उस) वैश्वानर अग्नि ने (जलों के) चोर को मारा, दिशाओं को कंपाया(और) शम्बर को चीर डाला ॥ ६ ॥

शम्बर भी वृत्र का ही नामान्तर है (देखो निघं० १।१०) यही जलों का चोर है, जिस के साथ विद्युत रूप में युद्ध करके अग्निदेव जलों को छुड़ा कर नीचे गिराते हैं।

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

वैश्वानरोमहिम्नाविश्वकृष्टि-
र्भरद्वाजेषुयजतोविभावा। शातवने-
येशतिनीभिरग्निः पुरुणीथेजरतेसू-
नृतावान् ।७।

वैश्वानरः	वैश्वानरः	वैश्वानर
महिम्ना	महिम्ना	महिमा से
विश्वऽकृष्टिः	विश्वेसर्वेकृष्टयो मनुष्याःयस्यसः	सब मनुष्य जिस के हैं
भरत्ऽवाजेषु	भरद्वाजेषु	भरद्वाजों में
यजतः	यष्टव्यः	यजनीय

विभाऽवा	विशेषेणप्रकाशयिता	खूब प्रकाश करने वाला
शातऽवनेये	शतवनेः पुत्रे	शतवनि के पुत्रमें
शतिनीभिः	शतैः(स्तोत्रैः) (शतशब्दादिनिस्ततो-ङीप्)	सैंकड़ों (स्तोत्रों)से
अग्निः	अग्निः	अग्नि
पुरुऽनीथे	पुरुणीथे(राजनि)	पुरुणीथ (राजा)में
जरते	स्तूयते (व्यत्ययेनकर्मणिकर्तृ प्रत्ययः)	स्तुतिकिया जाता है
सूनृताऽवान्	प्रियसत्यवाण्यायुक्तः	प्यारी और सच्ची वाणी से युक्त

संस्कृतार्थः।

(निज-) महिम्ना सर्वेषां मनुष्याणामधिपतिर्वि- ... भरद्वाजेषु यष्टव्यः प्रियसत्यवा वैश्वानरोऽग्निः शातवनेय पुरुणीथस्य कुले (स्तोत्रैः) स्तूयते ॥ ७ ॥

भाषार्थः।

(अपनी) महिमा से सब मनुष्यों के स्वामी,

खूब प्रकाश करने वाले, भरद्वाजों में पूजनीय, प्यारी और सच्ची वाणी से युक्त वैश्वानर अग्नि, शतवनि के पुत्र (राजा) पुरुणीथ (के कुल) में सैंकड़ों (स्तोत्रों) से स्तुति किये जाते हैं ॥ ७ ॥

भरद्वाजगोत्र और शतवनि के पुत्र राजा पुरुणीथ के कुल में अग्नि की विशेष भक्ति थी ऐसा इस मन्त्र से प्रतीत होता है ॥

इत्येकोनषष्टितम सूक्तम् ।

ऋ०मं०१ सू०६०।

नोधा ऋषिः

विनियोग—यह सक्त प्रातरनुवाक सम्बन्धी आग्नेयक्रतु के आश्विन शस्त्र में पढ़ा जाता है (आ०श्रौ० सू० ४।१३।७)

इस में भी अग्नि की स्तुति है। मातरिश्वा अर्थात वायु ने आर्यों के नेता, यज्ञ के पति और अरणियों से उत्पन्न हुए२ अग्नि को भृगु के तांई भेट किया। मेधावी और हवि देने वाले, दोनों प्रकार के मनुष्य अग्नि का सेवन करते हैं। यह देवता द्युलोक से भी प्राचीन, देवहोता, प्रजा के पालक और अन्वेषण करने के योग्य है। जिस अग्नि को मनुष्य ऋत्विज अरणीद्वारा श्रद्धा से उत्पन्न करते हैं उसको हमारी यह नवीन स्तुति प्राप्त हो। मनुष्यों में प्रेम रखने वाले पवित्रकारक धनवान और वरने योग्य यह अग्नि हमारे घरों में स्थापन किए गए हैं। यह घर में आसक्त मन वाले हैं और हमारे धन के पालन करने वाले हैं। धनों के स्वामी इस अग्नि को घोड़े की न्याईं स्वच्छ करते हुए हम गोतमवंशी मन्त्रों से स्तुति करते हैं यह शीघ्र प्रातःकाल में हमारे पास आवें।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

वह्निंयशसंविदथस्यकेतुं सु-
प्राव्यंदूतंसद्योअर्थम्। द्विजन्मानंर-
यिमिवप्रशस्तं रातिंभरद्भृगवेमा-
तरिश्वा।१।

वह्निम्	नेतारम्	नेता को
यशसम्	यशस्विनम् (विनोचुक)	यशस्वी को
विदथस्य	यज्ञस्य	यज्ञ के
केतुम्	अधिपतिम् (चा०की०)	स्वामी को
सुप्रऽअव्यम्	प्रकर्षणरक्षितारम्	खूब रक्षा करने वाले को
दूतम्	दूतम्	दूत को

सद्यःऽअर्थम्	तत्क्षणे गन्तारम् (सद्य एव अर्थो गन्ता तम्, ऋतेः कर्त्तरि थन् प्रत्ययः)	तत्काल पहुंचने वाले को
द्विऽजन्मानम्	द्वाभ्याम् (अरणिभ्याम्) जायमानम्	दोनों(अरणियों)से उत्पन्न होने वाले को
रयिम्ऽइव	धनमिव	धन की न्याईं
प्रऽशस्तम्	प्रशस्तम्	प्रशंसनीय को
रातिम्	उपहारम्	भेट को
भरत्	अहरत् (ह्रस्य भत्वम् अडभावश्च)	ले गया
भृगवे	भृगवे	भृगु के ताईं
मातरिश्वा	मातरिश्वा	मातरिश्वा

संस्कृतार्थः।

नेतारं यशस्विनं यज्ञस्याऽधिपतिं प्रकर्षेणरक्षितारं शीघ्रगामिनं दूतं द्वाभ्याम् (अरणिभ्याम्)

धनमिव प्रशस्तम् (चाऽग्निम्) मातरिश्वा भृगव-
उपहारमहरत् ॥१॥

भावार्थः ।

नेता, यशस्वी, यज्ञ के स्वामी शीघ्रगामी, दूत, दोनों (अरणियों) से उत्पन्न होने वाले (और) धन की न्याईं प्रशंसनीय (अग्नि) को मातरिश्वा भृगुके ताईं भेट ले गया । १ ॥

यहां पर आदिमातरिश्वा से तात्पर्य नहीं होसक्ता जिस का वर्णन पृ०६९७ में है, परन्तु अन्तरिक्ष में श्वास लेने वाले वायु से होसक्ता है; वन में वायु के चलने के कारण वांस आदि वृक्षों की परस्पर रगड़ से अग्नि की उत्पत्ति को देख कर भृगु ऋषि ने अरणियों में से अग्नि को मथन करके निकाला और उसको देव-पूजन के लिए स्थापन किया, इसलिये यह कहा गया है कि धन की न्याईं प्रशंसनीय इस अग्नि को वायु ने भृगुके ताईं भेट किया।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

अस्यशासुरुभयासःसचन्ते हुवि-
ष्मन्तउशिजोयेचमर्ताः। दिवश्चि-
त्पूर्वोन्यसादिहोता ऽऽपृच्छ्योवि-
श्पतिर्विक्षुवेधाः ।२।

अस्य	एतम् (द्वितीयार्थेषष्ठी)	इसको
शासुः	शासितारम् (द्वितीयार्थेषष्ठी)	आज्ञा करने वाले को
उभयासः	उभये (असुगागमः)	दोनों
सचन्ते	सेवन्ते	सेवन करते हैं
हविष्मन्तः	हविर्भिर्युक्ताः	हवियों से युक्त
उशिजः	मेधाविनः (निघं०।३।१५)	मेधावी
ये	ये	जो
च	च	और
मर्ताः	मनुष्याः	मनुष्य
दिवः	द्युलोकात्	द्युलोक से
चित्	अपि	भी
पूर्वः	पुरातनः	प्राचीन

नि	नि +	-
असादि	नि + असादि, न्यधायि	स्थापन किया गया
होता	होता	होता
आऽपृच्छ्यः	अन्वेष्टव्यः	खोजने योग्य
विश्पतिः	प्रजानांपालयिता	प्रजाओंका पालन करने वाला
विक्षु	प्रजासु	प्रजाओं में
वेधाः	विधाता	रचनेवाला

संस्कृतार्थः।

शासितारमेतं (अग्निम्) मेधाविनो हविर्भिर्युक्ताश्चये मनुष्याः (ते) उभये सेवन्ते, द्युलोकादपि पुरातनः प्रजानां विधाता पालयिता (च) अन्वेष्टव्यः (सः)होता प्रजासु न्यधायि ॥ २ ॥

भाषार्थः।

इस (अग्नि) को मेधावी और जो हवियों से युक्त मनुष्य (हैं वे) दोनों सेवन करते हैं,द्युलोकसे प्राचीन प्रजाओं की उत्पत्ति (और) उनका पालन करनेवाले,

अन्वेषण करने योग्य (वह) होता प्रजाओं में स्थापन किये गये हैं ॥ २ ॥

(१) जो मेधावी हैं अर्थात् विद्या में रत हुए २ जो कर्मकाण्ड से निवृत्त होचुके हैं। और जो हविसे पूजन करने वाले हैं ये दोनों प्रकार के मनुष्य आज्ञा करने वाले इस अग्नि का सेवन करते हैं कारण यह है कि उन मेधावियों को धारणाशक्ति भी प्रकाश और ऊष्मा की भांई अग्नि से उत्पन्न होती है।

यह देवताओं का मनुष्यों पर परम उपकार है कि उन के बीच में ऐसे महान देव स्थापन किए गए हैं, जो द्युलोक से भी प्राचीन हैं, जो देवहोता है, जो प्रजाओं को उत्पत्ति और उनका पालन करते हैं और जो सब से खोजने योग्य हैं।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।१११।११११।११।

तंन॑व्यसी॑हृदआजायमान मस्म-

त्सुकीर्त्तिर्मधुजिह्वमश्याः। यम्रुत्वि-

जोहृजनेमानुषासः प्रयस्वन्तआय-

वोजीजनन्त ।३।

तम्	तम्	उसको

नव्यसी	नवीयसी (ईकारलोपश्छान्दसः)	अतिशय करके नवीन
हृदः	हृदयात्	हृदयसे
आ	आ +	–
जायमानम्	जायमानम्	उत्पन्न होते हुए को
अस्मत्	अस्मदीया	हमारी
सुऽकीर्त्तिः	स्तुति	स्तुति
मधुऽजिह्वम्	मधुरजिह्वोपेतम्	मीठी जिह्वा वाले को
अश्याः	आ+अश्याः, सम्मुखं व्याप्नोत् (विकरणस्यलुक्,व्यत्ययेनपरस्मैपदमध्यमौ)	सम्मुख प्राप्त हो
यम्	यम्	जिसको
ऋत्विजः	ऋत्विजः	ऋत्विजों ने
वृजने	प्राकारे (आ०को०)	घिरे हुए स्थान में

मानुषासः	मनुवंशीयाः	मनुवंशी
प्रयस्वन्तः	(हवीरूप–,अन्न-युक्ताः	(हविरूप) अन्नसे युक्त
आयवः	मनुष्याः (निघं०२।३।)	मनुष्यों ने
जीजनन्त	प्रादुष्कृतवन्तः (अजमायः)	उत्पन्न किया

संस्कृतार्थः ।

हृदयाज्जायमानं मधुरजिह्वोपेतम् (अग्निम्) अस्मदीया नवतरा स्तुतिराभिमुख्येन प्राप्नोतु, यम् (हवीरूप-) अन्नयुक्ता मनुवंशीया मनुष्या ऋत्विजः प्राकारे प्रादुष्कृतवन्तः ॥३॥

भावार्थः।

हृदय से उत्पन्न मीठी जिह्वा वाले उस (अग्नि) को हमारी अतिशय करके नवीन स्तुति सम्मुख प्राप्त हो, जिसको (हविरूप) अन्न से युक्त, मनुवंशी मनुष्य ऋत्विजों ने घिरे हुए स्थान में उत्पन्न किया है ॥ ३ ॥

जिस अग्नि को यज्ञों में चटाई का घेरा बना कर ऋत्विजों ने हृदय से अर्थात् श्रद्धा से मथन द्वारा उत्पन्न किया है उसको हमारी यह अति नवीन सूक्त रूप स्तुति प्राप्त हो।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

उशिक्पावकोवसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताऽधायिविक्षु। दमूनागृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद्रयिपतीरयीणाम्।४।

उशिक्	कामयमानः	कामना करता हुआ
पावकः	पावकः	पवित्र करने वाला
वसु	धनवान् (आ०को०)	धनवान
मानुषेषु	मनुष्येषु	मनुष्यों में
वरेण्यः	वरणीयः	वरने योग्य
होता	होता	होता
अधायि	स्थापितोऽभूत्	स्थापन कियागया

विक्षु	प्रजासु	प्रजाओं में
दमूनाः	गृहासक्तमनाः (निघ०४।१)	घरमें आसक्त मन वाला
गृहऽपतिः	गृहाणांपालयिता	घरों की रक्षा करने वाला
दमे	गृहे	घर में
आ	आ +	–
अग्निः	अग्निः	अग्नि
भवत्	आ+भुवत्, भवतु (लेटिरूपम्)	हो
रयिऽपतिः	धनपालकः	धन पालक
रयीणाम्	धनानाम्	धनों का

संस्कृतार्थः ।

मनुष्येषु कामयमानः पावको धनवान् (अग्निः) प्रजासु वरणीयो होता स्थापितोऽभूत्, गृहासक्तमना गृहाणां पालयिता (सोऽस्मद्-) गृहे धनानां पालको भवतु ॥ ४ ॥

भावार्थः ।

मनुष्यों में कामना करने वाले, पवित्रकारी, (और) धनवान, (अग्नि) प्रजाओं में वरने योग्य होता स्थापन किये गये हैं, घर में आसक्त मनवाले घरों की रक्षा करने वाले (वह हमारे) घर में धनों के पालक हों ॥४॥

(१) अग्निदेव घर में मोह रखने वाले हैं इसलिए घर में मोह रखना देवगुण होने से प्रशंसनीय है ।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११॥

तंत्वावयंपतिमग्नेरयीणां प्रशंसा-
मोमतिभिर्गोतमासः । आशुंनवाजं-
भरंमर्जयन्तः प्रातर्मक्षूधियावसुर्ज-
गम्यात् ।५।

तम्	तम्	उसको
त्वा	त्वाम्	तुझ को
वयम्	वयम्	हम

प॒ति॑म्	स्वामिनम्	स्वामी को
अ॒ग्ने॒	हे अग्ने !	हे अग्नि
र॒यी॒णाम्	धनानाम्	धनों के
प्र	प्र+	—
शं॒सा॒मः॒	प्र+शंसामः	प्रशंसा करते हैं
म॒तिऽभि॑ः	मननीयैः (स्तोत्रैः)	स्तोत्रों से
१ गोत॑मासः	गोतमवंशीयाः (जसोऽसुगागमः)	गोतमवंशी
आ॒शुम्	अश्वम् (निघं० १।१४)	घोड़े को
न	इस	जैसे
वा॒ज॒म्ऽभ॒रम्	(हवीरूप)अन्नस्य वोढारम्	(हविरूप) अन्न के ढोनेवाले को
२ म॒र्जय॑न्तः	मार्जयन्तः (वृद्ध्यभावः)	मार्जन करते हुए
प्रा॒तः	प्रातः	प्रातः काल में

मक्षु	शीघ्रम्	शीघ्र
धियाऽवसुः	ध्यानेन धनवान्	ध्यान द्वारा धन वाला
जगम्यात्	आगच्छतु (गमेर्लिङि शप-श्लु-श्छान्दसः)	आवे

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! गोतमवंशीया वयं धनानां स्वामिनम् (हवीरूप-) अन्नस्य वोढारम् (च) तं त्वामश्वमिव मार्जयन्तः स्तोत्रैः प्रशंसामः,ध्यानेन धनवान् (स भवान्) शीघ्रं प्रातरागच्छतु ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि! गोतमवंशी हम धनों के स्वामी (और हविरूप-) अन्न के ढोने वाले उस आप को घोड़े की न्याईं मार्जन करते हुए स्तोत्रों से प्रशंसा करते हैं ध्यान द्वारा धन वाले (वह आप) शीघ्र प्रातःकाल में आवें ॥५॥

(१) नोधा ऋषि गोतमवंशी है।

(२) जिस प्रकार घोड़े को मार लादने से पहले रगड़ कर पोंछते हैं इसी प्रकार हवि देने से पहले यज्ञ में अग्नि का सम्मार्जन करते हैं ॥

इतिषष्टितमं सूक्तम् ।

ऋ०सं०३१-३२ अङ्कयोः शुद्ध्यशुद्धिपत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१३११	५	भुष्टि	भृष्टि
१३४०	११	पालक	पालकः
१३४८	४	वाजभिः	वाजेभिः
१३५१	१४	लि	लिये
१३५२	७	ष्क्षादसः)	दक्षान्दसः
,,	१३	दक्षादसः)	दक्षान्दसः)
१३५४	८	पुरा	पुरा
१३५७	१४	लुंक)	लुंक्)
१३६७	३	रक्षिताः	रक्षिता
१३७५	३	मुर्ण्य	मूर्ण्य
१३७७	२१	उप	उप
१३७८	११	(सम्वेदिव	(सम्वेध्वि
१३७९	१४	पर्यानिम्	पर्यानिम्
,,	१६	पुतन्यवि	पुतन्यवि
१३८२	१२	(बध्नोति)	(बध्नाति)
१३८६	१०	दाम	दानु
,,	१७	(रिवहद्दो	(रिवनूद्दो
१३९२	१३	सुमसः	सुमसाः
१३९३	१६	सेध्व-	सेध्वध
१३९४	४	काकुत्व	कुकुत्व
१३९५	१२	इन्द्र	इन्द्र मे
,,	१३	(पपःमद	पर्पः(मद
१३९६	१२	अस्राणा	मस्राना
१३९७	५	तह	तह'
१३९८	५	धम्नम्	द्युम्नम्
१३९९	६	०को०)	(पा०को)
१४०२	१५	पाऽतप:	प्राऽतपः
१४०३	२	मिमीते	मिमीते
१४०५	१२	सुनात	सुनात्
१४१६	२	साप	सापो
,,	१६	यष्ट	यष्ट

विज्ञापन ।

अंक २५-२६ के साथ तीसरा साल पूरा हो जायगा जिन ग्राहकों का इस सालका चन्दा नहीं आया है उनकी सेवा मे अंक २५,२६ वी०पी० द्वारा भेजा जायगा, जो पंडित लोग चौथे सालके लिये स्वाध्याय करना अंगीकार करें वे भी कृपा करकेसूचना देवें जिससे उनका नाम रजिस्टरमें लिखा जावे ॥

पुस्तक मिलने का पता-
मुन्शी जयराम, मैनेजर
ऋग्वेद संहिता मुलतान

अक ३५-३६] [श्रावण भाद्रपद १९६६

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुलतान निवासी प० शङ्करदत्त
शास्त्री की सहायता से शिवनाथ
आहिताग्नि ने सम्पादन किया

लाहौर
पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में पिण्टर लाला,
सालसन के अधिकार से छपा।

१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)
पहले २४ अंकों का मूल्य ५॥)

ऋषि को डूबने से बचाया, शीघ्रकारी इन्द्रके प्राचीन कर्मोंको नवर स्तोत्रोंसे खूब कथन करना चाहिये जिससे वह हमारे शत्रुओंको खूब पीडित करें,मेधावी इन्द्रके रक्षण सामर्थ्य को बार बार कथन करने से तत्काल बल प्राप्त होता है जैसे नोधा ऋषि को हुआ, आर्य राजा स्वश्र के सूर्य नामी पुत्र से स्पर्धा करने वाले एतश ऋषि की इन्द्र ने रक्षा की, गोतमवंशी इस प्रकार आकर्षण करने वाले मन्त्रों से इन्द्र की खूब स्तुति करते थे, उन्हींमें नोधा ऋषि एक थे।

इन्द्रो देवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः।६१।११।११।१०

अस्माइदुप्रतवसेतुरायप्रयोन-
हर्मिस्तोमंमाहिनाय। ऋचीषमा-
याऽध्रिगवओह मिन्द्रायब्रह्माणि-
राततमा।१।

अस्मै	अस्मै	इसके लिये
इत्	(पूरणः)	–
उम्०	(पूरणः)	–
प्र	प्र+	–

तवसे	प्रवृद्धाय	बढे हुए के लिये
तुराय	त्वरमाणाय (तुरत्वरणे)	शीघ्रकारी के लिये
१ प्रयः	अन्नम् (मा०को०)	अन्न
न	इव	की न्याईं
हर्म्मि	प्र + हर्म्मि, समर्पयाम	अर्पण करता हूं
स्तोमम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
माहिनाय	पूजनीयाय (महतेरिनण् प्रत्ययः)	पूजनीय के लिये
ऋचीषमाय	ऋचासमाय, मन्त्रोक्तगुणशालिन इत्यर्थः (निघं०४।३)	मन्त्रोक्त गुण वाले के लिए
अध्रिऽगवे	अधृतगमनाय	न रोके जानेवाले के लिये
१ ओहम्	वहनीयम् (वहतेर्घञिसम्प्रसारणं छान्दसम्)	अर्पण करने योग्य को

इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के लिये
ब्रह्माणि	हवींषि (ब्रह्मेत्यन्ननाम निघं०२(७)	हवियों को
राततमा	अतिशयेनदत्तानि (शेर्लोपः)	अतिशय करके दिये हुओं को

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) प्रवृद्धाय, त्वरमाणाय, पूजनीयाय, मन्त्रोक्तगुणशालिनेऽप्रतिहतगमनायाऽस्मायिन्द्रायाऽन्नमिव वहनीयं स्तोत्रमतिशयेन दत्तानि हवींषि(च) समर्पयामि ॥१॥

भावार्थः ।

मैं बढ़े हुए,शीघ्रकारी,पूजनीय,मंत्रोक्तगुणवाले, किसी से न रोके जाने वाले इस इन्द्रके लिये अन्न की न्याईं अर्पण करने योग्य स्तोत्र को (और) अतिशय करके दी हुई हवियों को अर्पण करता हूं ॥१।

(१,नोधाऋषि इन्द्र के ताईं स्तोत्र अर्पण करते हैं जैसे कोई घर पर आए हुए मित्र को अन्न अर्पण करता है ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।१।१।१।१।१।१।१।

अ॒स्मा इदु॒ प्रय॑ इव॒ प्र यं॑सि॒ भरा॒म्या॑-
ङ्गू॒षं बाधे॑ सुवृ॒क्ति । इन्द्रा॑य हृ॒दा मन॑सा-
मनी॒षा प्र॒त्नाय॒ पत्ये॒ धियो॑ मर्जयन्त

॥२॥

अ॒स्मै	अस्मै	इसके लिये
इ॒त्	(पूरणः)	–
उ॒ म्०	(पूरणः)	–
प्रयः॑ऽइव	अन्नमिव	अन्न का न्याई
प्र	प्र+	–
यं॒सि॒	प्र + यंसि, प्रयच्छामि (पुरुषव्यत्ययः)	मैं देता हूं
भरा॑मि	प्रापयामि	पहुंचाता हूं

आङ्गूषम्	आघोषम् (निघं०४।२)	नाद को
बाधे	(शत्रूणाम्) बाधनाय (भावे केन प्रत्ययः)	(शत्रुओं को) पीडित करने के लिये
सुऽवृक्ति	सुष्ठ्वाकर्षकम्	खूब आकर्षण करने वाले को
इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के लिये
हृदा	हृदयेन	हृदय से
मनसा	मनसा	मन से
मनीषा	मनीषया (सुपामितितृतीयाया डादेशः)	बुद्धि से
प्रत्नाय	पुरातनाय	प्राचीन के लिए
पत्ये	स्वामिने	स्वामी के लिए
धियः	स्तुतीः (आ०को०)	स्तुतियों को
मर्जयन्त	सज्जी कृतवन्तः (आ०को०)	सजाया है

संस्कृतार्थः।

(अहम्) अस्मै (इन्द्राय) अन्नमिव (स्तोत्रम्) प्रयच्छामि [शत्रूणाम्] बाधनाय सुष्ठ्वाकर्षकं आघोषम्(च)प्रापयामि (ऋषयः)प्राचीनाय स्वामिन इन्द्राय हृदयेन मनसा मनीषया(च) स्तुतीः सज्जीकृतवन्तः ॥ २ ॥

भावार्थ।

मैं इस (इन्द्र) के ताईं अन्न की न्याईं (स्तोत्रको)देता हूं (और) [शत्रुओं को] पीडित करने के लिए खूब आकर्षण करने वाले नाद को पहुंचाता हूं (ऋषयों ने) प्राचीन स्वामी इन्द्र के लिये हृदय से मनसे (और) बुद्धिसे स्तुतियों को सजाया है॥ २ ॥

इन्द्रको हमारा स्तोत्र ऐसा प्रिय हो जैसे मित्र को मित्र का अन्न, इन्द्र के समीप खूब आकर्षण करने वाले स्तोत्र का उच्च ध्वनि पहुंचानी चाहिये ।

इन्द्रोदेवता विराट्त्रिष्टुप्छन्दः ।११।१०।१०।११।

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन । मंहिष्ठमच्छोक्ति-

भिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिंवावृध-
ध्यै । ३ ।

अस्मै	अस्मै	इस के लिए
इत्	(पूरणः)	–
ऊम्०	(पूरणः)	–
त्यम्	तम्	उस को
उपऽमम्	उपमेयम्	उपमा के योग्य को
स्वःऽसाम्	स्वर्गस्य दातारम (षणु दाने, अनुनासिकस्याऽऽत्वम्)	स्वर्ग के देने वाले को
भरामि	प्रापयामि	मैं पहुंचाता हूं
आङ्गूषम्	आघोषम्	नाद को
आस्येन	मुखेन	मुख से
मंहिष्ठम्	अतिशयेनप्रवृद्धम्	बहुत बढ़े हुए को

अच्छोक्ति ऽभिः	स्वच्छैर्वचोभिः	पवित्र वचनों से
मतीनाम्	स्तुतीनाम् (आ०को०)	स्तुतियों के
सवृक्तिऽभिः	सुष्ठ्वाकर्षकैः	खूब आकर्षण करने वालोंसे
सूरिम्	विपश्चितम्	विद्वान को
वव्रधध्यै	पुनःपुनर्वर्धयितुम्	बारंबार बढ़ाने के लिये

संस्कृतार्थः।

(अहम्) अतिशयेन प्रवृद्धं विपश्चितम् (इन्द्रम्) सुष्ठ्वाकर्षकैः स्तुतिनांस्वच्छैर्वचोभिःपुनःपुनर्वर्धयितुमस्मा उपमेयं स्वर्गस्य दातारं तमाघोषं सुखेन प्रापयामि। ३।

भावार्थः।

मैं बहुत बढ़े हुए बुद्धिमान (इन्द्र) को खूब आकर्षण करने वाले स्तुतियोंके पवित्र वचनों से बारंबार बढ़ानेके लिये उनके ताईं उपमाके योग्य(और) स्वर्गके देने वाले उस नादको सुखसे पहुंचाता हूं।३।

"उस नाद को" जिसका पिछले मंत्र में कथन है।

इन्द्रोदेवता। विराट् त्रिष्टुप्छन्दः।१०।११।१०।११।

अस्माइदुस्तोमंसंहिनोमि रथं-
नतष्टेवतत्सिनाय। गिरश्चगिर्वाह-
सेसुवृक्ती न्द्रायविश्वमिन्वंमेधिराय
॥४॥

अस्मै	अस्मै	इस के ताईं
इत्	(पूरणः)	–
ऊम्०	(पूरणः)	–
स्तोमम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
सम्	सम् +	–
हिनोमि	सम् + हिनोमि. प्रेरयामि	प्रेरण करता हूं
रथं	रथम्	रथ को

न	इव	जैसे
१ तष्टाऽइव	(रथ) निर्म्मातेव	रथ बनाने वाले की न्याईं
तत्ऽसिनाय	तेन(रथेन)सिनम् अन्नं यस्य तस्मै रथिने (सिनमित्यन्ननाम निघं०२।७)	रथवान के ताईं
गिरः	स्तुतीः	स्तुतियों को
च	च	और
गिर्वाहसे	स्तुतिभिरुह्यमानाय	स्तुतियों से प्राप्त होने वाले के ताईं
सुऽवृक्ति	सुष्ठ्वाकर्षकम्	खूब आकर्षण करने वाले को
इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के ताईं
विश्वम् ऽइन्वम्	सर्वस्य चालकम् (लुगभावश्छान्दसः)	सब के हिलाने वाले को

मेधिराय	मेधाविने (मत्वर्थीयइरन् प्रत्ययः)	मेधावी के ताईं

संस्कृतार्थः।

(अहम्) मेधाविने अस्मायिन्द्राय सुष्ठ्वाकर्षकं सर्वस्यचोलकं स्तोत्रं रथनिर्मातेव रथिनेरथमिव प्रेरयामि स्तुतिभिरुह्यमानाय स्तुतीः (च प्रापयामि)॥४॥

भावार्थः।

मैं इस मेधावी इन्द्र के ताईं खूब आकर्षण करने वाले सबको हिलानेवाले स्तोत्रको प्रेरण करता हूं जैसे रथकार रथवान के लिये रथ को (बनाता है और) स्तुतियों से प्राप्त होने वालेके ताईं मैं स्तुतियों को (पहुंचाता हूं)॥४॥

(१) जैसे रथ बनाने वाला रथवान के लिये रथ बना कर देता है वैसे नोधा ऋषि इन्द्र के लिये स्तोत्र को देते हैं।

(२) स्तुति सब को हिलाने वाली है देवता मनुष्य पशु वृक्ष सब को।

इन्द्रोदेवता निचृत्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।१०।

अस्माइदुसप्तिमिवश्रवस्ये न्द्रा-

याकैजुह्वाऽसमञ्जे । वीरंदानौक-
संवन्दध्यैपुरांगूर्तश्रवसंदर्म्माणम्॥५॥

अस्मै	अस्मै	इसके ताईं
इत्	(पूरणः)	–
उम्०	(पूरणः)	–
सप्तिम् ऽइव	अश्वमिव (निघं०१।१४)	घोड़े की न्याईं
श्रवस्या	यशइच्छया (तृतीयायाडादेशः)	यश की इच्छा से
इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के ताईं
अर्कम्	ऋच्यतेस्तूयते येन तम् (स्तोत्रम्)	स्तोत्र को
जुह्वा	आह्वानसाधन रूपया (जिह्वया)	जिह्वा से

सम्	सम् +	
अञ्जे	सम् + अञ्जे प्रसाधयामि (व्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदम्)	मैं सजाता हूं
वीरम्	वीरम्	वीर को
दानऽओकसम्	दानस्यगृहम्, मूलम्	दान के मूल को
वन्दध्यै	वन्दितुम्	पूजने के लिए
पुराम्	पुराणाम्	गढ़ों के
गूर्तऽश्रवसम्	गूर्तंगेयंश्रवोयशोयस्यतम्	गान करने योग्य यश वाले को
दर्माणम्	विदारयितारम्	तोड़ने वाले को

संस्कृतार्थः।

(अहम्)पुराणां विदारयितारं दानस्य मूलं गेय-

यशसं, वीरं वन्दितुं यश इच्छयाऽस्मायिन्द्रायाऽश्व-
मिव स्तोत्र जिह्वया प्रसाधयामि ॥५ ॥

भाषार्थ ।

मैं गढ़ों के तोड़ने वाले, दान के मूल, गान करने योग्य यशवाले वीर को पूजने के लिये यश की इच्छा से इन्द्र के निमित घोड़ेकी न्याईं स्तोत्र को जिह्वा द्वारा सजाता हू ।५।

जिस प्रकार मनुष्य यश की इच्छा से घोड़े को सजाते हैं वैसे गोधा ऋषि इन्द्र के लिये स्तोत्र को सजाते हैं ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

अस्मादुत्वष्टातक्षद्वज्रं स्वप-
स्तमंस्वर्य्यं१रणाय । वृत्रस्यचिद्विद
द्येनमर्म्म तुजन्नीशानस्तुजताकि-
येधाः ।६।

अस्मै ।	अस्मै	इसके लिये

इत्	(पूरणः)	—
उम्०	(पूरणः)	—
त्वष्टा	त्वष्टा	त्वष्टा ने
तक्षत्	रचितवान् (अडभावः)	रचा
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को
स्वपःऽतमम्	अतिशयेनकर्म-क्षमम् (अपइतिकर्मनाम निघं० २।१)	अत्यन्त कार्य साधक को
स्वर्यम्	शब्दनीयम् (स्वृशब्दे)	शब्द करने योग्य को
रणाय	युद्धाय	युद्ध के लिये
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
चित्	अपि	भी
विदत्	लब्धवान् (अडभावः)	प्राप्त किया

येन	येन	जिस से
मर्म्म	मर्म्मस्थानम्	जीवनके स्थानको
तुजन्	प्रहरन्	मारता हुआ
ईशानः	ऐश्वर्य्यवान्	ऐश्वर्य्य से युक्त
तुजता	हनन साधनेन	मारने के साधनसे
कियेधाः	कियतः,अनव-धृतपरिमाणस्य [बलस्य] धाः, धारकः	अमित (बल) के धारण करने वाले ने

संस्कृतार्थः ।

त्वष्टा ऽस्मै (इन्द्राय) अतिशयेनकर्मक्षमं शंस-नीयं वज्रं युद्धाऽर्थं रचितवान् हनन साधनेन येन प्रहरन्नैश्वर्य्यवानमितबलः (इन्द्रः) वृत्रस्य मर्म्मस्थानं लब्धवान् ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

त्वष्टाने इस (इन्द्र के) लिये अत्यन्त कार्य साधक शब्द करने योग्य वज्र को युद्ध के निमित्त घड़ा,मारने के साधन रूप जिससे मारते हुए, ऐश्वर्य्य से युक्त,

अमित बल वाले (इन्द्र ने) वृत्र के मर्म स्थान को प्राप्त किया ॥ ६ ॥

"मर्म स्थान को प्राप्त किया" अर्थात् मर्म स्थान में मारा।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११॥

अस्येदुमातुःसवनेषुसद्यो मह्ः-पितुंपपिवाञ्चार्वन्ना । मुषायद्विष्णुःपचतंसहीयान् विध्यद्वराहं-तिरोअद्रिमस्ता ।७।

अस्य	अस्य	इसके
इत्	(पूरणः)	–
उम्०	(पूरणः)	–
मातुः	मातुः	माता के
सवनेषु	सोमोत्सवेषु	सोमके उत्सवों में

सद्यः	सद्यः	तत्काल
मह्ः	यज्ञस्य (आ०को०) (क्विप्प्रत्ययः)	यज्ञ के
पितुम्	अन्नम (निघ०२।७)	अन्न को
पपिऽवान्	पीतवान्	पीया
चारु	रुच्यानि (शेर्लोपः)	रुचि करने वालों को
अन्ना	अन्नानि (शेर्लोपः)	अन्नों को
मुषायत्	अपहरन्	लूटता हुआ
विष्णुः	सर्वव्यापकः (वेवेष्टिव्याप्नोतीति, विष्लृव्याप्तौ)	सर्व व्यापक
पचतम्	पक्वम् (चरुम्)	पके हुए (चरु)को
सहीयान्	महाबलः	महाबली
विध्यत्	वेधितवान् (व्यधताडने,अडभावः)	बींधदिया

वराहम्	वृत्रम् (निघं०१।१०)	वृत्र को
तिरः	तिरः+	—
अद्रिम्	तिरः + अद्रिम् पर्वतान्तरितम्	पर्वत के बीच में से
अस्ता	अस्त्रक्षेपकः (असु क्षेपणे)	अस्त्र चलाने वाला

संस्कृतार्थः ।

सर्वव्यापको महाबलः (इन्द्रः) स्वमातुः सवनेषु रुच्यान्यन्नानि पक्वम् (चरुम्) (च) अपहरन् (सोमरूपम्) यज्ञस्यान्नं सद्यः पीतवान् (पुनः) अस्त्र क्षेपकः (सः) पर्वतान्तरितं वृत्रं वेधितवान् ॥ ७ ॥

भावार्थः ।

सर्वव्यापी महाबली (इन्द्र) अपनी माता के सवनोंमें रुचिकारी अन्नों (और) पके हुए (चरु) को लूटते हुए (सोम रूपी) यज्ञ के अन्न को तत्काल पी गए, (फिर उस) अस्त्र चलाने वाले ने पर्वत के बीच में से वृत्र को वींध दिया ॥ ७ ॥

इन्द्र की माता अदिति(Infinite nature) है,जब अदिति ने यह यज्ञ रचा कि जिस से इस पृथिवी पर जल बरस कर समुद्र बने तो इन्द्र अपना बल बढाने के लिये वर्षा की सामग्री रूप हवियों को लूट खसोट कर खा गए और तत्काल अर्थात् सवन से पहले ही सोम को पीगए, फिर प्राप्त बल इन्द्र ने काली घटा रूपी पर्वत के बीच में से धूलि कण रूपी वृत्र को बींध दिया, और पृथिवी पर बरसने के लिए जलों को छुडाया।

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । १०।११।११।११

अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नी रि-

न्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः । परि द्या-

वापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महि-

मानं परि ष्टः ।८।

अस्मै	अस्मै	इस के लिये
इत्	(पूरण)	–
उम्०	(पूरणः)	–

ग्नाः	वाणीरूपाः (निघं० १।११)	वाणी रूप
चित्	अपि	भी
देवऽपत्नीः	देवपत्न्यः (प्रथमार्थे द्वितीया)	देव पत्नियों ने
इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के लिये
अर्कम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
अहिऽहत्ये	वृत्रहनन(काले) (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः)	वृत्रके मारने के (समय)
ऊवुः०	ऊवुः (वेञ् तन्तुसन्ताने)	वुना
परि	परि +	–
द्यावा पृथिवी०	द्यावापृथिव्यौ	द्युलोक (और) पृथिवी को
२ जभ्रे	परि+जभ्रे, परि-जहार, अति-चक्रामेत्यर्थः (हृञ् हरणे लिटिरूपम्)	आगे निकल गया

उ॒र्वी॰	विस्तृते	विस्तार वालियों को
न	न	नहीं
अ॒स्य	अस्य	इसकी
ते॰	ते	वे दोनों
म॒हि॒मान॑म्	महिमानम्	महिमा को
परि॑	परि+	-
स्त॒ः॰	परि+स्तः, परिभवतः	उल्लंघन करतीहैं

सस्कृतार्थः ।

वाणीरूपा अपि देवपत्न्यो वृत्रस्य हनन(काले) अस्मायिन्द्राय स्तोत्रमूवुः (सच स्तुतइन्द्रः) द्यावापृथिव्यावतिचक्राम ते (च) अस्य महिमानं न परिभवतः ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

वाणी रूप देवपत्नियों ने भी वृत्र के वध के (समय) इस इन्द्र के लिए स्तोत्र का वुना, (स्तुति किये गए वह इन्द्र)विस्तार वाले द्युलोक (और)पृथिवी

से भी आगे निकल गए (और) वे दोनों इसकी महिमा को उल्लंघन नहीं करते ॥ ८॥

(१) गायत्री आदि छन्द वाणी रूपी देव पत्नियाँ हैं, जिन्हों ने वृत्र के वध के समय इन्द्र के लिये स्तोत्र को बुना जैसे स्त्रियाँ सूरमा के लिये फूलों का हार बुनती हैं।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

अस्येदेवप्ररिरिचेमहित्वं दिवस्पृथिव्याःपर्यन्तरिक्षात् । स्वराळिन्द्रोदमआविश्वगूर्तः स्वरिरमत्रोववक्षेरणाय । ९ ।

अस्य	अस्य	इस की
इत्	(पूरणः)	--
एव	खलु	सचमुच
प्र	प्र +	--

रिरिचे	प्र + रिरिचे, ववृधे	बढी
महिऽत्वम्	महत्त्वम्	महिमा
दिवः	द्युलोकात्	द्युलोक से
पृथिव्याः	पृथिव्याः	पृथिवी से
परि	अतिशयेन	अतिशय करके
अन्तरिक्षात्	अन्तरिक्षात्	अन्तरिक्ष से
स्वऽराट्	स्वतोराजमानः	स्वयंप्रकाशमान
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
दमे	गृहे	घर में
आ	अ +	–
विश्वऽगूर्तः	सर्व प्रियः (आ०को०)	सब को प्रिय
सुऽअरिः	शोभन शत्रुकः	बलवान शत्रु रखने वाला

अमत्रः	मात्रया-इयत्तया रहितः	असीम
ववक्षे	आ+ववक्षे, महत्त्वं प्राप्तवान् (ववक्षियेति महन्नाम निघं० ३।३)	महत्त्व को प्राप्त हुआ
रणाय	युद्धाय	युद्ध के लिए

संस्कृतार्थः ।

अस्य खलु (इन्द्रस्य) महत्त्वं द्युलोकात्पृथिव्या अन्तरिक्षात् (च) अतिशयेन ववृधे, स्वतोराजमानः सर्वं प्रियः शोभनशत्रुक इयत्तारहित इन्द्रो युद्धार्थं गृहे महत्त्वं प्राप्तवान् ॥ ९ ॥

भावार्थः ।

सचमुच इस (इन्द्र) की महिमा द्युलोक, पृथिवी, (और) अन्तरिक्ष से अत्यन्त बढ़ गई स्वयं प्रकाशमान, सब को प्रिय, बलवानशत्रु रखने वाले असीम इन्द्र युद्ध के लिये घर में वृद्धि को प्राप्त हुए ॥ ९ ॥

बलवान शत्रु को जीतने के लिए युद्धसे पहिले अपने घर में वृद्धि को प्राप्त होना चाहिये ॥

इन्द्रोदेवता विराट्स्थाना छन्द ।१०।१०। १० ।१०।

अस्येदेवशवसाशुषन्तं विवृश्चद्
वज्रेणवृत्रमिन्द्रः । गानव्राणाअवनीर-
मुञ्च दभिश्रवोदावनेसचेताः ॥१०॥

अस्य	अस्य (इन्द्रस्य)	इस (इन्द्र) के
इत्	(पूरणः)	-
एव	खलु	सचमुच
शवसा	बलेन	बलसे
शुषन्तम्	शुष्यन्तम्	क्षीण होते हुए को
वि	वि +	-
वृश्चत्	वि + वृश्चत्, संछेदितवान्	खूब छिन्न भिन्न किया
वज्रेण	वज्रेण	वज्र से

वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्रको
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र ने
गाः	गाः	गौओंको
न	इव	जैसे
वाणाः	आवृताः	रोकी हुइओं को
१ अवनीः	नदीः (निघ० १।१३)	नदियों को
अमुञ्चत्	मोचितवान्	छोड़ा
अभि	प्रति	की ओर
श्रवः	यशः	यश को
दावने	प्रदानाय (निघ ४।२)	दान के लिये
सऽचेताः	दत्तचित्तः	दत्तचित्त

संस्कृतार्थः।

अस्य(इन्द्रस्य)बलु नलेन शुष्यन्तं वृत्रं इन्द्रोवज्रेण सच्छेदितवान्,(सपत्र) यशः प्रति दानाय (च) दत्तचित्तः

(सन्) (वृत्रेण) आवृता नदीः (चोरैरपहृताः) गाइव मोचितवान् ॥१०॥

भावार्थः।

इन्द्र ने सचमुच अपने (अर्थात इन्द्र के) बल से क्षीण होते हुए वृत्र को वज्र द्वारा खूब छिन्न भिन्न किया, यश के प्रति (ओर) दान के लिये दत्तचित्त हुए २ (उन्होंने वृत्र से रोकी हुई नदियों को (चोर से हरण की हुई) गौओं की न्याईं छुड़ा दिया ॥१०॥

(१) नदियों को अर्थात जलों को जो वृत्र से छूट कर पृथिवी पर नदी रूप से बहते हैं।

इन्द्रोदेवता विराट्त्रिष्टुप् छन्दः ॥११॥१०॥११॥१०॥

अस्येदुत्वेषसारन्तसिन्धवः परि-

यद्वज्रेणसीमयच्छत्। ईशानकृद्दाशु-

षेदशस्यं तुर्वीतयेगाधंतुर्वणिः कः॥११॥

अस्य	अस्य	इसके
इत्	(पूरणः)	–

ऊम्०	(पूरणः)	–
त्वेषसा	दीप्त्या	दीप्ति से
रन्त	अरमन्त (रमुक्रीडायां,अडभावः, धातोरन्त्यलोपश्च च्छान्दसः)	रमण किया है
सिन्धवः	नद्यः (निघ० १।१३)	नदियों ने
परि	परि+	–
यत्	यतः	क्योंकि
वज्रेण	वज्रेण	वज्र द्वारा
सीम्	(पूरणः)	–
अयच्छत्	परि+अयच्छत् परिगतवान्	घेर लिया
ईशानऽकृत्	यः (शत्रुवधेनाऽऽत्मानम्) ऐश्वर्य्यवन्तं करोति	ऐश्वर्य्य वाला
दाशुषे	(हविः) दत्तवते	(हवि) देने वाले के ताईं

दशस्यन्	प्रयच्छन्	देता हुआ
तुर्वीतये	तुर्वीतये	तुर्वीति के लिये
गाधम्	तरणयोग्यं स्थानम्	पार उतरने के स्थान को
तुर्वणिः	शीघ्रकारी (निघं०४।३)	शीघ्रकारी
कः०	अकार्षीत् (करोतेर्लुङि च्लेर्लुक्, [illegible]लोपः, अडभावश्च)	बनाया

संस्कृतार्थः ।

अस्य (इन्द्रस्य) दीप्त्या नद्योऽरमन्त,यतः (अपमेताः) वज्रेण परिगतवान्, सः शीघ्रकार्य्यैश्वर्य्यवान् (इन्द्रः,हविः) दत्तवते (धनम्) प्रयच्छन् तुर्वीतये तरण स्थानमकार्षीत् ॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

इस (इन्द्र) की दीप्ति से नदियों ने रमण किया है क्योंकि (इसने इनको) वज्रसे घेर लिया, (हवि) देने वाले के ताईं (धन को) देते हुए शीघ्रकारी ऐश्वर्य्यवान (इन्द्र ने) तुर्वीति के लिए पार उतरने के योग्य स्थानको बनाया ॥ ११ ॥

तुर्वीति ऋषि किसी नदी में डूबने लगे थे, उस समय इन्हों-ने इन्द्र का स्मरण किया तो इन्द्र ने पार उतरने के योग्य थोड़े जल के स्थान में पहुंचा कर इनकी रक्षा की ॥

इन्द्रो देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।१०।११

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय-
वज्रमीशानः कियेधाः । गोर्न पर्व वि र-
दा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥१२॥

अस्मै	अस्मै	इसके ताईं
इत्	(पूरणः)	–
उम्०	(पूरणः)	–
प्र	प्र+	–
भर	प्र+भर,प्रक्षिप	फेंको
तूतुजानः	त्वरमाणः (निघं०२।१५)	शीघ्रताकरता हुआ

वृत्राय	वृत्राय	वृत्र के ताईं
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को
ईशानः	ईश्वरः	ईश्वर
कियेधाः	कियतः,अनवधृत परिमाणस्य (बल-स्य) धारकः	अमित (बल) के धारण करने वाला
१ गौः	पशोः (अमरः)	पशु के
न	इव	की न्याईं
पर्व	पर्वाणि (शेर्लोपः)	जोड़ों को
वि	वि+	–
रद	वि+रद, छिन्धि	काटो
तिरश्चा	तिरश्चा	तिरछे से
इष्यन्	प्राप्नुवन्	प्राप्त होता हुआ
अर्णांसि	नदीः (नि०१।१३)	नदियों को

अपाम्	अपाम्	जलों के
चरध्यै	गमनाय	प्राप्त होनेके लिए

संस्कृतार्थः

(हे इन्द्र !) त्वरमाणोऽपरिमितबल ईश्वरः (त्वम्)अस्मैवृत्राय वज्रं प्रक्षिप(अन्तरिक्षस्थाः) नदीः (च) प्राप्नुवन् जलानां गमनाय (वृत्रस्य) पर्वाणि तिरश्चा (वज्रेण) छिन्धि यथा (मांसस्य विकर्तारः) पशोः (अवयवान् छिन्दन्ति) ॥ १२ ॥

भावार्थः।

(हे इन्द्र !) शीघ्रता करते हुए, अमित बलवाले ईश्वर आप इस वृत्रके ताईं वज्र को फेंकें(और अन्त रिक्ष की) नदियों को प्राप्त होकर जलों के गमन के लिये (वृत्र के) जोड़ों को तिरछे (वज्र) से काटें जैसे (कसाई) पशु के (जोड़ों को काटते हैं) ॥ १२ ॥

(१) उपमा का प्रयोजनशत्रु वधरूप मनोगत भाव को दृढ करने का है।

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ॥१११११११०।११॥

अस्येदुप्रब्रूहिपूर्व्याणि तरस्य-

कर्म्माणिनव्यउक्थैः। युधेयदिष्णा-
नआयुधा न्यृघायमाणोनिरिणाति-
शत्रून्। १३।

अस्य	अस्य	इसके
इत्	(पूरणः)	–
उम्०	(पूरणः)	–
प्र	प्र+	–
ब्रूहि	प्र+ब्रूहि,प्रकर्षेण कथय	खूब कथन करो
पूर्व्याणि	पुरातनानि	प्राचीनोंको
तुरस्य	त्वरमाणस्य	शीघ्रकारी के
कर्म्माणि	कर्म्माणि	कर्म्मों को

नव्यः	नवीनैः (सुपांसुलुगिति तृतीयायाः सुः)	नयों से
उक्थैः	शस्त्रैः	स्तोत्रों से
युधे	युद्धाय	युद्ध के लिये
यत्	यतः	क्योंकि
ब्रुवाणः	पुनः पुनःप्रक्षिपन् (इयमाभीक्ष्ण्ये,व्यत्ययेना ऽऽत्मने पदम्)	बारबार फेंकता हुआ
आयुधानि	आयुधानि	अस्त्रों को
ऋघायमाणः	क्रोधंकुर्वाणः (धा॰को॰)	क्रोध करता हुआ
निऽरिणाति	अतिशयेन व्यथयति (धा॰को॰)	अत्यन्त पीडित करता है
शत्रून्	शत्रून्	शत्रुओं को

संस्कृतार्थः।

(हे आर्य्यगण!) त्वरमाणस्याऽस्य (इन्द्रस्य) पुरातनानि कर्म्माणि नवीनैः शस्त्रैः प्रकथय यतः

क्रोधंकुर्वाणः (अयमिन्द्रः) युद्धाय पुनः पुनरायुधानि प्राक्षपन् शत्रूनतिशयेन व्यथयति ॥ १३ ॥

भाषार्थः ।

(हे आर्य्यगण) इस शीघ्रकारी (इन्द्र) के प्राचीन कर्म्मों को नए स्तोत्रों से खूब कथन करो क्योंकि क्रोध करते हुए (यह इन्द्र) युद्धके निमित्त अस्त्रों को बारंबार चलाते हुए, शत्रुओं को अत्यन्त पीड़ित करते हैं ॥ १३ ॥

इस से यह उपदेश मिलता है कि हम भी इन्द्र के प्राचीन कर्मों को जो ऋषियों ने मन्त्रों में गाए हैं, अपनी भाषा में नए २ भजनों द्वारा खूब कथन करें, वैदिक धर्म तभी जीवित हो सकता है जब हम ऐसा करें।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

अस्येदुभियागिरयश्चदृह्ळा द्यावाचभूमाजनुषस्तुजेते। उपोवेनस्यजोगुवानओणिं सद्योभवद्वीर्याय नोधाः ।१४।

अस्य	अस्य	इसके
इत्	खलु	सच मुच
ऊम्°	(पूरणः)	–
भिया	भयेन	भय से
गिरयः	पर्वताः	पर्वत
च	अपि	भी
दृळ्हाः	दृढाः	निश्चल
द्यावा	द्यावा+	–
च	च	और
भूम	द्यावा+भूम,द्यावा पृथिव्यौ (अत्यंतछान्दसम्)	द्यौ (और) पृथिवी
१ जनुषः	प्रादुर्भूतस्य	प्रकट हुए के

तुजेते०	कम्पेते (सा०भा०)	दोनों कांपती हैं
उपो०	उपो+	–
वेनस्य	मेधाविनः (निघं०३।१५)	मेधावी के
जोगुवानः	उपो + जोगुवानः पुनःपुनरुपशब्दयन्	बार बार वर्णन करता हुआ
ओणिम्	ओणति अपनयति (दुःखम्) तं रक्षणसामर्थ्यम्	रक्षणसामर्थ्य को
सद्यः	तत्क्षणे	तत्काल
भुवत्	अभवत् (भवतेर्लङ्यडादेशो ऽडभावश्छान्दसः)	हुआ
वीर्याय	वीर्याय	बल के ताईं
२ नोधाः	नोधाः	नोधा

संस्कृतार्थः।

प्रादुर्भूतस्याऽस्य (इन्द्रस्य) खलु भयेन दृढाः

पर्वता अपि (कम्पन्ते) द्यावापृथिव्यौ च कम्पेते,नोधाः (अस्य) मेधाविनो रक्षणसामर्थ्यं पुनः पुनर्वर्णयं-स्तत्क्षणे वीर्य्यवानभवत् ॥ १४ ॥

भावार्थः ।

सचमुच प्रकट हुए२ इस (इन्द्र) के भय से दृढ़ पर्वत भी (कांपते हैं) और द्यौ और पृथिवी कांपती हैं (इस) मेधावी के रक्षण सामर्थ्य का वार वार वर्णन करता हुआ नोधा तत्काल वलयुक्त हुआ ॥ १४ ॥

(१) जब से इस द्यौ और पृथिवी को अलग करके बीच में इन्द्रदेव प्रकट हुए हैं, तब से इनके भय से पर्वत और द्यावा पृथिवी सब कांपते हैं ।

(२) नोधा ऋषि इस सूक्त के द्रष्टा हैं जैसे यह इन्द्र के रक्षण सामर्थ्य को वारंवार वर्णन करने से तत्काल वीर्य्यवान हुए वैसे हम सब हो सकते हैं।

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुपछन्दः ११।१०।११।११

अस्माइदुत्यदनुदाय्येषामेको-

यद्वव्नेभूरेरीशानः। प्रैतशंसूर्य्येपस्पृ-

धानं सौवश्व्येसुष्विमावदिन्द्रः ॥१५॥

अस्मै	अस्मै	इसके ताईं
इत्	खलु	सच मुच
ऊम्०	(पूरण:)	—
त्यत्	तत्	वह
अनु	अनु+	—
दायि	अनु+दायि अन्वदायि (अडभाव:)	अर्पण किया गया
१ एषाम्	एषाम्	इन के
एक:	अद्वितीयः	अद्वितीय ने
१ यत्	यत्	जो
व०ने	ययाचे	मांगा
भूरे:	प्रभूतस्य	बहुतों का
ईशान:	स्वामी	स्वामी

प्र	प्र+	—
एतशम्	एतशम्(ऋषिम्)	एतश (ऋषि) को
सूर्ये	सूर्ये	सूर्य में
पस्पृधानम्	स्पर्धमानम् (लिटः कानच्)	स्पर्धा करते हुए को
सौवश्व्ये	स्वश्व-(राज्ञः)पुत्रे	(राजा) स्वश्व के पुत्र में
सुस्विम्	(सोमस्य) अभिषोतारम् (सुञ् अभिषवे)	(सोमके)निचोड़ने वाले को
आवत्	प्र+आवत्,प्रकर्षेण रक्षितवान्	खूब रक्षित किया
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र ने

संस्कृतार्थः ।

प्रभूवसुः (धनस्य) स्वामी, अद्वितीयः (इन्द्रः) पदाम्(पदार्थानां मध्ये)यद् ययाचे तदस्मा अन्वदायि, इन्द्रः सूर्यनाम्नि स्वश्व-(राज्ञः) पुत्रे स्पर्धमानम् (सोमस्य) अभिषोतारमेतशम् (ऋषिम्) प्रकर्षेण रक्षितवान् ॥ १५ ॥

भावार्थ।

बहुत (धन) के स्वामी अद्वितीय (इन्द्र) ने इन (पदार्थों में से) जो मांगा वही इनके ताईं अर्पण किया गया, इन्द्र ने (राजा) स्वश्व के सूर्य्य नामी पुत्र में स्पर्धा करनेवाले (सोम को) निचोड़ने वाले एतश (ऋषि की) खूब रक्षा की ॥ १५ ॥

(१) सब पदार्थ इन्द्र के हैं इन में से जो कुछ इन्द्र ने मांगा वह हवि रूप में उनको दिया गया।

(२) आर्य्य राजा स्वश्व के सूर्य्य नामी पुत्रसे किसी विषय में स्पर्धा होनेपर इन्द्र ने सोम निचोडने वाले एतश ऋषिकी रक्षा की थी।

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११।

एवा ते हारियोजना सुवृक्ती न्द्र-
ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्। एषु वि-
श्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियाव-
सुर्जगम्यात्।१६।

एव	खलु	सच मुच
ते	तुभ्यम्	तेरे लिए

	हारिऽयोजन	हे अश्वयोर्योजयितः !	हे दो घोड़ों के जोड़ने वाले
	सुऽवृक्ति	सुष्ठ्वाकर्षिणीः (शेर्लोपः)	खूब आकर्षण करनेवालियों को
	इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
	ब्रह्माणि	मन्त्ररूपाः स्तुतीः	मन्त्ररूप स्तुतियों को
१	गोतमासः	गोतमवंशीयाः	गोतम वंशियों ने
	अक्रन्	आ + अक्रन्, कृतवन्तः	किया
	आ	आ+	–
	एषु	एषु	इन में
२	विश्वऽपेशसम्	विश्वरूपाम् (लिङ्गव्यत्ययः)	सबरूप वाली को
	धियम्	बुद्धिम्	बुद्धि को
	धाः	स्थापय (लोडर्थे लुङ्)(अडभावः)	स्थापन कर

प्रातः	प्रातः	प्रातः काल में
मक्षु	शीघ्रम्	शीघ्र
धियाऽवसुः	ध्यानेनधनवान्	ध्यान द्वारा धन वाला
जगम्यात्	आगच्छतु	आवे

संस्कृतार्थः।

हे अश्वयोर्योजयितः! हे इन्द्र! गोतमवंशीयास्त्वदर्थं सुष्टुवाकर्षिणोर्मन्त्ररूपाःस्तुती कृतवन्तः (त्वम्) एषु विश्वरूपां बुद्धिं स्थापय ध्यानमात्रेण धनवान् (भवान्) शीघ्रं प्रातरागच्छतु ॥ १६ ॥

भावार्थः।

हे दो घोड़ों के जोड़ने वाले हे इन्द्र! गोतम वंशियों ने आप के लिये खूब आकर्षण करने वाली मंत्र रूप स्तुतियों को किया है आप इन में सब रूप वाली बुद्धि को स्थापन करें, ध्यान मात्र से धनवान (आप) प्रातःकाल में शीघ्र आवें ॥ १६ ॥

(१) नोधा ऋषि गोतम वंशी हैं।

(२) सब रूपवाली बुद्धि अर्थात ऐसी बुद्धिजो सम्पूर्ण विषयों के साथ तादात्म्य रूप हो कर प्रत्येक रूपवाली हो सके।

इत्येकषष्टितमं सूक्तम्।

ऋ०मं० १ सू० ६२

नोधा ऋषिः

विनियोग-"तदुप्रयक्षतमं-" इस छठे मंत्र से प्रवर्ग्य इष्टि में स्तुति की जाती है (आ० औ०सू० ४।७।४)

शेष मंत्रों का लैङ्गिक विनियोग है

इस सूक्त में नोधा ऋषि जो पिछले ऋषियों में से हैं प्राचीन ऋषियों की भावनाओं को नये स्तोत्र में वर्णन करते हैं अङ्गिरा, नवग्वा, दशग्वा ये उस समय के ऋषि हैं जब मनुष्यों में प्रथम और अग्रगण्य यह आर्यजाति बुद्धि को इस कोटि को प्राप्त होगई थी कि सृष्टि की अद्भुत घटनाओं के कारण को विचार सके। सब से पहिली दुःख दाई घटना मेरुदेश की लम्बी रात्रि थी, अन्धकार रूपी असुर जिनको बल पणि इत्यादि नामोंसे वर्णन किया है सूर्यकी किरण रूपी गौओं को हरण करके छिपा लेते थे इसी लिये रात्रि का अवसान नहीं होता था इस अवस्था में अङ्गिरा आदि ऋषियों ने इन्द्र की स्तुति करके उन का बल बढ़ाया जिस से वह असुरों से युद्ध करके गौओं को छुड़ावें, इन्द्र उषा रूपी देवताओं की कुतिया को जिस को सरमा नाम से वर्णन किया है गौओं के छिपने के स्थान को ढूंढने के लिये भेजते हैं-वह जब उनका पता लगाकर लौटती है तब इन्द्र बल को मार कर पणियों से गौओं को छुड़ाते हैं. सरमा अर्थात उषा आगे२ चलती है और कुछ काल पीछे सूर्य रूपी इन्द्र किरण रूपी गौओं को साथ लिये हुए आते हैं और रात्रि का अवसान होता है।

[ऋषि की यह कल्पना "कि जिस प्रकार हमारी अभीष्टसिद्धि के लिये स्तुति द्वारा इन्द्र के बल को बढ़ानेकी आवश्यकता है इसी प्रकार सूर्य उदय होने के लिये हमारे प्राचीन पितर अंगिरा आदि

ऋषियों की स्तुति की आवश्यकताथी" हमें अनोखी प्रतीत होती है परन्तु उपासककी किसी कामना का पूर्ण होना ऐसाही नियमसे बद्ध है कि जैसा सूर्य्य का उदय होना। वेदका आशय यह है कि स्तुति से आत्मा(और आत्मा ही इन्द्रआदि देवता हैं)का बल बढ़ता है चाहे वह स्तुति किसी मिष से कीजाए (१)अपनी कामना पूर्तिके लिये वा(२) जाति की उन्नतिके लिये वा (३)मनुष्यमात्र के उपकार के लिये (४) वा देवताओं को सृष्टि क्रम के चलाने में सहायता देने के लिये – ये कामनाए उत्तरोत्तर क्रम से श्रेष्ठ हैं और अन्तिम (४)कामना करने की योग्यता रखनेके कारण अंगिरा अथर्वा इत्यादि ऋषि देवताओं की तुलना में गिने जाते हैं, यह याद रखना चाहिये कि योग्यता क्रम पूर्वक उन्नति करने से होती है–हमारे लिये अन्तिम कामना करना निरर्थक है वर्तमान अवस्था में तो साधारण मनुष्यों के लिये पहिली,और उत्तम पुरुषोंके लिये पहिली और दूसरी कामनाएं ही उन्नति के मार्ग पर डालने वाली हैं–जो स्वयं उन्नत और उनकी जाति उन्नत है उनको तीसरी कामना के लिये स्तुति करना योग्य है और जब इस पृथिवी की सब जातियां उन्नति के शिखर को पहुंच जायें तब चौथी कामना के लिये स्तुति करना असंगत नहीं होगा]

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११

प्रमन्महे शवसानायशूष मङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत्। सुवृक्तिभिः

स्तुवतऋग्मियाया ऽर्चामाऽर्कं नरे-

विश्रुताय ।१।

प्र	प्र+	–
मन्महे	प्र+मन्महे प्रकर्षेण चिन्तयामः	हम खूब चिन्तन करते हैं
शवसानाय	(शवोबलं तदिवाऽऽचरते) बलवते	बलवान के लिए
शूषं	बलम् (निघं०२।९)	बल को
आङ्गूषम्	स्तोत्रम् (निघं०३।२)	स्तोत्र को
गिर्वणसे	गीर्भिःस्तुतिभिः सम्भजनीयाय (वनसम्भक्तौ)	स्तुतियांसे सेवन करने योग्य के लिये
[1] अङ्गिरस्वत्	अङ्गिरस इव	अङ्गिराओं की न्याईं
[2] सुवृक्तिऽभिः	सुष्ठ्वाकर्षकैः (वचोभिः)	खूबआकर्षणकरने वाले(वचनों) से

२ स्तवते	स्तुतिंकुर्वता (सुपामितिविभक्तेः शे नादेशः)	स्तुति करने वाले से
२ ऋग्मियाय	अर्चनीयाय (ऋगममर्हतीति,मर्हार्थे घच्)	पूजनीय के लिए
अर्चाम	नमस्कारेणोच्चारयाम	हम नमस्कार के साथउच्चारण करें
अर्कम्	मन्त्रम् (अर्च्यतेऽनेनेत्यर्कः)	मन्त्र को
नरे	नराय (गुणश्छान्दस)	नर के लिए
विऽश्रुताय	विख्याताय	प्रसिद्ध के लिए

संस्कृतार्थः ।

अङ्गिरस इव (वयम्) बलवते बलं स्तुतिभिः सम्भजनीयाय (च) स्तोत्रं प्रकर्षेण चिन्तयामः, स्तुतिं कुर्वता सुष्ठुवाकर्षकैः (वचोभिः) ऽर्चनीयाय विख्याताय नराय नमस्कारेण मन्त्रमुच्चारयाम ॥ १ ॥

भावार्थः ।

अङ्गिराओं की न्याईं हम बलवान के लिये बल को (और) स्तुतियों से सेवन करने योग्य के लिये

स्तोत्र को चिन्तन करते हैं, स्तुति करने वाले से खुब आकर्षण करनेवाले(१)वचनों द्वारा पूजने योग्य प्रसिद्ध नर के लिए हम नमस्कार के साथ मन्त्र को उच्चारण करें ॥१॥

(१) अङ्गिरा, आदिऋषियों में से हैं जब आर्य्यजाति उत्तर मेरुके समीप रहती थी, और नोधा पिछले ऋषयों में से हैं। मन्त्र का तात्पर्य यह है कि जैसे अङ्गिरायों ने इन्द्र के लिये बल और स्तोत्र को चिन्तन किया वैसे ही हम पिछले स्तोता लोग भी करते हैं ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

प्र वो॑ म॒हे महि॒ नमो॑ भरध्वमाङ्गू॒ष्यं॑

शवसा॒नाय॒ साम॑। येना॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑

पद॒ज्ञा अर्च॑न्तो॒ अङ्गि॑रसो॒ गा अवि॑-

न्दन् ।२।

प्र | प्र+ | –

वः	यूयम् (प्रथमार्थे द्वितीया)	तुम सब
महे	महते	महान के लिए
महि	महत्	परम को
नमः	नमस्कारम्	नमस्कार को
भरध्वम्	प्र + भरध्वम्, प्रापयत	पहुचाओ
आङ्गूष्यम्	आघोषयोग्यम्	उच्चस्वर से गाने योग्य को
शवसानाय	बलवते	बलवान के लिए
साम	सामगानम्	साम गान को
येन	येन	जिसके द्वारा
नः	अस्माकम्	हमारे
पूर्वे	पुरातनाः	प्राचीन
पितरः	पितरः	पितरों ने

१ प॒द॒ऽज्ञाः	मार्गस्य ज्ञातारः	रस्ते के जानने वालों ने
अर्चन्तः	पूजयन्तः	पूजन करते हुए
अङ्गिरसः	अङ्गिरसः	अङ्गिराओं ने
गाः	गाः	गौओं को
अविन्दन्	अलभन्त (विद्लृलाभे)	प्राप्त किया

संस्कृतार्थः ।

(हे आर्य्यगण!) महते (इन्द्राय) महन्नमः प्रापयत, वलयुक्तायाऽऽघोषयोग्यं साम-(गानं कुरुत) येन मार्गस्यज्ञातारः पूजयन्तोऽस्माकं पुरातनाः पितरोऽङ्गिरसः (किरण रूपाः) गा अलभन्त ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

(हे आर्य्यगण!) महान (इन्द्र) के लिये परम नमस्कार को पहुंचाओ, वलवान के लिए उच्च स्वर से गाने योग्य साम (गान को करो) जिस के द्वारा रस्ते के जानने वाले पूजन करते हुए हमारे

प्राचीन पितर अङ्गिराओं ने (किरण रूपी) गोओं को प्राप्त किया था ॥ २ ॥

(१) रस्ते के जानने वाले अर्थात गोओं को खोजने के लिये इन्द्र की स्तुति रूप उपाय को जानने वाले।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।१११११११११॥

इन्द्रस्याऽङ्गिरसांचेष्टौ विदत्स-
रमातनयायधासिम्। बृहस्पतिर्भि-
नदद्रिंविदद्गाः समुस्रियाभिर्वावश-
न्तनरः ।२।

इन्द्रस्य	इन्द्रस्य	इन्द्र की
अङ्गिरसाम्	अङ्गिरसाम्	अङ्गिराओं की,
च	च	और
इष्टौ	इच्छायाम् (सत्याम्)	इच्छाके होने पर

विदत्	अलभत (अडभावः)	प्राप्त किया
१ सरमा	सरमा	सरमा ने
२ तनयाय	सन्तानाय	सन्तान के लिये
२ धासिम्	अन्नम् (निघं० । २।७)	अन्न को
बृहस्पतिः	बृहतां देवानां पतिः(इन्द्रः)	इन्द्र ने
भिनत्	व्यदारयत् (अडभावः)	चीर डाला
अद्रिम्	पर्वतम्	पर्वत को
विदत्	अलभत (अडभावः)	प्राप्त किया
गाः	गाः	गौओं को
सम्	सम्+	–
उस्रियाभिः	गोभिः	गौओं के साथ

३ वावशन्त	पुनः पुनर्हर्षशब्दमकुर्वन् (वाशृशब्दे, यङ्)	बारबारहर्षयुक्त शब्दको किया
नरः	नेतारः (देवाः)	देवताओं ने

संस्कृतार्थः ।

इन्द्रस्याऽङ्गिरसाञ्चेच्छायाम् (सत्याम्) सरमा (निज॰)सन्तानायाऽन्नमलभत, इन्द्रः (तमोरूपम्) पर्वतं व्यदारयत् (किरणरूपाः) गाः (च) लब्धवान् (ताभिः) गोभिः (सह) देवाः पुनःपुनर्हर्षशब्दमकुर्वन् ॥ ३ ॥

भावार्थः ।

इन्द्र और अङ्गिराओं की इच्छा के होने पर सरमा ने (अपनी) सन्तान के लिए अन्न को प्राप्त किया, इन्द्र ने (अन्धकाररूपी) पर्वत को चीर डाला (और किरण रूपी) गौओं को पाया (उन) गौओं के साथ देवताओं ने आनंद का शब्द किया ॥ ३ ॥

(१) सरमा, देवशुनी का नाम है, जिस प्रकार छिपे शिकार को अपनी घ्राणशक्ति से ढूंढ कर कुतिया अपने स्वामी को वहां लेजाती है इसी प्रकार देवशुनी उषा छिपे हुए किरण समूह को ढूंढ कर इन्द्र को निवेदन करती है – इस अलंकार का मूल यह है

कि रात्रि होने से पहिले सायंकाल को उषा अंधेरे के पीछे २ जाती है, और प्रातः काल में सूर्य्य के आगे २ अर्थात पहिले आती है।

(२) सरमा की सन्तान उषा के जोड़ले पुत्र हैं जो दिन रात्रि के रूपमें उत्पन्न होने रहते हैं मेरु देशों की महीना लम्बी रात्रिके पीछे कुछ काल तक साधारण ६० घड़ी के दिन रात्रि होते हैं यह सरमा के युगल पुत्र हैं फिर लंबा दिन आरम्भ हो जाता है, जब सरमा ने किरण रूपी गौओं को ढूंढ लिया तो उस की सन्तान के पालन के लिये गौओं का दूध रूपी अन्न मिल गया क्योंकि गौओं की खोज को आरम्भ करने से पहिले सरमा ने इन्द्रसे यह नियम कर लिया था कि यदि मैं गौओं का खोज लगा दूं तो मेरी अहोरात्र रूपी सन्तान के लिये श्वेत किरण रूपी दूध मिले जिस से उन का पालन हो॥

(३) जब इन्द्र ने सूर्य्य रूप में किरणों को प्राप्त किया तो सब देवताओं ने किरणों के साथ मिल कर हर्ष ध्वनि को किया जैसे प्रभात के समय अब भी देखा जाता है॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः।११।११।११।११।

ससुष्टुभा सस्तुभा सप्तविप्रैः स्व-
रेणाऽद्रिंस्वर्य्योऽ३नवग्वैः।सरण्युभिः-
फलिगमिन्द्रशक्र वलंरवेणदरयो-
दशग्वैः।४।

सः	सः	वह
सुऽस्तुभा	शोभनस्तोभ युक्तेन	सुन्दर स्तोभ वाले से
सः	(पूरणः)	–
स्तुभा	स्तोत्रेण (स्तोभतिःस्तुतिकर्म्मा)	स्तोत्र से
सप्त	सप्तभिः (सुपामितिविभक्तेर्लुक्)	सातों से
४ विप्रैः	ऋषिभिः	ऋषियों से
स्वरेण	नादेन	नाद से
१ अद्रिम्	पर्वतम्	पर्वत को
स्वर्यः	कीर्त्तनीयः (स्वृशब्दे)	कीर्तनकरनेयोग्य
२ नवऽग्वैः	नवभिः(मासैर्यज्ञं-समाप्य)गतैर्नव-ग्वाख्यैर्ऋषिभिः	नौमहीनेमेंसत्रको समाप्तकरनेवाले नवग्व नामी ऋषियों के साथ

२ सरण्युऽभिः	त्वरमाणैः (ऋ० १०।६१।२४)	शीघ्रता करने वालों से
१ फलिऽगम्	मेघम् (निघ०।१।१०)	मेघ को
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
शक्र	हे शक्तिमन् !	हे शक्ति वाले
१ वलम्	वलम्	वल को
रवेण	गर्जनेन	गर्ज के साथ
दरयः	विदारितवान् (लङमाध.)	चीरडाला
२ दशऽग्वैः	दशभिः(मासैर्यज्ञं समाप्य) गतैर्दश-ग्वाख्यैर्ऋषिभिः	दसमहीने में सत्र कोसमाप्तकरने वालेदशग्वऋषि-षियों के साथ

संस्कृतार्थः।

हे शक्तिमन्निन्द्र ! शोभन स्तोभ युक्तेन स्तोत्रेण नादेन(च)कीर्तनीयः सः(त्वम्) त्वरमाणैर्नवग्वैर्दशग्वैः सप्तर्षिभिः(च सह) पर्वत (सदृशम्) मेघ(सदृशं च) वल गर्जनेन विदारितवान् ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे शक्तिवाले इन्द्र ! सुन्दर स्तोभ वाले स्तोत्रसे (और) नाद से कीर्तन करने योग्य उस आपने शीघ्रता करते हुए नवग्व दशग्व (और) सात ऋषिओं के साथ पर्वत (सदृश और) मेघ (सदृश) बल को गर्ज के साथ चीर डाला ॥ ४ ॥

(१) अद्रि, फलिग, बल ये सब मेघ के नाम हैं परन्तु यहां जलका मेघ नहीं किन्तु अंधकार के मेघ से तात्पर्य है ।

(२) नवग्व के लिये देखो पृष्ठ०८०२, और जहां दो महीने की रात्रि होती थी वहां दस महीने में सत्र को समाप्त करने वाले दशग्व ऋषि कहलाते थे ।

(३) " शीघ्रता करते हुए " अर्थात स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को बल के साथ युद्ध करने में सहायता देनेके लिये शीघ्रता करते हुए ।

(४) नवग्व दशग्व और सात ऋषियों के साथ अर्थात इन की सहायता से जो वे स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को देते थे।

(५) "स्तोभ" गीत आदि स्वर को पूरा करने के लिये शब्द विशेष (जिस का अर्थ कुछ नहीं)का नाम है जैसे सामवेद में 'हुम्मा' 'होई' इत्यादि शब्द ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुपछन्दः ।११।११।११११।।

गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्मविवरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः । विभूम्या अप्रथ-

यद्वन्द्रसानु दिवोरजउपरमस्त-भायः ।५।

गृणानः	स्तूयमानः	स्तुति किया हुआ
अङ्गिरःऽभिः	अङ्गिरोभिः	अङ्गिराओं से
दस्म	हे अद्भुत (आ०को०)	हे अद्भुत
वि	वि +	–
वः	वि+वः,अपावृत-वान् (अडमावश्छान्दसः)	हटा दिया
उषसा	उषसा	उषा से
सूर्येण	सूर्येण	सूर्य से
गोभिः	किरणैः (निघ०१।५)	किरणों से
अन्धः	अन्धकारम् निरु०५।१)	अन्धकार को
वि	वि+	–

भूम्याः	पृथिव्याः	पृथिवी के
अप्रथयः	वि+अप्रथयः, विस्तारितवान्	फैला दिया
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
सानु	शिखरम्	शिखर को
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक के
रजः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
उपरम्	तलेभवम् (आ०को०)	नीचे होने वाले को
अस्तभायः	अस्तभ्नाः, दृढी-कृतवान् (व्यत्ययेन श्नाप्रत्ययस्य शायजादेशः)	दृढ़ किया

संस्कृतार्थः ।

हे अद्भुतेन्द्र ! अङ्गिरोभिः स्तूयमानः (त्वम्) उषसा,सूर्य्येण, किरणैः (च) अन्धकारमपावृतवान् पृथिव्याः शिखरं विस्तारितवान्, द्युलोकस्य तलेभवमन्तरिक्षम् (च) दृढी कृतवान् ॥ ५ ॥

भाषार्थः।

हे अद्भुत इन्द्र! अङ्गिराओं से स्तुति किए गए आपने उषा सूर्य (और) किरणों द्वारा अन्धकार को हटा दिया आपने पृथिवी के शिखर को फैलाया (और) द्युलोक के नीचे होने वाले अन्तरिक्ष को दृढ़ किया ॥ ५ ॥

जब रात्रि थी, तो अन्धकार से ढके हुए होने से पृथिवी के शिखर अर्थात् हिमालय आदि पर्वत और अन्तरिक्ष में कुछ भेद नहीं प्रतीत होता था, अन्धकार के दूर होने से पर्वतों की श्रेणियां अन्तरिक्ष में फैली हुई दीखने लगीं और द्यौ और पृथिवी के बीच में अन्तरिक्ष को स्थिरता प्राप्त हुई ॥

इन्द्रोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः ।१।१।१।१।१।१।१।

तदुप्रयक्षतममस्यकर्म्म दस्मस्य-

चारुतममस्तिदंसः। उपह्वरेयदुपरा-

अपिन्वन् मध्वर्णसोनद्या१श्चतस्रः ।६।

तत्	तत्	वह

ऊम्०	(पूरणः)	—
प्रयक्ष्ऽतमम्	अतिशयेन पूज्यम् (यक्षपूजायाम्)	अत्यन्त पूजनीय
अस्य	अस्य	इसका
कर्म्म	कर्म्म	कर्म्म
दस्मस्य	अद्भुतस्य (आ०को०)	अद्भुत का
चारुऽतमम्	अतिशोभनम्	अत्यन्त सुन्दर
अस्ति	अस्ति	है
दंसः	कर्म्म (निघं०२।१)	कर्म्म
उपऽह्वरे	रहः स्थाने	गुप्त स्थानमें
यत्	यत्	जो
उपराः	तलेभवाः	नीचेहोने वालियों को
अपिन्वत्	आपूरितवान् (आ०को०)	खूब पूर्ण करदिया

मधुऽअर्णसः	मधुरोदकाः (अर्णइतिजलनाम, निघं०।१।१२)	मीठे जल वालियों को
नद्यः	नदीः (द्वितीयार्थे प्रथमा)	नदियों को
चतस्रः	चतस्रः	चार को

संस्कृतार्थः।

अद्भुतस्याऽस्य (इन्द्रस्य) तत्कर्म्माऽतिशयेन पूज्यमतिशोभनम् (च) अस्ति, यत्तलेभवा मधुरोदकाश्चतस्रो नद्यो रहः स्थान आपूरितवान् ॥ ६ ॥

भापार्थः।

अद्भुत इस (इन्द्र) का वह कर्म्म अत्यन्त पूजनीय (और) अति सुन्दर है जो नी ेहोनेवाली मीठे जल की चार नदियों को गुप्त स्थान में खूब पूर्ण कर दिया ॥ ६ ॥

मीठे जलकी चार नदियां गौ के स्तन हैं, यह इन्द्रका अत्यन्त आश्चर्य्य जनक कर्म है, कि इन नदियों को गुप्त स्थान में दुग्ध से पूर्ण कर देते हैं, ये नदियां वत्स के समीप आने से बहती हैं ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११। ११ ।११ ।११ ।

हिताविवव्रे सनजासनीळे अयास्यः

स्तवमानेभिरर्कैः । भगोनमेनेपरमे-

व्योमन्नधारयद्रोदसीसुदंसाः । ७ ।

द्विता	द्विधा (धकारस्यतकारश्छान्दसः)	दो भागों में
वि	वि+	—
वव्रे	वि+वव्रे, विवृतवान् भेदेनस्थापितवान्	अलगकिया
सनऽजा	पुराणोद्भवे (पूर्वपदस्यह्रस्वः, विभक्तेराकारश्च)	पुरानेजन्मवाली दोनों को
सऽनीळे०	समाननीडंनिवासस्थानं ययोस्त परस्परं संलग्ने इत्यर्थः	मिली हुइओं को
१ अयास्यः	अनायासेन भवः (यस् प्रयाने, भावे यत्)	विना प्रयत्न के होने वाला
स्तवमानेभिः	स्तुतिं कुर्वद्भिः	स्तुतिकरनेवालोंसे

अर्कैः	मन्त्रैः	मन्त्रों के द्वारा
भगः	सूर्य्यः	सूर्य्य
न	इव	की न्याईं
मेने॰	स्त्रियौ (निघ० ३ । २१)	दो स्त्रियों को
परमे	उत्कृष्टे	ऊंचे में
विऽओमन्	आकाशे (सप्तम्यालुक्)	आकाश में
अधारयत्	अधारयत्	धारण किया
२ रोदसी॰	द्यावापृथिव्यौ	द्यौ (और) पृथिवी को
सुऽदंसाः	शोभनकर्म्मा	सुकर्म्मा ने

संस्कृतार्थः।

मन्त्रैः स्तुतिं कुर्वद्भिरनायासेन भवः (इन्द्रः) पुराणोद्भवे, परस्परसंलग्ने द्यावापृथिव्यौ द्विधा

विवृतवान्(पुनः सः) शोभनकर्मा (ते) स्त्रियावुत्कृष्ट आकाशे सूर्य्यं इवा ऽधारयत् ॥ ७ ॥

भापार्थः ।

मन्त्रोंसे स्तुति करते हुए ऋषियोंके द्वारा बिना प्रयत्न के होने वाले (इन्द्र) ने परस्पर मिली हुई पुराने जन्मवाली द्यौ(और) पृथिवी को अलग अलग किया, (फिर उस) सुकर्मा ने (उन) दोनों स्त्रियों को ऊंचे आकाश में सूर्य्य की न्याई धारण किया ॥ ७ ॥

(१) जब स्तोता, मन्त्रों से इन्द्र की स्तुति करते हैं,तब वह बिना परिश्रम के ही अपने सृष्टि व्यवस्थापक कर्मों को करते हैं ॥

(२) द्यौ और पृथिवी दोनों शब्द स्त्रीलिंग होने से स्त्री कही गई हैं इन दोनोंको सुकर्मा इन्द्र ने महान आकाश में सूर्य की न्याईं धारण किया हुआ है जैसे एकपति दो स्त्रियों को धारण करता है ।

राव्युषसौदेवते निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ।११।१।१०।११।

सनाद्दिवंपरिभूमाविरूपे पुनर्भुवा-

युवतीस्वेभिरेवैः । कृष्णेभिरक्तोषा-

रुशद्भिर्वपुर्भिराचरतो अन्यान्या ।८।

सनात्	प्राचीनकालात्	प्राचीनकाल से
दिवम्	द्युलोकम्	द्युलोक को
परि	परि+	–
भूम	भूमिम् (द्वितीयायाडादेशः, छन्दस्त्वाच्छान्दसः)	पृथिवी को
विरूपे०	भिन्नवर्णे	भिन्नरूप वालीं
पुनःभुवा	पुनःपुनर्जायमाने	बारंबार उत्पन्न होनेवालीं
युवती०	तरुण्यौ	दो स्त्रियें
स्वेभिः	स्वकीयैः	अपनी
एवैः	गमनैः (इण् गतौ वन प्रत्ययः)	गतियों से
कृष्णेभिः	कृष्णवर्णैः	काले वर्णों से

अक्ता	रात्रिः (नवेतिरात्रिनाम निघं० १। ॥ नलोपश्छान्दसः)	रात्रि
उषाः	उषाः	उषा
रुशत्ऽभिः	दीप्यमानैः	दीप्तिवालों से
वपुःऽभिः	शरीरैः	शरीरों से
आ	आ+	--
चरतः	आ+चरतः,पर्य्या वर्त्तेते	दोनों घूमती हैं
अन्याऽअन्या	परस्परंव्यतिहारेण (व्यतिहारे सर्वनाम्नो-द्वे भवतः)	अलग२ क्रम से

संस्कृतार्थः ।

कृष्णवर्णैरात्रिः, दीप्यमानैःशरीरैरुषाः भिन्नवर्णे (उभे)युवती स्वकीयैर्गमनैःपुनःपुनर्जायमाने (सत्यौ) प्राचीनकालात् द्युलोकंपृथिवीम् (च) परस्प व्यतिहारेण पर्य्यावर्त्तेते ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

ाले वर्णों से रात्रि, (और) दीप्तिवकाले शरीरों

से उषा, दोनों भिन्न रूपवाली स्त्रियां अपनी२गतियों द्वारा वारंवार उत्पन्न होती हुई प्राचीनकाल से द्युलोक (और) पृथिवी के चारों ओर अलग २ क्रम से घूमती हैं ॥ ८ ॥

(१) यहां पर उषा से दिन का तात्पर्य्य है।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११

सनेमिसख्यंस्वपस्यमानः सूनुर्दाधारशवसासुदंसाः। आमासुचिद्दधिषेपक्वमन्तः पयःकृष्णासुरुशद्रोहिणीषु। ९॥

सनेमि	पुराननम् (निघं०३।२७)	पुरानी को
सख्यम्	मित्रत्वम्	मित्रता को
सुऽअपस्यमानः	शोभनंकर्म्माऽऽचरन्	श्रेष्ठ कर्म्म का आचरण करता हुआ

१ सुनुः	पुत्रः	पुत्र ने
दाधार	धारितवान्	धारण किया है
शवसा	बलेन	बल से
सुऽदंसाः	सुकर्म्मा	सुकर्म्मा ने
आमासु	अपरिपक्वासु	कच्चियोंमें
चित्	अपि	भी
दधिषे	धारयसि (लडर्थ लिट)	स्थापन करते हो
पक्वम्	परिपक्वम्	पके हुए को
अन्तः०	मध्ये	बीच में
पयः	दुग्धम्	दूध को
कृष्णासु	कृष्णवर्णासु	काले रंग वालियों में

रुशत्	श्वेतवर्णम् (सा०को०)	श्वेत रंग वाले को
रोहिणीषु	लोहितवर्णासु	लाल रंग वालियों में

संस्कृतार्थः ।

सुकर्मा पुत्रः शोभनं कर्माऽऽचरन् पुरातनं सख्यं बलेन धारितवान् (अस्ति)(हेइन्द्र!)(त्वम्) अपरिपक्वा स्वपि मध्ये परिपक्वं दुग्धं स्थापयसि(त्वम्)कृष्णवर्णा- सु लोहितवर्णासु (च)श्वेतवर्णम् (दुग्धंस्थापयसि)॥९॥

भापार्थः।

श्रेष्ठ कर्म्म का आचरण करते हुए सुकर्म्मा पुत्र ने पुरानी मित्रता को बल से धारण किया है (हे इन्द्र) आप कच्चियों के बीच में भी पके हुए दूध को स्थापन करते हो आप काले (और) लाल रंग वालियों में श्वेत रंग के (दूधको स्थापन करते हो)।९।

(१) "पुत्र" द्यावापृथिवी के पुत्र इन्द्र ने पुरानी मित्रता को जो हमारे पितरोंके और हमारे साथ उसको है बल से धारण किया हुआ है,इसी लिए हमारे शत्रु इस मित्रता को तोड़ नहीं सकते ॥

(२) यद्यपि गौए कच्ची हैं अर्थात बाहर से ठंडी हैं परन्तु उन में से दूध पका हुआ अर्थात कोसा निकलता है।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।१।१।१।१।१।१।

सनात्सनीळाअवनीरवाता व्रता

रक्षन्तेअमृताःसहोभिः। पुरुसह-

स्राजनयोनपत्नीर्दुवस्यन्तिस्वसा-

रोअह्रयाणम् ।१०।

सनात्	चिरकालात्	चिरकाल से
सऽनीळाः	समाननिवास-स्थानाः	एक स्थान में रहने वाली
अवनीः	अङ्गुलयः (निघ०२।५सुपामिति पूर्व सवर्णदीर्घत्वम्)	अंगुलियां
अवाताः	वातंगमन तद्रहिताः	गमन से रहित
व्रता	व्रतानि (लोपः)	व्रतों को

रुशत्	श्वेतवर्णम् (आ०को०)	श्वेत रंग वाले को
रोहिणीषु	लोहितवर्णासु	लाल रंग वालियों में

संस्कृतार्थ ।

सुकर्मा पुत्रः शोभनं कर्माऽऽचरन् पुरातनं सख्यं बलेन धारितवान् (अस्ति)(हेइन्द्र!)(त्वम्) अपरिपक्वा स्वपिमध्ये परिपक्वं दुग्धं स्थापयसि(त्वम्)कृष्णवर्णासु लोहितवर्णासु (च)श्वेतवर्णम् (दुग्धस्थापयसि)॥९॥

भावार्थ ।

श्रेष्ठ कर्म का आचरण करते हुए सुकर्मा पुत्र ने पुरानी मित्रता को बल से धारण किया है (हे इन्द्र) आप कच्चियों के बीच में भी पके हुए दूध को स्थापन करते हो आप काले (और) लाल रंग वालियों में श्वेत रंग के (दूधको स्थापन करते हो)।९।

(१) "पुत्र" द्यावापृथिवी के पुत्र इन्द्र ने पुरानी मित्रता को जो हमारे पितरोंके और हमारे साथ उनकी है बल से धारण किया हुआ है,इसी लिए हमारे शत्रु इस मित्रता को तोड़ नहीं सकते ॥

(२) यद्यपि गौएं कच्ची हैं अर्थात बाहर से ठंडी हैं परन्तु उन में से दूध पका हुआ अर्थात कोसा निकलता है ।

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।१।१।१।१।१।१।

सनात्सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः । पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥१०॥

सनात्	चिरकालात्	चिरकाल से
सऽनीळाः	समाननिवासस्थानाः	एक स्थान में रहने वाली
अवनीः	अङ्गुलयः (निघं० २।५ सुपामिति पूर्व सवर्णदीर्घत्वम्)	अंगुलियां
अवाताः	वातं गमनं तद्रहिताः	गमन से रहित
व्रता	व्रतानि (लोपः)	व्रतों को

रक्षन्ते	पालयन्ति (व्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदम्)	पालन करती हैं
अतस्राः	देव्यः	देवियां
सहःऽभिः	बलैः	बलों से
पुरु	बहूनि (लोलोंपः)	बहुत
सहस्रा	सहस्राणि (,,)	हजारों को
जनयः	कुटुम्बिन्यः (भा०को०)	कुटुम्बवालीं
न	इव	जैसे
१ पत्नीः	पत्न्यः (पूर्वसवर्णदीर्घत्वम्)	स्त्रियां
दुवस्यन्ति	परिचरन्ति (दुवस्परिचरणे)	सेवा करती हैं
स्वसारः	स्वसारः	बहनें
२ अह्रयाणम्	अलज्जितगतिम् (निघं०४।२)	न लज्जासे चलने वाले को

संस्कृतार्थः ।

चिरकालात् समान निवास स्थाना गमनरहिता देव्यो ऽङ्गुलयः (निज-) बलैर्बहूनि सहस्राणि (यज्ञादि-) व्रतानि पालयन्ति, (इमाः) स्वसारः कुटुम्बिन्यो पत्न्य इवाऽलज्जितगतिं (स्वामिनमिन्द्रम्) परिचरन्ति ॥ १० ॥

भावार्थः ।

चिरकाल से एक स्थान में रहनेवाली गमन से रहित देवी अंगुलियां (अपने) बलों से बहुत हजारों (यज्ञआदि) व्रतों का पालन करती हैं (ये सारी) बहनें कुटुम्बवाली स्त्रियों की न्याईं न लज्जा से चलने वाले (अपने स्वामी इन्द्र की) सेवा करती हैं ॥ १०

(१) अंगुलियां गमन से रहित इसलिये हैं कि सदा हाथ में रहती हैं हाथ को छोड़ कर कहीं नहीं जातीं ।

(२) जिस में पुंस्त्व की न्यूनता है, वह लज्जा से चलता है पूर्ण पुंस्त्व से युक्त होने से इन्द्र अलज्जित गति है ।

(३) जिस प्रकार गृहिणी स्त्रियां अपने पति की सेवा करती हैं इसी प्रकार मनुष्यों की अंगुलियां सोम निचोड़ने आदि कर्म द्वारा अपने स्वामी इन्द्र की सेवा करती हैं ॥

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११

सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूय-

सोमतयोदस्मदद्रुः। पतिंनपत्नी-
रुशतीरुशन्तं स्पृशन्तित्वाशवसा-
वन्मनीषाः ।११।

१ सनाऽयुवः	प्राचीनधर्म-मिच्छन्तः (वर्णव्यत्ययेनोत्वम)	प्राचीन धर्म की इच्छा करते हुए
नमसा	नमस्कारेण	नमस्कार के साथ
नव्यः	नवीनैः (सुपामितिविभक्ते सुः)	नवीनों से
अर्कैः	स्तोत्रैः	स्तोत्रों से
वसुऽयवः	धनकामाः	धन की कामना वाले
मतयः	मेधाविनः (निघं० ३।१५)	ऋषी,
दस्म-	हे अद्भुत !	हे अद्भुत

दद्रुः	त्वरितवन्तः (आं०को०)	शीघ्रता से गए हैं
पतिम्	पतिम्	पति को
न	इव	जैसे
पत्नीः	पत्न्यः (वाछन्दसी'ति पूर्व-सवर्णदीर्घः)	पत्नियां
उशतीः	कामयमानाः (,,)	प्रेम से भरी हुई
उशन्तम्	कामयमानम्	कामना करते हुए को
स्पृशन्ति	स्पृशन्ति	स्पर्श करती हैं
त्वा	त्वाम्	तुझको
शवसावन्	हे बलवन् ! (मत्वर्थीयमादेनिप् प्रत्ययः)	हे बलवाले
मनीषाः	स्तुतयः (आं० को०)	स्तुतियां

संस्कृतार्थः ।

हे अद्भुत! प्राचीनधर्ममिच्छन्तो धनकामा मे धा

विनो नवीनैः स्तोत्रैर्नमस्कारेण (त्वां प्रति) त्वरितवन्तः,हे बलवन्! (तत्कृताः) स्तुतयस्त्वां कामयमानं पतिं कामयमाना पत्न्य इव स्पृशन्ति ॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

हे अद्भुत! प्राचीन धर्मकी इच्छा करते हुए धन की कामनावाले ऋषी नए स्तोत्रों द्वारा नमस्कार के साथ(आपकी ओर)शीघ्रता से गए हैं हे बलवाले! (उनसे की हुई) स्तुतियां आप को ऐसे स्पर्श करती हैं जैसे कामना करते हुए पति को प्रेम से भरी हुई पत्नियां ॥ ११ ॥

(१) यद्यपि नए ऋषि नए स्तोत्रों द्वारा इन्द्र की स्तुति करते हैं, तथापि प्राचीन धर्म की इच्छा करने वाले होने से उन के भाव प्राचीन ऋषियों के भावों से विरुद्ध नहीं हैं ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः।११।११।११।११॥

सनादेवतवरायोगभस्तौ नचीयन्तेनोपदस्यन्तिदस्म।द्युमाँअसिक्रतुमाँइन्द्रधीरः शिचाशचीवस्त-

वनःशचीभिः । १२ ।

सनात्	चिरकालात्	चिरकाल से
एव	एव	ही
तव	तव	तेरे
रायः	धनानि	धन
गभस्तौ	हस्ते	हाथ में
न	न	नहीं
क्षीयन्ते	विनश्यन्ति	नाश होते हैं
न	न	नहीं
उप	उप +	–
दस्यन्ति	उप + दस्यन्ति, न्यूनतां-प्राप्नुवन्ति	कम होते हैं

दस्म	हे अद्भुत!	हे अद्भुत
द्युऽमान्	दीप्तिमान्	दीप्ति वाला
असि	असि	तू है
क्रतुऽमान्	ज्ञानयुक्तः	ज्ञानवान
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
धीरः	दृढनिश्चयः	दृढ निश्चयवाला
शिक्ष	देहि (निघं०३।२०)	दो
शचीऽवः	हे बलवन्	हे बलवाले
तव	तव	तेरे
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताईं,
शचीभिः	बलैः	बलों से

संस्कृतार्थः।।

हे अद्भुत ! तव हस्ते चिरादेव (वियमानानि)

धनानि न विनश्यति न-(च) न्यूनतां प्राप्नुवन्ति, हे इन्द्र ! (त्वम्) दीप्तिमान्, ज्ञानयुक्तो दृढनिश्चयः (च)असि, हे.बलवन् ! त्वदीयैर्बलैरस्मभ्यम् (बलम्) देहि ॥ १२ ॥

भावार्थः ।

हे अद्भुत ! आप के हाथ में चिरकाल से (विद्यमान) धन न नाश होते हैं (और)न कम होते हैं हे इन्द्र ! आप दीप्तिवाले, ज्ञान से युक्त (और) दृढ निश्चय वाले हैं; हे बलवान ! अपने बलों द्वारा हमारे ताईं (बल को) दीजिये ॥ १२ ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः।११।११।११।११॥

सनायतेगोतमइन्द्रनव्य मतक्षद्

ब्रह्महरियोजनाय।सुनीथायनःशव-

साननोधाः प्रातर्मक्षूधियावसुर्जग-

म्यात् ।१३।

सनाऽयते	सनातनइवाऽऽचरते	सनातन के लिये

गोतमः	गोतमवंशीयः	गोतम वंशी
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र !
नव्यम्	नूतनम्	नवीन को
अतक्षत्	रचितवान्	रचा है
ब्रह्म	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
हरिऽयोजनाय	हरी,अश्वौ योजयति(रथे) तस्मै	दो घोड़ों को (रथ में)जोड़ने वाले के लिये
सुऽनीथाय	सुष्ठु नेत्रे	अच्छे नेताके लिये
नः	अस्माकम्	हमारे
शवसान	हे बलवन्!	हे बल वाले
नोधाः	नोधाः	नोधा ने

प्रातः	प्रातः	प्रातःकाल में
मक्षु	शीघ्रम्	शीघ्र
धियाऽवसुः	ध्यानेन धनवान्	ध्यानसे धनवाला
जगम्यात्	आगच्छतु	आवे

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! सनातनायाऽस्माकं सुष्ठुनेत्रे हर्य्योर्योजयित्रे (च तुभ्यम्) गोतमवंशीयो नोधा नूतनं स्तोत्रं रचितवान् हे बलवन् ! ध्यानेन धनवान् (भवान्) शीघ्रं प्रातरागच्छतु ॥ १३ ॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र ! सनातन, हमारे अच्छे नेता(और)दोनों घोड़ों को जोड़ने वाले(आप के लिए) गोतमवंशी नोधाने नवीन स्तोत्र को रचा है हे बलवाले! ध्यान से धन वाले (आप) शीघ्र प्रातःकाल में आवें ॥ १३ ॥

यद्यपि स्तोत्र नया है । परन्तु भाव यही है जो सनातन काल से प्राचीन नेता इन्द्र के लिए पूर्व ऋषियों के मन में रहे हैं ।

इति द्वाषष्टितमं सूक्तम् ॥

ऋ०सं०३३-३४ अङ्कयोः शुद्धयशुद्धिपत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१४२५	२०	लड)	लुड्)
१४३२	१६	गृहेप	गृहेपु
१४३३	४	दयति	दयतिं
१४३५	६	तुहत्	तुहत्
१४३५	५	स्थिप	स्थिपः,
१४४५	१५	स्फुर्लि	स्फूर्लि
१४४६	४	(यस्य	(यस्य
१४४६	१५	(येत्रांपः)	(यतोलक्
१४४९	११	हिरण्ययः	हिरण्यय
१४५०	५	पृथिवी	पृथिवी
१४५८	१३	सोंदा-	सोद-
१४५८	३	वज्जिन्	वज्रिन्
१४५८	५	चक्रतिय	चक्रतिय
१४५८	७	चमश	चमूजः
१४६५	१२	शुवमानः	शुषमाणः
१४६८	११	पायुपं	पायुपं
१४७४	८	समह	समुह
१४७८	१	प्रथमा	प्रथमा
१४८१	८	गृणन्तु	गृणन्तु
१४८२	१२	सूनो०	सूनो०
१४८३	२	पु:ऽसि	प:ऽसिः
१४८४	७	प्राकश	प्रकाश
१४८४	१३	यथार्थे	यथार्थो
१४८६	१५	देवक्री	देवक्रो
१४८६	१७	श्रोषधियों	श्रोषधियों
१४८८	२०	जमे	जैमे
१४९५	१२	सुनय	सुनये
१४९७	१८	पिष्ट	पिष्टु
१४९७	२०	क्लष्टो-	क्लष्टी-
१४९९	१२	हैं जातानां	हैं जातानां
१५००	१५	जंघन्ना	जंघन्वां
१५०३	११	पत्नीय	पूत्नीय
१५०४	८	पुरुऽनीये	पुरुऽनीये
१५०४	१७	यायुको	यथायुको
१५०५	११	यह सत	यह सूत
१५०६	१२	प्रकर्प	प्रकर्षय
१५०८	१७	नाम	नाम
१५१६	८	पर म	पर में

विज्ञापन।

इस अंक के साथ तीसरा साल पूरा होगया है—जिन स्वाध्यायी ब्राह्मणों ने चौथे साल के लिए स्वाध्याय करने के लिए प्रतिज्ञा पत्र नहीं भेजे हैं वे कृपा पूर्वक शीघ्रता करें, जिससे उनके नाम चौथे साल के रजिस्टरमें लिखे जावें—अंक १ से १० तक दूसरी बार छप गए हैं जिनकी पुस्तक अपूर्ण हो वे पत्र लिखें, तो जो अंक न्यून हैं वे भेज दिये जावेंगे॥

मुन्शीजयराम,
मैनेजर ऋग्वेद
संहिता, मलतान